शोध-प्रबन्ध

पौराणिक देवशास्त्र-एक अध्ययन

निर्देशक
डॉ० हरिशंकर त्रिपाठी
भू० पू० विभागाध्यक्ष
संस्कृत अवेस्ता पालि, प्राकृत
एवं प्राचीन ईरानी, पहलवी
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

शोधछात्रा
श्रीमती रेनू त्रिपाठी

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

भूमिका

'श्री पुराण पुरूषाय नमः।
अष्टा दशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीडनाम्।।
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।।

पुराण–पुरूष की महती अनुकम्पा का यह सुफल है कि यह शोध–प्रबन्ध पूर्णत्व को प्राप्त हुआ है। पुराण–पुरूष की कृपा के बिना इस विषय पर कार्य करने का अवसर नहीं प्राप्त हो सकता था। अवशेष ही अपूर्व का यह चमत्कार है जो महासागर मे गोते लगाकर मोती–चयन का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। एतदर्थ, मैं अपने निर्देशक भूतपूर्व विभागाध्यक्ष संस्कृत, पालि, प्राकृत विभाग, गुरूदेव **प्रो० डॉ हरिशंकर त्रिपाठी**, जो स्वमेव विद्या के महासागर एवं साक्षात् भगवान् शंकर स्वरूप हैं, की कृपा एवं दया से इस विषय – 'पौराणिक देवशास्त्र एक अध्ययन' विषय को शोधार्थ प्राप्त कर सकी हूँ, अन्यथा, इस विषय में मैं सर्वथा अल्पमति सोच भी नहीं सकती थी। एतदर्थ, मैं अपने श्रीगुरूचरण की हृदय से आभारी हूँ। श्रीगुरू जी समय–समय पर सतत् प्रेरणा और सहयोग तथा मार्ग दर्शन कर मुझ अबोध के जीवन में जो ज्ञान–दीप प्रज्ज्वलित कर जीवन को आलोकित किया और पुराण के प्रति अभिरूचि जागृति की, एतदर्थ, मैं यावज्जीवन श्री गुरूचरण की ऋणी रहूंगी। गुरूदेव की पत्नी भी जिन्हें हम विद्यार्थीगण सादर–सप्रेम 'चाची जी' के सम्बोधन से सम्बोधित करते हैं, उनका भी स्नेह एवं प्यार मिला, एतदर्थ, मैं उनका आभार प्रकट करती हूँ।

जब मैं विद्यार्थी जीवन में थी तो मेरी स्व० माता **श्रीमती विमला देवी** मुझे गृहकार्यों से मुक्त कर सतत् अध्ययनरत रहने की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन देती रहीं और उनकी इच्छा मुझसे उच्चतर कार्य करने की थी, किन्तु स्नातकोत्तरार्ध की

परीक्षा के समय, वे हमें निराधार कर इस पञ्चभौतिक जगत् से सदैव के लिये महाप्रयाण कर गयीं, आज मै जब इस शोध–प्रबन्ध को प्रस्तुत कर रही हूँ तो महातत्व में विलीना उनकी आत्मा अवश्य ही मुदान्वित हो रही होगी। ऐसा अनुभव हो रहा है।

माता जी के महाप्रयाण के पश्चात् पिता **श्री विन्देश्वरी प्रसाद द्विवेदी** पर विपत्ति का महापर्वत ही टूट पड़ा, माता जी के रहते वे अपने कार्यो पर ही ध्यान केन्द्रित किये थे, समय–समय पर प्रगति और कष्ट को ज्ञात कर निवारण करते रहते थे, किन्तु, सद्यः पात विपत्ति से उन्हें पिता के कर्तव्य के साथ माता का भी कर्तव्य–पालन करने एवं माता की भी भूमिका – पुत्री के प्रति का निर्वाह करने को विवश होना पड़ा। शासकीय सेवा में रहते हुए नित्य ही प्रातः उठकर दायित्व–निर्वाह हेतु गमन और रात्रि में विलम्बागन करना होता था, किन्तु, वे सदैव अहर्निश कर्मयोगी की भाँति बिना रुके अपना दायित्व निर्वाह कर रहे हैं और शोध–प्रबन्ध को पूर्ण बनाने में कोई कमी नहीं आने दिये । मनसा–वाचा–कर्मणा अहर्निश मेरी ही चिन्ता में निमग्न रहते हैं। मैं ऐसे पिता एवं माता को प्राप्त कर गर्व का अनुभव करती हूँ और सदैव पुराण–पुरूष से प्रत्येक जन्म में उन्हें माता–पिता के रूप में प्राप्त करूँ, यही कामना है और सदैव मैं इनकी ऋणी रहूँ। अपने तीनों भ्राताओं **श्री अरविन्द कुमार द्विवेदी, रवीन्द्र कुमार द्विवेदी और आशीष कुमार द्विवेदी** का सदैव सहयोग एवं प्रेम तथा आशीर्वाद प्राप्त रहा है। एदतर्थ, मैं उनके उज्जवल भविष्य की कामना के साथ आशीष भी प्रदान करती हूँ।

चाचा **श्री एस०एन० चतुर्वेदी** और उनका परिवार सदैव प्रोत्साहन प्रदान किया। एतदर्थ, मैं उन्हें भी आभार प्रदर्शन करती हूँ। गुरूदेव डॉ० त्रिपाठी जी के वरिष्ठतम् परम शिष्य **डॉ० जगदेव प्रसाद द्विवेदी**– प्रवक्ता, संस्कृत, बी०बी०एस० पब्लिक डिग्री कालेज, बरना, लाल गोपालगंज, कुण्डा, प्रतापगढ़ (डॉ० राममनोहर लोहिया युनिवर्सिटी, फैजाबाद से सम्बद्ध) के विषय में यदि मैं कुछ भी कहती हूँ तो मेरी यह कृत्घ्नता होगी, क्योंकि आज यह शोध–प्रबन्ध जो परीक्षणार्थ

प्रस्तुत है, यह उन्हीं की परम कृपा का प्रतिफल है, जो निरन्तर व्यस्ततम् जीवन में से समय निकाल कर मुझे हर समस्या से कवचित किये रहे और कार्य को पूर्णता प्रदान करने में सहयोगी रहे। मैं ऐसे महानुभाव की ऋणी रहूँ, यही अभिलाषा रखती हूँ।

इण्टरमीडियट कालेज, सुन्दरगंज, प्रतापगढ़ के उप–प्रधानाचार्य एवं नागरिक शास्त्र के प्रवक्ता **श्री नरेन्द्र नारायण त्रिवारी** निवासी – ग्राम–चकवड़, प्रतापगढ़, जो पितामह लगते हैं, मैं उनका आभार प्रदर्शन करती हूँ, जिन्होंने **डॉ० जगदेव प्रसाद द्विवेदी** से सम्बन्ध स्थापित करने में सेतु का कार्य किया, अन्यथा मेरे लिये यह कार्य असम्भव था) इलाहाबाद युनिवर्सिटी, इलाहाबाद के पुस्तकालय के कर्मियों को मैं धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने समय–समय पर पुस्तकें प्राप्त करने में सहयोग प्रदान किये।

दिसम्बर २००१ में दाम्पत्य–जीवन में प्रवेश करने पर श्वसुर कुल भी सहयोगी रहा। कभी भी पति **श्री रविशंकर त्रिपाठी** और श्वसुर **श्री रमेश चन्द्र त्रिपाठी** भी अवरोधक न होकर सतत् सहयोगी रहे, एतदर्थ, मैं उनकी आभारी हूँ और धन्यवाद भी ज्ञापित करती हूँ।

इस ग्रन्थ की पूर्णता में जिन–जिन महानुभावों की कृतियों का सहयोग एवं उनका सान्निध्य प्राप्त हुआ, उनकी सबकी मैं हृदय से आभारी हूँ और उन्हे धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ।

इस शोध–प्रबन्ध के शुद्ध टंकण हेतु जो सहयोग **ICON Computers** कम्पनी के प्रभारी श्री दरबारी जी पिता–पुत्र क्रमशः **श्री प्रकाश चन्द दरबारी** और **श्री प्रशान्त दरबारी** का प्राप्त हुआ और **श्री सन्तोष कुमार जी** एवं **श्री दिनेश कुमार जी**, टंकणकर्ता का सहयोग रहा । इन सब महानुभावों को मैं धन्यवाद ही ज्ञापित करती हूँ जिनके सहयोग से यह दुरूह कार्य समय से सम्पन्न हो सका है । **किदवई कामर्शियल इन्स्टीट्यूट**, सिविल लाइन्स के **प्रभारी मि०**

खान को भी धन्यवाद देती हूँ जो दरबारी जी से मिलने में सेतु बने । अन्ततः मैं सभी प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष सहयोगी रहे महानुभावों को हृदय से धन्यवाद देती हूँ। इसके साथ ही पुनः पुराण–पुरूष से अपने पिता श्री विन्देश्वरी प्रसाद द्विवेदी के शतायु होने और स्वस्थ्य रखने की कामना करते हुए, पुनः उनकी सन्तान होने की प्रार्थना करती हूँ जिससे सेवा का अवसर प्राप्त हो सके।

इतिशम्

शारदीय नवरात्रि
०७ अक्टूबर, २००२

विषय-सूची

अध्याय - एक

पौराणिक वाङ्मय के अध्ययन की आवश्यकता

अध्याय - दो

अध्याय - तीन

अध्याय - चार

शक्ति तत्त्व एवं त्रिशक्तियां --

१. श्री महाकाली, श्री महालक्ष्मी, श्री महासरस्वती

२. शिव का कथन विष्णु के प्रति भी द्रष्टव्य

३. श्री दुर्गा सप्तशती का तात्विक विवेचन

४. महालक्ष्मी का सृष्टि-चक्र

५. श्री दुर्गा सप्तशती के त्रिविध मातृचरित का विवेचन

६. दश महाविद्याएं

७. श्री विद्या के लीला-विग्रह

१. कुमारी २. विरूपा ३. गौरी ४. रमा ५. भारती

६. काली ७. चण्डिका ८. कात्यायनी ६. दुर्गा १०. ललिता

अध्याय - सात

गणपति-स्वरूप विवेचन

१. गणपति (गणेश जी) तत्त्व

२. एकदन्त पद का विवेचन

३. वक्रतुण्ड पद का विवेचन

४. चतुर्भुज गणेश

५. मूषक वाहन पद विवेचन

६. ध्यान एव निदान भाव

७. निदान भावों के रहस्य का विवेचन

(क) खर्वम् (ख) स्थूलतनुम् (ग) गजेन्द्रवदनम्

(घ) लम्बोदरम् (ङ) दन्ताघातः (च) सिन्दूरशोभाकरम्

(छ) नागेन्द्रबद्धभूषणम् (ज) त्रिनेत्रम् (झ) हस्तपद्मैः

(ट) दन्तं पाशांकुशेष्टानि (ठ) बालेन्दु द्यौतमौलिम्

८. लम्बोदर एवं सूर्प-कर्ण शब्द का विवेचन

६. पञ्चदेवोपासना में गणेश का स्थान

१०. गणपति का स्वस्तिक रूप

अध्याय - आठ

सूर्य देवता-स्वरूप एवं तत्त्व निरूपण

अध्याय - नौ

अध्याय - दस

अध्याय - ग्यारह

(ख) सोम के अधिदेवता 'उमा'

(ग) भौम के अधिदेवता 'स्कन्द देवता'

(घ) बुध के अधिदेवता 'विष्णु देवता'

(ङ) बृहस्पति के अधिदेवता 'ब्रह्मा'

(च) शुक्र के अधिदेवता 'देवराज इन्द्र'

(छ) शनि के अधिदेवता 'यम देवता'

(ज) राहु के अधिदेवता 'काल'

(झ) केतु के अधिदेवता 'चित्रगुप्त'

(ट) ग्रहों के प्रत्यधि देवता

(ठ) सूर्य के प्रत्यधि देवता 'अग्नि देवता'

सोम के प्रत्यधिदेवता 'अप् देवी'

भौम के प्रत्यधिदेवता 'पृथिवी देवी'

बुध के प्रत्यधिदेवता 'विष्णु देवता'

शुक्र की प्रत्यधिदेवता 'इन्द्राणी देवता'

शनि के प्रत्यधिदेवता 'प्रजापति'

राहु के प्रत्यधिदेवता 'सूर्य देवता'

केतु के प्रत्यधिदेवता 'ब्रह्मा देवता'

अध्याय - बारह

उपसंहार

अध्याय - एक

पौराणिक वाङ्मय के अध्ययन की आवश्यकता

अध्याय - एक

पौराणिक वाङ्मय के अध्ययन की आवश्यकता

पुराण संस्कृत वाङ्मय के आकर ग्रन्थ है। प्राचीन भारतीय विद्याओं को सुरक्षित एवं संग्रहीत करने के कारण इन्हें 'विश्वकोष' की संज्ञा से विभूषित किया जा सकता है। भारतीय–संस्कृति के स्वरूप बोधार्थ पुराण के अध्ययन की महती आवश्यकता है । पुराण भारतीय संस्कृति का मेरू–दण्ड है – वह आधार पीठ है जिस पर आधुनिक भारतीय समाज अपने निगमन को प्रतिष्ठित करता है। छान्दोम्योपनिषद् में उल्लिखित वैदिक कालीन इतिहास–पुराण के स्वरूप को सुनिश्चित करना यद्यपि दुष्कर कार्य है तथापि वेदोन्तर कालीन ग्रन्थों में आख्यात पुराणेतिहास के स्वरूप को व्याख्यापित अवश्य ही किया जा सकता है पुराण साहित्य सूत–परम्परा द्वारा वृहत् कलेवर धारण कर सका है, इसकी सम्पुष्टि पौराणिक एवं पुराणेतर साहित्यिक साक्ष्यों से की जा सकती है यह यथार्थ है कि वैदिक एवं पौराणिक साहित्य का पारस्परिक सम्बन्ध निर्विवादतः निश्चित नहीं हो सका है किन्तु पुराण वेद सम्मत मान्यताओं के प्रतिष्ठम्पक है अवश्य प्रस्तावित किया जा सकता है महाभारत एव वायुपुराण में उक्त तथ्य की पुष्ठि इस उद्घोषणा से की गयी है कि वेदों की सम्यक् व्याख्या हेतु पुराणेतिहास का ज्ञान आवश्यक है ––

इतिहास पुराणभ्यां वेदं समुषवृंहयेत् ।

---

१. इतिहास पुराणभ्यां वेदं समुषवृंहयेत् । महाभारत १/१/२६७

२. वायुपुराण – १/२०१।

पुराण शब्द की व्युत्पति

पुराणशब्द की व्युत्पति पाणिनि, यास्क एवं स्वतः पुराणों ने भी की है। 'पुराभवम्' (प्राचीन काल में होने वाला) इस अर्थ में 'सायं चिरं प्राह्णे प्रगेऽव्ययेभ्यढट युटयुलौ तुट् च'[1] पाणिनि के इस सूत्र से 'पुरा' शब्द से 'प्यु' प्रत्यय करने तथा 'तुट्' के आगमन होने पर 'पुरातन' शब्द निष्पन्न होता है, परन्तु पाणिनि ने ही अपने दो सूत्रों --

'पूर्व कालैक सर्व–जरत् पुराणनव – केवलाः समानाधि करणेन'[2]

तथा

'पुराण प्रोक्तेषु ब्राह्मण कल्पेषु'[3]

में पुराण शब्द का प्रयोग किया है जिससे तुडागम का अभाव निपातना सिद्ध होता है। तात्पर्य यह है कि पाणिनि की प्रकियानुसार 'पुरा' शब्द से टयु प्रत्यय अवश्य ही होता है परन्तु नियम प्राप्त 'तुट्' का आगमन नहीं होता है ।

पुराण शब्द ऋग्वेद में बहुशः प्रयुक्त है किन्तु विशेषण के अर्थ में है और उसका अर्थ प्राचीन, पूर्वकाल में होने वाला है ।

यास्क के अनुसार पुराण की व्युत्पत्ति --

'पुरा नवं भवस्तुति' अर्थात् जो प्राचीन होकर भी नया होता है ।

'त्रिविध ब्रह्म' के अन्तर्गत

---

१. अष्टाध्यापी ४/३/२३
२. अष्टाध्यापी २/१/४६
३. अष्टाध्यापी ४/३/१०५
४ निएक्त ३/१६

वायुपुराण के अनुसार– 'पुरा अनति'[1] अर्थात् प्राचीन काल में जो जीवित था–यह व्युत्पत्ति होती है । किन्तु पद्म पुराण में इससे भिन्न स्थिति चरिलक्षित होती है

'पुरा परम्परां वष्ठि कामयते'[2]

अर्थात् जो प्राचीनता की परम्परा की कामना करता है वह पुराण कहलाता है ब्रह्माण्ड पुराण की इससे भिन्न एक तृतीय व्युत्पत्ति है –

'पुरा एतत् अभूत्'[(3)]

अर्थात् प्राचीन काल में ऐसा हुआ।

इस प्रकार उपर्युक्त समस्त व्युत्पत्ति की मीमांसा करने पर यह स्पष्ठ हो जाता है कि पुराण का वर्ण्य विषय प्राचीन काल से ही सम्बद्ध था । प्राचीन ग्रन्थो में पुराण का सम्बन्ध इतिहास से इतना अनस्यूत है कि दोनों सम्मिलित रूप से 'इतिहास–पुराण संज्ञा से अनेकशः वर्णित हैं। इतिहास के अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थों में उल्लिखित होने पर भी लोगों मे यह भ्रान्त धारणा दृढ़ है कि भारतीय ऐतिहासिक परिकल्पना से सर्वथा अपरिचित थे किन्तु यह धारणा निर्मूल तथा अप्रामाणिक है । यास्क के अनुसार ऋग्वेद में ही प्राप्त होते हैं । छान्दोग्योपनिषद में समत्कुमार से ब्रह्म विद्या सीखने के अवसर पर नारदमुनि ने अपनी अधीत विद्याओं के अन्तर्गत इतिहास पुराण को पंचम्वेद[4] संज्ञा से अभिहित किया है।

१. पस्मात् पुरा हयनतीदं पुराणं तेन तत् स्म्तम्।
   निरूक्तमस्थ यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। वायुपु० १/२०३,
२. पुरा परम्परां वरिढठ पुराणं तेन तत् स्मृतम्।। पद्मपुराण ५/२/५३
३. यस्मात् पुरा हयभूच्चैतत् पुराणं तेन स्मृतम्।
   निरूक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।। ब्रह्माण्ड पु० १/१/१७३
४. ऋग्वेद भवोडध्येमि यजुवेदं सामवेदमथर्वण हास पुराणं पच्चमं वेदानां
   वेदम्। छान्दोम्प ७/१

इस संयुक्त नाम से यह स्पष्ट है कि उपनिषद युग में दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध की भावना क्रियाशील थी। यास्क ने अपने निरूक्त शास्त्र में ऋचाओं के विशदीकरण के लिये ब्राह्मण ग्रन्थों की कथाओं को ——

'इतिहासमाचक्षते'[1]

कहकर उ्त किया है इतना ही नहीं, निरूक्त में वेदार्थ व्याख्या के अवसर पर उद्त अनेक विभिन्न सम्प्रदायों में ऐतिहासि को का भी एक स्वतंत्र सम्प्रताय था जिसका स्पष्ट परिचय 'इति ऐतिहासिकः' निरूक्त के इस निर्देश से उपलब्ध होता है। इस सम्प्रदाय के कथनानुसार अनेक मन्त्रों की व्याख्या यास्क ने स्थान स्थान पर की है। इतिहास की व्युत्प्रति – इति (इस प्रकार से) है। (निश्चयेन) आस (था–वर्तमान था) अर्थात् प्राचीन में निश्चय रूप से होने वाली घटना इतिहास के द्वारा ज्ञेय थी। इतिहास का व्युत्पति लभ्य अर्थ प्राचीन काल में वास्तविक घटित होने वाली घटना का द्योतक है। अर्थर्ववेद तथा ब्राहमण ग्रन्थों में यह शब्द ' पुराण में इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। यास्क ने निर्विवाद रूप से भिन्न स्वतन्त्र रूप से देवापि और शंतनु की कथा को इतिहास कहा है। विश्वमित्र को सुदास पैजवन के पुरोहित होने की घटना को भी इतिहास की संज्ञा प्रदान की है।

१. तत्रेतिहास माचक्षते – निरूक्त/१/७/२,
२. निदानभूतः इति ह एवं मासीत् इति य उच्चते स इतिहासः । निरूक्त २/३/१ पर दुर्गाचार्य की वृत्ति।
३. तत्रे तिहास माचक्षेत [1] – देवापिश्चाधिपेणः शन्तनुश्च कौरव्यों भ्रातरौ बभूवतुः। निरूक्त २/३/१ तथा तत्रेतिहास माचक्षते विश्वामित्र ऋषिः सुदासः पैजवनस्य पुरोहितो बभूव। निरूक्त २/७/२/।

यह सुप्रसिद्ध है कि पुराण आर्य–जाति के सर्वस्व हैं इन्हें आर्य साहित्य के विस्तृत प्रासाद के आधार स्तम्भ, प्राचीन इतिहास मन्दिर के स्वर्णकलश विविध विज्ञान–समूह में तैरने वाले जहाज के प्रकाश–स्तम्भ, सनातन धर्म–रूप शामियाने की डोरियों मानव–समाज को संस्कृति का पथ–प्रदर्शन करने वाले दिव्य प्रकाश तथा आर्य–जाति की अनादिकाल से सचित विद्याओं की सुदृढ मंजूषाये कहा जाय तो कुछ भी अत्युक्ति न होगी ।

आज विज्ञान के मध्याह काल में भी जितनी नूतन–२ कहकर विघायें प्रकाशित होती है या जितने प्रकार के बाद राजनैतिक, सामाजिक , वैज्ञानिक – जन्म ग्रहण करते हैं अन्वेषण करने पर उन सभी का मूल कही न कही पुराणों में प्रात. हो जाता है यह दूसरी बात है कि आज वे विद्यायें व बाद विस्तृत रूप धारण कर चुके है किन्तु उनका सूत्र पुराणो में अवश्य ही मिलेगा। यही कारण है कि पुराणों का अद्यावक भी हिन्दू जाति मे बहुत ही आदर है अथवा यों कहें कि वर्तमान भारतीय सस्कृति पुराणों पर ही अब लम्बित है समय के प्रभाव से कतिपय विदेशी विद्वानों के राजनैतिक चक्र के भ्रम में पडकर कतिमय भारतीय विद्वान कतिपय कालाविधि पूर्व पुराणो पर अरूचि प्रदर्शित करने लगे थे वे सभी सत्यानवेषण करते हुए अब पुराणें के भक्त दिखलाई पड़ते है जिस काल को भारतीय इतिहास का अन्धकार युग कहा जाता है उसमें भी पुराणों की दिव्य प्रभा ने ही प्रकाश पहुंचाया है आज ऐतिहासिक विज्ञान स्पष्ट तथा यह मानने लगे है कि पुराणों को छोड़कर मध्य कालीन इतिहास की भी श्रृंखला नहीं स्थिर हो सकती है वैदेशिक विद्वानों से प्राप्त पूर्व संस्कार वश अब भी पुराणों की कतिपय बातों को स्वीकार करने में संकोच रहता है । किन्तु हमारा विश्वास है कि अन्वेषण की प्रवृत्ति जैसे २ बढेगी वैसे २ ही पुराणोक्त इतिहासों की निर्मलता प्रकट होती जायेगी। पुराण विद्या का महत्व इससे स्पष्ट है कि याज्ञवक्य आदि महर्षियों ने विद्याओं की गणना में पुराण विद्या को प्रथम स्थान प्रदान किया है –

पुराण न्याय मीमांसा धर्मशास्त्रंगमिश्रिताः।।
वेदा : स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दशा ना।

अर्थात् पुराण न्याय मीमंसा धर्मशास्त्र षटवेदांग
और चारवेद ये चतुर्दशा विद्या और धर्म के स्थान हैं ।।[1]

स्मृति सूत्र महाभाठय महाकाव्यादि समस्त प्राचीन ग्रन्थों में पुराणो की चर्चा व्याप्त है इतना ही नही वेद के ब्राह्मण भाग और सहिता भाग मे भी पुराण का नाम प्राप्त हो जाता है अथर्व संहिता मे दो बार पुराण का नाम प्राप्त होता है।

ऋचः समाानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वेदिवि देवा दिवि, श्रृताः ।[2]

इसकी व्याख्या सर्वदेव भाष्यकार श्रीमाधवचार्य ने इस प्रकार की है –

"सब के नाश के अनन्तर भी शिष्ट रहने वाले अर्थात् शेष रह जाने वाले परमात्मा का नाम 'उच्छिष्ट' है । उसी से ऋक् साम्, छन्द और पुराण यजुर्वेद के साथ उत्पन्न हुए है"

वैज्ञानिक प्रक्रियानुसार जो पदार्थ अपने केन्द्र से विच्छिन्न होकर किसी दूसरे में प्रविष्ठ हो जाया।

ऋ० की परिभाषा में 'प्रवर्ग्य' और अथर्व की परिभाषा में ' उच्छिष्ट ' कहा जाता है। जैसे कि सूर्य का ताप पत्थर आदि में प्रविष्ट होकर अपने केन्द्र से विच्छिन्न हो जाता है इसी कारण ग्रीष्मकाल में सूर्यस्त हो जाने पर पत्थर आदि में दीर्घ काल पर्यन्त ताप बल रहता है इसी प्रकार एक व्यापक मूल तत्व से पृथक होकर जो २ पदार्थ अपनी पृथक संस्था बनाते गये है ' उच्छिष्ट या प्रवर्ग्य कहे गये है सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति इन उच्छिष्टो से ही होती है यही अभिप्राय उप युक्ति अथर्व मन्ता में वर्णित है हमारा तात्पर्य है कि पुराणों या वेदों के साथ साहचर्य और समान उत्पति इस मन्त्र में वर्णित है ।

---

१. पुराण परिशीलन, प्रस्तावना, प्रकरण ,पृ० १ द्रष्टव्य[2]

इतिहास और पुराण में अभेदता

इतिहास और पुराण के सम्बन्ध मे अथर्ववेद के ब्रात्य काण्ड का निम्न मन्त्र विचारणीय है–

" तमुचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रहम चानुव्यच लन्।
ऋचां च वै ससाम्नां च यजुषां च ब्रहमणश्च।।[1]
प्रियं धाम भवति, य एवं वेद सा वृहती दिशमनुव्यच लत्।
तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसी श्चानुव्यचलन।
इतिहासस्य च सा वै पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसी नाञ्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद"।[2]

व्रात्य प्रजापति का प्रेरक है। नीललोहित, ईशान और महादेव आदि उसके नाम के रूप में परिगाणित किये गये है। इससे यह प्रतिपादित होता है कि ' व्रात्य ' पद से यहाँ महादेव का ही ग्रहण है। प्रारम्भ में सर्वप्रथम व्रात्य की स्थिति का निरूपण है और पुराणों में भी नील लोहित ईशानादि नाम महादेव के ही उपलब्ध होते है। इस व्रात्य का भिन्न भिन्न दिशाओं में चलना और देवता पितृ आदि का उनके साथ चलना विस्तार वर्णित है उसी प्रसंग में प्रथम कण्द्रिका में चारों वेदों का उसके साथ साथ चलना निरूपित हुआ और आगे की कण्दि का में इतिहास पुराण कथाओं नाराशंसी (गाथा विशेष) का उनके साथ चलना निरूपित हुआ है उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि चारों वेदो के समान इतिहास पुराण का भी श्रुति में निर्देश होने के कारण ' पुराणों का पंचम वेद होना श्रुति को भी अभिप्रेत है सिद्ध हो गया । उपनिषदों में छान्दो य ' बृहदारण्यक [2] आदि में इतिहास पुराणों के नाम वेदों के साथ स्पष्ट तय वर्णित हैं और 'पंचम पद' भी है जो कि पुराणों का पंचम वेद होना स्पष्ट सिद्ध करता है

---

१. अथर्ववेद काण्ड १५ अनु० ०१ सूक्त है

पुराण लक्षण

पुराण के साथ "पञ्चलक्षण" का सम्बन्ध प्राचीनतम् एवं घनिष्ठ है। पञ्चलक्षण के अर्न्तगत निम्ननिखित विषय इस प्रख्यात श्लोक द्वारा लक्षित किये गये है–

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्त राणि च ।

वश्यानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम्।[1]

पच लक्षण शब्द पुराण का इतना घोतक माना जाता था कि अमरकोश में यह शब्द बिना किसी व्याख्या के ही प्रयुक्त हुआ है व्याख्या विहीन पारिभाषिक शब्द का प्रयोग उसकी सार्वभौम लोकप्रियता का सूचक है इस शब्द के सन्दर्भ में भी सही तथ्य सर्वतोभावेन क्रियाशील माना जाना अभीष्ट होगा ।

पुराण की सर्वत्र मान्य परम्परानुसार उक्त पाँच विषय ही वर्णनीष है–

१. **सर्ग**—जगत् की तथा उसके नाना पदार्थों की उत्पति(सृष्टि) सर्ग कहलाती है ।

अव्याकृतगुण क्षोभात् महतस्त्रि वृताऽडहमः

भूनमात्रे न्द्रियार्थानां सम्भवः सर्गउच्यते।।

अर्थात जब मूला प्रकृति में लीन गुणक्षुब्ध होते है तब महत् तत्व की उत्पति होती है।

१. अधी महे भगवन् इति होपससाद सनत्कुमारं नारदः।
तंहोवाच यद्वेस्थ तेन मौपसीद ततस्त ऊर्ध्व वक्ष्यामीति।
सहोवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि, यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थम्।
इतिहास पुराणं वेदानां वेदम्, पित्र्यं राशि दैवं निधिम्, वाकौवाच्यम्, एकायनम्, दैवविद्या, ब्रमहविद्यां भूतविद्यां,क्षत्रविद्यां, नक्षत्रविद्यां – सर्वदेव जनविद्याम एतद् भगवोऽध्येमि।
सोउहंभगवो मन्त्रविदेवाऽस्मि नार्टम् विद्। छान्दोग्य, प्रपा० ७/१६

२. स अथैद्रस्थमनासैह भ्याहिता त्पुष भूमा विनिश्चर न्त्यैवं वा अरेडस्य महती भूतस्य निःस्वसितमेत च्चवेदों यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वान्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः 'श्लोकः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि, व्याख्यानागि त्येवैतानि – सर्वाणि निः श्वसितानि।
बृहादरण्यक उप० अ० मा० ३ मन्त्र १०।

महत् तत्व से तीन प्रकार –

१. तामस

२. राजस

३. सात्विक

के अहंकार बनते है। त्रिविध अंहकार से ही पंचतन्मात्रा (भूतमात्र), इन्द्रिय, तथा पंचभूतों की उत्पत्ति होती है। इसी उत्पत्ति क्रमकी संज्ञा ही सर्ग कहलाती है।

२. प्रतिसर्ग–संर्ग के विपरीत वस्तु अर्थात प्रलय प्रतिसर्ग है विष्णु पुराण में प्रतिसर्ग के स्थान पर ' प्रतिसंचर '[(1)] शब्द का प्रयोग मिलता है। श्रीमदाभागवत् में इस शब्द के स्थान पर संस्था शब्द का प्रयोग हुआ है।

नैमिन्तिकः प्राकृति को नित्य आत्यन्तिको लयः।
संस्थेति कविभिः प्रोवक्ता चतुर्थाऽस्य स्वभावत् ः।।[(2)]

इस ब्रहमाण्ड का स्वभाव से ही प्रलय हो जाता है और यह प्रलय चार प्रकार का है –

१. नैमित्तिक

२. प्राकृतिक

३. नित्य

४. आत्यन्तिक

यही संस्था शब्द से कथित है।[3]

१. विष्णु पुराण ३/६/२४, मार्कण्डेय १३४/१३ आग्नि १/१४, भविष्य/२/५, ब्रहमवैवर्त १३३/६, वराह २१४ ,स्कन्द(प्रभासखण्ड २/८४) कूर्म(पूर्वार्द्ध १/१२), मत्स्य ५३/६४,गरूड़(आचारकाण्ड २/२८), ब्रहमाण्ड (प्रक्रियापाद १/३८), शिवपुराणं (वायवीय संο १/४१)।

२. श्रीमदागवत पुराण १२/७/११।

३- वंश

राज्ञां ब्रहमप्रसूतानां वंशस्त्रैकालि कोऽन्वय. ।।[1]

अर्थात ब्रहमा द्वारा जितने राजाओं की सृष्टि हुई, उनकी भूत,भविष्य तथा वर्तमान का लीन सन्तान परम्परा को वश नाम से अभिहित किया जाता है भागवत के द्वारा व्याख्यात् इस शब्द से राजाओं की ही सन्तान–परम्पराओं का उल्लेख प्राधान्य विद्या है। परन्तु वंश को राजवंश तक ही संकुचित करना तर्कसगत नही है। इस शब्द के भीतर ऋषि वंश का ग्रहण भी इतस्ततः अन्य पुराणो में प्राप्त होता है

४- मन्वन्तर

पुराण के अनुसार सृष्टि के विभिन्न काल मान का द्योतक यह शब्द है। मन्वन्तर, १४ होते है । प्रत्येक मनवन्तर का अधिपति एक विशिष्ट मनु हुआ करता है जिसके सहयोगी पाँच पदार्थ और भी होते है ।

मन्वन्तरं मनु र्देवा मनुपुत्रा : सुरेश्वर ।
ऋषयों ऽशावता राश्च हरें, षड्विधमुच्यते।।[2]

मनु,देवता, मनुपुत्र, इन्द्र सप्तर्षि और भगवान् के अंशावतार इन छः विशिष्टताओं से युक्त समय को 'मन्वन्तर' कहते है।

---

१. विष्णु० पु० १/२/२५

२. श्रीमद्भागवत पु० १२/७/१७

३. भागवत पु० ३/१०/१४ में – ' प्रलय ' के लिए प्रयुक्त –

' प्रति संक्रम शब्द प्रतिसर्ग केसमान ही संक्रम (सर्ग) से विपरीत तत्व का बोधक है।

काल–द्रव्य–गुणैरस्य त्रिविधः प्रतिसंक्रमः।।

वि० पु० का ' प्रति संचर ' शब्द इसी शैली का शब्द है ।

५. **वंश्यानुचरित**

' वंशानुचरितं तेषां वृन्तं वंशधराश्च ये।'

विभिन्न वंश में उत्पन्न हुए वंशधरों का तथा मूल पुरूष राजाओं का विशिष्ट विवरण जिसमें वर्णित होता है वह ' वश्यानुचरित ' कहलाता है।

यद्यपि मनुष्य वंश में उत्पन्न महर्षियों का तथा राजाओं का चरित्र भी समाविष्ट है तथापि महर्षियों के चरित्र की अपेक्षा राजाओं के चरित्र का ही प्राध ान्य ही पुराण अभीष्ट है । राजनीतिशास्त्र में 'पुराण पञ्च लक्षणम् का एक नवीन ही संकेत उपस्थित किया गया है जो उपर्युक्त लक्षण से ही नितान्त भिन्न है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में निम्न श्लोक उल्लिखित है–

सृष्टि–प्रवृत्ति संहार धर्म–मोक्षप्रयोजनम्।
ब्रहमभिविविधै : प्रोक्तं पुराणं पंचलक्षणम्।

इसमें पच्चलक्षण की एक नितान्त नूतन व्याख्या दृष्टिगोचर होती है इसमें धर्म को पुराण का एक अविभाज्य लक्षण स्वीकार कियागया है इसका तात्पर्य है कि मूल रूप से पुराण में धार्मिक विषयों का सन्निषेश अभीष्ट था। ध र्म का सम्बन्ध पुराण के साथ अवान्तर शताब्दियों की घटना है जब यह निकसित होकर अन्य विषयों को भी अपने में सम्मिलित करने लगा था आध ुनिक आलोचकों का प्रायशः यही अभिमत है परन्तु जयमंगला के इस महत्वपूर्ण उल्लेख से यह मत यथार्थतः विशुद्ध नही प्रतीत होता है ' मन्वन्तराणि सद्धर्म ' कहकर भागवत ने भी मन्वन्तर के भीतर धर्म का उपन्यास न्याय माना है। यह कथन उपर्युक्त सिद्धान्त का पोषक माना जा सकता है [3]

---

१. भागवतपु० १२/७/१६

२. भगवतपु० १२/७/१५

इस संक्षिप्त विवरण में 'वंश' के अन्तर्गत देवताओं तथा ऋषियो के वंशो का न्यूनतधिक्य समावेश है । इन विषयों को पुराण का मौलिक वर्ण्य विषय मानने से प्रधान हेतु ' सूत' के कार्यो के साथ इसकी पूर्ण संगति है क्योकि पुराण का वाचन तथा व्याख्यान करना सूत' सूत' का ही प्रधान कार्य था। वायुपुराण में सूत' ने स्वयं ही स्वधर्म का निर्देश इन महत्वपूर्ण शब्दों में किया है ।

स्वधर्म एव सूतस्य सद्धिवृष्टि : पुरातनैः।
देवतानामृषीणाञ्च राज्ञां चामित तेजसाम्।
वंशानां धारणं कार्य : श्रुतानां च महात्मनाम्।
इतिहास पुराणाषु दिष्टा ये ब्रहमवादिभि :।
न हि वेदेष्व धीकार : कश्चित् सूतस्य दृश्यते ।[४]
अर्थात पुरातन सज्जनों के द्वारा दृष्ट उपदिष्ट :।

सूत का स्वधर्म है देवताओं ऋषियो अमित तेजससम्पन्न राजाओं का तथा लोक विश्रुत महात्माओं के वंशों का धारण करना ये महात्मा जनादि इतिहास पुराणों में ब्रहमवेन्ताओं के द्वारा दिष्ट होते है सूत्र का अधिकार वेद में नही होता । वायुपुराण के इन कथनों द्वारा इतिहास पुराण और वेद का द्वैविध्य विशदतया द्योतित किया गया है इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराण की धारा वैदिक धारा से पृथक विभिन्न धारा थी जिसके संरक्षण संवर्धन प्रचार प्रसार का कार्य सूत के अधिकार सीमा के भीतर था ।

पुराण का दश लक्षण

एक द्वितीया धारा भी लक्ष्ण के सन्दर्भ में हमें प्राप्त होती है । श्रीमद्भागवत और ब्रहम वैव्त पुराण में दस लक्षणों वाला पुराणो की कहा गया है। [५] यहाँ दशलक्षण तथा पाँच लक्षण के तुलनात्मक विवेचना का संक्षिप्त स्वरूप विवेचित है। यद्यपि भागवत के दोनों स्थलों पर दिए गये लक्षणों में मूलतः साम्य ही है, नामत वैषम्प किञ्चित मात्र ही प्रतीत होता है इनमें शब्दभेद मात्र है अर्थ भेद

नही भागवत के द्वादश स्कन्ध के अनुसार निम्न दस लक्षण है –

सर्मश्चाथ विसर्गश्च वृन्ती रक्षान्तराणि व ।
वंशो वंशानुचरित सस्था हेतुरपाश्रय : ।। [1]

१. **सर्ग** - उपर्युक्त सर्ग से यह भिन्न नहीं है ।

२. **विसर्ग** - जीव की सृष्टिा परमेश्वर से अनुग्रह से ब्रहमा सृष्टि का सम्मर्थ्य प्राप्त करके महत् तत्व आदि पूर्व कर्मों के अनुसार अच्छी और बुरी वासनाओं की प्रधानता के कारण जो यह चराचर शरीरत्माक उपाधि से विशिष्ट जीव की सृष्टि किया करते है उसे ही विसर्ग कहते है विसृष्टि विविधा सृष्टि न तु वैपरीत्येन सृष्टिः प्रलयः इत्यर्थः। इसकी उपमा के सन्दर्भ में कह सकते है कि जैसे एक बीज से दूसरे बीज का जन्म होता है उसी प्रकार एक जीव से दूसरे जीव की सृष्टि को विसर्ग कहते है

पुरूषानुमृहीता नामे तेषां वासनामयः।
विसर्गेऽयं समाहारो बीजाद् बीजं चराचरम्। [2]

३. **वृत्ति** - जीवों के जीवन निर्वाह की सामग्री भागवत के अनुसार चर पदार्थो की अचर पदार्थ वृत्ति है मानव जीवन को चलाने के लिए जिन वस्तुओं का उपयोग मनुष्य करता है वही उसकी वृत्ति है चावल, गेहूॅ आदि सभी वृत्ति के अन्तर्गत आते है। कुछ वृत्ति को तो मनुष्य से स्वभाव वश अपनी कामना से निश्चित कर लिया है और कुछ वृत्ति को शास्त्रादेश के कारण वह ग्रहण करता है दोनों का उद्देश्य मानव जीवन का धारण एवं संरक्षण ही है ।

४. **रक्षा** - इसका सम्बन्ध भगवान के अवतारों से है। भगवान युग युग में पशु–पक्षी मनुष्य, ऋषि देवता आदि के रूप में अवतार ग्रहण कर अनेक लीलाये किया करते है इन अवतारों के द्वारा वे वेदत्रयी वेदधर्म से निरोध करने वाले व्यक्तियों का संहार भी किया करते है । इस कारण भगवान् की यह अवतारलीला विश्व की रक्षा के लिये ही होती है अर्थात इसकी संज्ञा 'रक्षा' है

रक्षाऽच्युतावतारेहा विश्वस्यानु युगे–युगे।
तिर्यङ० मर्त्येषि देवेषु हन्यन्ते यैस्त्रयीद्विषः। [3]

भागवत् के इस श्लोक द्वारा सारतः अवतार तत्व के हेतु पर प्रकाश डाला गया है अवतार का लक्ष्य वेद विरोधियो का संहार करना था वैदिक धर्म की रक्षा करना है, श्रीमद्भगवत्गीता के प्रख्यात श्लोकों की ओर यहाँ स्पष्ट संकेत है । परन्तु त्रयीद्वेषकों का हनन विभु भगवान के लिए तो एक सामान्य कार्य है।इसी के लिए वे अवतार ग्रहण नही करते वरन् लीला विलास ही उसका प्रधान लक्ष्य है जिसका चिन्तन एव मानना करता हुंआ जीव इस ताणबहुल संसार से अपनी मुक्ति प्राप्त करने में समर्थ होता है ।

नृणं निः श्रेयसार्थाय व्यक्तिं भगवतों नृप।
अव्यपस्याप्रमेस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ।। [4]

लीला के द्वारा आनन्द रस का आस्वादन कराना तथा करना ही भगवान् के अवतारों का लक्ष्य है। भगवान् अपनी इच्छा से ही देह का ग्रहण करते है। भक्तो की आर्न्तपुकार इसमें कारण भूत अवश्य होती है, परन्तु भगवान् की स्वेच्छा ही प्रधान प्रयोजिका रहती है । भक्तों का रक्षा करना भी उनकी ललित लीला से बहिभूत नहीं होता –

स्वच्छन्दोयान्तदेहाय विशुद्धज्ञान मूर्तये।
सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नमः।। [5]

जीव को मुक्ति प्रदान करना ही सर्वज्ञ सर्वशक्ति मान् परमात्मा का एक मात्र लक्ष्य होता है भागवत की दशम स्कन्ध की प्रख्यात देवस्तुति में इसका स्पष्ट उल्लेख है –

श्रृण्वन् गृणन् संस्मरयश्च चिन्तयन्
नामानिं रूपाणि च मंग लामि ते।
क्रिपासु यस्त्वच्चरणरिविन्दयो –
राविष्टचेन्ता न भवाय कल्यते ।।

ये समस्त तय ' रक्षा ' के ही बोधक है [2]

५. **मन्वन्तराणि** - पूर्ववर्णित मन्वन्तर सदृश।

६. **वंश** - पूर्ववत्

७. **वंशानुचरित** - पूर्ववत्

६. **हेतु** - हेतु शब्द से जीव का ग्रहण अभीष्ट है। यह अविद्या के द्वारा कर्म का कर्त्ता है। संसार की सृष्टि में जीव को कारण मानने का रहस्य यह है कि जीव के अदृष्ट के द्वारा प्रयुक्त होने से विश्व का सर्ग तथा प्रतिसर्ग आदि होता है। फलतः जीव अपने अदृष्ट के द्वारा विश्व—सृष्टि या विश्व—प्रलय का कारण होता है । और इसी अभिप्राय से वह भागवत् में ' हेतू ' जैसे सार्थक शब्द द्वारा अभिहित किया गया है।

हेतुजीर्वोऽस्य सर्गादेरविद्याकर्मकारकः।
तं चानुशयिनं प्राहुख्याकृतमुता परे ।। [3]

चैतन के प्रयास से वह अनुशयी साक्षी माना गयाहै और उपधि प्राधनय की विवष से कतिपय जन उसे ' अव्याकृत ' नाम से पुकारते है जो जन उसे चैतन्य प्रधान की दृष्टि से देखते है वे उसे अनुशयी प्रकृति में शयन करने वाला कहते है। और जो उपधि की दृष्टि से कहते है वे उसे ' अव्याकृत ' अर्थात् प्रकृति रूप कहते है ।

---

१. भागवत पु० १०/२६/१४

२. भागवत पु० १०/२७/११

३. भागवत पु० १०/२/३७

---

१. भागवत् १२/७/१८

१०. **अपाश्रय** - ब्रहम का द्योतक महनीय अभिप्राय है । जीव की तीन वृत्तियां या अवस्थायें होती है

1. जाग्रत
2. स्वप्न
3. सुषुप्ति

और इन दशाओं में चैतन्य का निवास है जो क्रमशः–

1. विश्व
2. तैजस
3. प्राज्ञ

की सज्ञा से प्रख्यात है। इन मायामपी वृत्तियों में साक्षिरूपेण जो प्रतीत होती है वही अधिष्ठान रूप ' अपाश्रय ' है। वह इन अवस्थाओं से परे तुरीय तत्व के रूप मे लक्षित होता है वही ब्रहमा है और उसे ही अपाश्रय कहते है –

व्यतिरेकान्वयी यस्य जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिषु।
मायामयेषु तद् ब्रहम जीववृत्तिस्यपाश्रय :।।[1]

"जाग्रदादिस्ववस्थासु जीवतया वर्तन्ते इति जीव–वृत्तयः विश्व–तैजस –प्राज्ञा। तेसु मायामयेषु साक्षितमान्वयः समान्मादै। व्यतिरेको यस्यतद् ब्रहम संसार प्रतीति माधमो रधिष्ठानमधि भूतमया श्रय–उच्यते।"[2]

नाम विशेष – (देवदत्त,घट,पटादि) तथा रूप विशेष–(कोई मानवाकार है तो कोई पश्वाकार का है आदि) के युक्त पदार्थो पर विचार करें, तो वे सन्तामात्र वस्तु के रूप में सिद्ध होते है। और उनकी समस्त बाहय विशेषतायें नष्ट हो जाती है। वह सन्ता ही एक मात्र उन विशिष्टताओं के रूप में प्रतीत होती है और वह उनसे पृथक भी है। यही दशा ब्रहम और देह के सम्बन्ध में भी है इस देह का आदि बीज है तथा पञ्चक (पञ्चत्व, नाश) इसका अन्त है ––

' बीजादि पञ्चतान्तासु '

---

१. श्रीमद् भागवत् पुराण १२/७/१९

२. श्रीमद् भागवत् पुराण १२/७/१९ श्री धरी टीका।

शरीर तथा विश्व ब्रहमाण्ड की उत्पत्ति से लेकर मृत्यु तथा महाप्रलय पर्यन्त यावत् नाना विशेष अवस्थाये होती है तावन् समस्त रूपों में परम सत्य ब्रहम ही प्रतीत होता है। और वह उनसे पृथक भी है। वह 'युतायुत ' के रूप में प्रतीत हो रहा है अनुस्पूत होने से अर्थात् यह नाम रूपात्मक पदार्थो के साथ ' युत' भी है और उनसे पृथक् रूप में रहने के कारण 'अयुत' भी है –

पदार्थेषु यथा द्रव्यं तन्मात्रं रूपनामसु।
बीजादि पञ्चतान्तासु हयवस्थासु युतायुतम्। [1]

यही अधिष्ठान और साक्षीरूप मे प्रतिभासित होने वाला ब्रहम ही भागवत् सम्मत अपाव्यय तत्व है इसी ब्रहम के ज्ञान होने से ईहा – चेष्टा या असत् की मिवृत्ति हो जाती है कब और कैसे निवृत्ति होती है इसका

इसका उत्तर भी हमें भागवत् मे प्राप्त होता है –

विरमेत यदा चित्तं हित्वा वृत्तित्रयं स्वयम्।
योगेन वा तर्दामानं वेदेहाया निवर्तते ।।[2]

अर्थात् जब चिन्ता स्वयं आत्मविचार से अथवा योगाभ्यास के द्वारा सत्व–रज–तम गुणों से सम्बन्ध रखने वाली व्यावहारिक वृत्तियों का और जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति आदि स्वाभाविक वृत्तियों का परित्याग कर जगत् के व्यापार से विश्राम प्राप्त कर लेता है शान्त हो जाता है, तब शान्त वृत्ति के उदय होने पर –' तत्वमसि ' 'अह ब्रहमास्मि ' आदि महावाक्यो के द्वारा आत्मज्ञान का उदय होता है वह आत्मा को जान लेता है उस समय आत्माज्ञानी पुरूष अविद्या जनित कर्मवासना से और कर्म–प्रवृत्ति से निवृन्त हो जाता है ।

---

१. भागवत् पुराण १२/७/२०,

सारतः यही आश्रय तत्व है और यही भागवत् का अन्तिम ध्येय है। इसी की विशुद्धि के लिए पूर्वाक्त नव लक्षणो का प्रतिष्ठापन किया गया है आत्मा की उपलब्धि ही वास्तविक परमध्येय है, परन्तु इस ज्ञान की पुष्टि के लिए पूर्वोक्ति नव सर्ग–विसर्ग आदि लक्षणें। का इस प्रयोजन के लिए वर्णन किया गया है –

दशमस्य विशुद्धर्य नवानमिह लक्षणम्।

भागवत् पुराण के द्वितीय स्कन्ध में भी दस लक्षणों का निवेश है जो पूर्वाक्त लक्षणो से साम्य रखने पर भी नामतः है –

अत्र सर्गो सिर्गश्च स्थानं पोषण मूतय :।
मन्वन्तरेशानुक था निरोधो मुक्तिराशय :।।[2]

अर्थात् ये १० निम्न है –

१.	सर्ग :	–	पूर्वाक्त सर्गः
२.	विसर्ग :	–	पूर्वाक्त विसर्ग /
३.	स्थानम्	–	स्थिति
४.	पोषणम्	–	तदनुग्रह :
५.	ऊतयः	–	कर्मवासनाः
६.	मन्वन्तरम्	–	सद्धर्मः
७.	ईशानुकथा	–	१
८.	निरोधः	–	२ प्रति सर्गवत्
९.	मुक्ति :	–	३
१०.	आश्रय :	–	४

---

१. भागवत् पुराण १२/७/२१

२. भागवत् पुराण २/१०/१

उभय लक्षणों की पारस्परिक तुलना

भागवत् के दो विभिन्न स्कन्धों मे प्रतिपादित दस लक्षणों का स्वरूप सारत प्रतिपादित एवं प्रतिष्ठापित किया गया है दोनों की तुलना करनें पर दोनो मे विशेष पार्थक्य प्रतीत नही होता ।

	द्वातश स्कन्ध	द्वितीय स्कन्ध
१.	सर्ग	दोनो में समानभावेन ग्रहीत।
२.	विसर्ग	दोनो में समानभावेन ग्रहीत
३.	अन्तराणि के स्थान पर	मन्वन्तर वर्णित
४.	अपाश्रय के स्थान पर	आश्रय वर्णित
५.	हेतु के स्थान पर	ऊति वर्णित

६ और ७ वंश वंशानुचरित–ईशानु कथा सभी का समावेश तत्वतः समान ही है।

८. सस्था के चार प्रकार –

क– नैमित्तिक, प्रलय का अन्तर्भाव निरोध में

ख– प्राकृतिक प्रलय का अन्तर्भाव निरोध में

ग –नित्या प्रलय का अन्तर्भाव निरोध में

घ – आत्यन्तिक प्रलय मोक्ष में अन्तर्भाव

९. रक्षा – ईशानुकथा और पोषण

१०. वृन्ति – स्थान / स्थिति

वैकुण्ठविजय – स्वकार्य साधकता

---

१. अवतानुचरितं हरेश्चास्यानुवर्तिनाम्
सतमीश कथा प्रोक्ता नानाख्यानोपगृहिता :।। भागवत् पु० २/१०/५

२. निरोधऽस्यानुशयनात्मनः सहशाक्तिभि : भागवत् पु० २/१०/६

३. मुक्तिहित्वाऽन्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थिति : भागवत् पु० २/१०/६

४. आभासश्च निरोधश्च यतश्चाध्यवसायतें।
स आश्रयः परं ब्रहम परमात्मेति शब्दयते ।। भागवत् पु० २/१०/७/८६

ब्रहमाण्ड पुराण में निदिष्ट दस लक्षण प्राय. भागवत् पुराण के सदृश ही हैं किञ्चित मात्र ही पार्थक्य है –

१ सर्गः

२. विसर्ग :

३ स्थिति :

४. कर्मणां वासना

५ मनूनां वार्ता

६. प्रलयानांवर्णनम्

७. मोक्षस्य निरूपणाम् – ये सात लक्षण समान ही हैं।

८. हरेः कीर्तनम् – आश्रय तथा पोषण के बोधक है।

९. वेदानां च पृथक–पृथक – ईशानु कथा है क्यों कि पुराणों में सर्वत्र–हरिः सर्वत्र गीयते का ही प्रतिपादन है ।

१०. वंशानुचरित

इस प्रकार से दस लक्षण भी पूर्वोवत लक्षणों से साम्य रखतें है ।

उपर्युक्त प्रतिपादित दस लक्षणो को पंचलक्षणों का ही विस्तार मात्र ही हृदयंगम् करना चाहिए सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तराणि तथा वंशानुचरित ये पंचलक्षण तो भागवत् के द्वादश स्कन्ध अध्याय सात में प्रतिपादित है इसमें लेशमात्र भी विप्रतिपन्ति नही हो सकती । इतर अवशिष्ट पञ्च लक्षणों का भी समावेश इन्हीं पंचलक्षणों में ही व्यवस्थितः किया जा सकता है ।

दश लक्षण पुराण-सामान्य का लक्षण न होकर -

पुराण मूर्धन्य श्रीमद्भागवत् का ही व्यक्तिगत लक्षण है यही मानना सर्वथा उचित प्रतीत होता है भगवान् के स्वरूप का तथा भागवत् धर्म का विवेचन ही श्रीमदभागवत् पुराण के उदय का हेतु है । फलतः भगवान् ही यहाँ प्राधान्येन विवेचय तत्तव है । इधर नवलक्षण तो उन्हीं के पोषक होने के कारण यह विवेचित हैं । उनका विवेचन प्रकृत परमेश्वर के स्वरूपाधयक होने के कारण है

उनमें अपनी कोई पृथक उपयोगिता या सन्ता नहीं है ।

इसीलिए भागवत्‌कार की स्पष्ट उक्ति है ।

'दशमस्य विशुद्धयर्थ नवानामिह लक्षणम्

आदि के नव लक्षण दशम् तत्व 'अपाश्रय' तत्व की विशुद्धि यथार्थ निश्चय के लिए है । परमात्मा तथा जीव के परस्पर सम्बन्ध का अवलम्बन कर इन तत्वों का प्रतिपादन भागवत् में किया गया है । पञ्चकृत्यकारी परमशिव के समान ही परमेश्वर को पञ्चकृत्यकारिता की कल्पना कथामपि आप्रसंगिक नहीं है ।[१] सर्ग, स्थिति, निरोध, विसर्ग तथा पोषण परमशिव के पंचकृत्या, उत्पत्ति, स्थिति, लय, निग्रह तथा अनुग्रह के क्रमशः भागवत् प्रतिनिधि स्वीकार किये जा सकते है ।

दस लक्षणों का रहस्य

भागवत् पुराण के दस लक्षणों में यह रहस्य प्रतीत होता है कि ' जन्माद्यस्य यतः आदि के द्वारा सृष्टि की –

१. उत्पत्ति

२. स्थिति

३. संहार

का कर्त्ता ही ईश्वर माना गयाहै श्रुति का भी यही कथन है–

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, यत्र जातनि भवन्ति,

यत् प्रयन्त्य भिसं विशन्ति आदि ।[२]

१. दृष्टव्य 'पुराण' वर्ष १, सं० २ में 'पुराण' लक्षणननि शीर्षक लेखा। पु० १३५/१३८

२. पुराण परिशीलन पु० ५४

आगम के 'प्रतिज्ञा–दर्शन' में 'परमशिव' शब्द से अभिहित परमेश्वर के द्वारा पञ्चकार्यों का सम्पादन कथित है।
परमशिव के पाँच कार्य हैं –

१. सृष्टि
२. स्थिति
३. संहार
४. विलयन निग्रह
५. अनुग्रह

इनमें सृष्टि–स्थिति– संहार के त्रिविध कार्य तो श्रौत हैं। जीव को वन्धन में लेना तथा उन पर अनुग्रह करके उसे मुक्त करना ये दो कर्म यहाँ अधिक कथित है । भगवान् या परमशिव के इन्ही पॉच कृत्यों को श्री मद्भागवत में – सर्ग, स्थान, निरोध, विसर्ग और पोषण शब्दों से अभिहित किया गया है । पाँच कार्यो के परिचालक परमेश्वर के द्विविध रूप है –

प्रथम वह स्वरूप है जिसका आश्रय उपासना में भक्त गगलिया करते हैं । उस रूप में अनुग्राहकत्व भी है अर्थात् उस रूप की उपासना से भक्तों की इष्टसिद्धि भी होती है । उस रूप को दस लक्षणों में 'आश्रय' शब्द से व्यक्त किया गया है। परमेश्वर का द्वितीय स्वरूप वह है जो सम्पर्ण जगत् का परिचालन करता है। वह कालरूप है उसे ही दस लक्षणों में ' मन्वन्तर कहा गया है । इस प्रकार ईश्वर प्रतिपादक भागवत् में ईश्वर निरूपण से सम्बन्ध सात लक्षण हो जाते है । अपने कर्मानुसार कर्मपाश में बांधकर जीवभाव को प्राप्त प्राण के सम्बन्ध में संसार मार्ग में डालने वाली 'ऊति' (कर्मवासना) और उस जीवभाव को प्राप्त प्राणी को मुक्त कर की साधि का 'ईशानुकथा' एवं पोषण की फलभूता 'मुक्ति' ये तीन लक्षण और जोड़ दिये गये है। पूर्व कथित सात और ये तीन मिलाकर जो दस लक्षण बनाये गये है उनकी युक्तियुक्तता जीव और ईश्वर के सम्बन्ध को मानकर ही समझ में आ सकती है । ये समस्त दस लक्षण सभी पुराणों के सम्मान्य लक्षण नही है अपितु भागवत् के विशिष्ट

लक्षण है क्योंकि भगवान् के ही प्रधान रूप से सर्वव्यापी सर्व नियन्ता जगदीश्वर और उनकी आराधना में अधिकार रखने वाले जीव का वर्णन किया गया है। यही कारण है कि उपर्युक्त दस लक्षण भागवत् में ही कहे गये हैं, अन्य किसी पुराण मे इनका विवरण नही प्राप्त होता । भागवत् के द्वादश स्कन्ध में जो यह कहा गयाहै कि ये दस लक्षण महापुराणो के है उसका आशय यही लगाया जा सकता है कि प्रसङ्गागत रूप से इन समस्त बातों का निरूपण प्रायः समस्त पुराणो में प्राप्त हो जाता है। अथवा उस पर समाधान यह भी हो सकता है कि ये दस लक्षण पुराणों में सर्वत्र प्राप्त होने वाले पॉच लक्षणों की व्याख्या मात्र हैं । ब्रहमवैवर्न्ता पुराण में भी प्रथगतः पाँच लक्षणों का वर्णन कर भागवत् महापुराण का अनुवर्तन प्रकाशित करने के लिए भागवत् के अनुसार दस लक्षण भी वर्णित कर दिये गये है। तत्रापि पॉच और दस लक्षणों को पृथक पृथक गिन कर कहा गया है कि पॉच तो उपपुराणो के लक्षण है और दस महापुराणों के लक्षण है यथार्थ रूप में उपपुराणों में पाँच विषय नही मिलते। देवी भागवत् पुराण में[१] अन्य पुराणों की भाँति पॉच लक्षणों का कथन कर के सर्ग और प्रतिसर्ग का विलक्षण भाव से विवरण दिया गया है कि उस भगवती की तीन गुणों के अनुसार तीन महाशक्तियां है–

१. सान्ति वक गुण प्रधाना महालक्ष्मी ।

२. राजसगुण प्रधाना महासरस्वती ।

३. तामसगुण प्रधाना महाकाली।

---

१. देवी भागवत् पुराण स्कन्ध १/१८

इस प्रकार इन तीन महाशक्तियो का सृष्टि के प्रवर्तन और विस्तार के लिये जो स्वरूप धारण करना है उसको शास्त्र–विशरदो ने सर्ग का प्रथम रूप माना है । तत्पश्चात् विष्णु, ब्रहमा और रूद्र की उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और संहार के लिये हुई। इसे प्रतिसर्ग कहा गया है उसके पश्चात पुराणों में चन्द्रवश और सूर्यवंश में में उत्पन्न होने वाले राजाओं के वंशो का वर्णन है तदनन्तर हिरण्यकशिपु प्रभृति के वंशों का विवरण और स्वायम्भुवदि मनुओ का वर्णन हैं। आगे इन समस्त वर्णित घटनाओ में कितना काल लगता है । इसका विवरण 'मन्वन्तर' प्रकरण में किया गया है। देवी, ऋषि और मानवों के वंश में उत्पन्न हुए व्यवहार ओर घटनाओं का इतिहास 'वंशानुचरित' में वर्णित किया गया है और 'अन्त में यह कहा गया है कि इस प्रकार पुराणों के पाँच लक्षण होते है। यहॉ प्रधान जो चेतना शाक्ति है उसके अंशरूप महालक्ष्मी आदि का आविर्भाव – 'सर्ग' शब्द से वार्णित है उन शक्तियों से शक्तिमान् ब्रह्म–विष्णु–रूद्र है उन का आविर्भाव प्रतिसर्ग शब्द से कथित है यह पद्धति भी देवी भागवत् की स्वयं की है। इन विषयों को पुराणों का सामान्य लक्षण नहीं माना जा सकता है । क्योंकि अन्यत्र वर्णन की यह प्रक्रिया नहीं दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार स्कन्द पुराण के प्रभास खण्ड[१] में वर्णन है कि ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, रुद्र भुवन का माहात्म्य और संहार का वर्णन ये पुराणों के पाँच लक्षण हैं । ये भी स्कन्द पुराण के अपने ही लक्षण कहे जा सकते है अथवा इन पाँच लक्षणों का भी पूर्वोवत पाँच लक्षणों में ही समावेश हो जाता है ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराणों के सामान्य लक्षण, सर्ग, प्रतिसर्ग, आदि पाँच ही हैं । उनमें भी सर्ग ही प्रधान है । शेष लक्षण सृष्टि के ही स्वरूप के प्रतिपादक तथा उसके शेष अंश को पुष्ट करने वाले हैं ।

---

१. स्कन्द पुराण प्रभास खण्ड २/६४–६५।

पुराणों की संख्या का रहस्य

पुराणों की संख्या १८ है। पुराणो की सख्या के सम्बध मे एक विचार यह उत्पन्न होता है कि पुराण अट्ठारह ही क्यो ? वैसे भी जितने पुराण बनाये जाते उस संख्या पर भी इस प्रकार के प्रश्न उपस्थापित किये जाते कि इतनी ही सख्या क्यों है ? इसलिये कहा जा सकता है कि संख्या निर्माता की इच्छा पर होती है । भगवान् व्यास ने १८ ही बनाना उचित समझा इसलिये उतने ही बनाये । तथापि इतने मात्र से ही जिज्ञासा का शमन नही हो जाता। १८ की संख्या पर ऋषियों का विशेष आग्रह प्रतीत होता है –

१. चारवेद

२. चारउपवेद

३. षडवेदाङ्ग

४. पुराणे

५. न्याय

६. भीमांसा और

७. धर्मशास्त्र

ये १८ विद्यायें सुप्रसिद्ध है। विद्याओं की गणना में १८ संख्या ही ग्रहण की गयी हे धर्मशास्त्र में स्मृतियों भी १८ है, पुराण १८ है उपपुराण १८ हैं महाभारत के भी १८ ही पर्व है और आर्यों की सर्वस्व गीता भी १८ ही अध्यग्यों में पूर्ण हुई है। भागवत् पुराण की श्लोक संख्या भी १८००० ही है। इस प्रकार, इस १८ सख्या का कुछ आग्रहन्सा देखकर अवश्य अन्तः कारण में यह विचार उत्पन्न होता है कि यह संख्या इच्छाभाव से प्रतिष्ठापित की गयी है अथवा इसमे कोई गूढ़ रहस्य भी छिपा है इसका विचार करना आवश्यक है ।

प्राच्य ग्रन्थ कर्त्ताओं और व्याख्याकारों ने इस संख्या में कई प्रकार के रहस्य बताये है जिन का कतिपय दिग्दर्शन किया जाता है –

१. मानव शरीर में कार्य करने वाले १८ तत्व है –

१. पाँच ज्ञानेन्द्रियॉ – कान–ऑख–जिहवा–नासिका और त्वचा।

२. पॉच कर्मेन्द्रियॉ – वाणी–हाथ–पाद–लिङ्ग–उपस्थ।

३. सबका स्वामी –मन

४. पञ्चप्राण – प्राण–आपान–व्यान–समान–उदान।

५. बुद्धि।

६. अहङ्कार।

उपर्युक्त १८ के द्वारा आत्मा समस्त कार्य संचालित करता है। काम दो प्रकार के होते हैं ।

१. अच्छा कर्म

२. बुरा कर्म

जिन्हें पुण्य और पाप की संज्ञा प्राप्त है। इससे सिद्ध हो जाता है कि पाप करने वाले १८ द्वार हैं, तब १८ प्रकार के होने वाले पापों की निवृत्ति के लिए उपाय भी १८ प्रकार के ही होने चाहिए। इसलिए, पाप निर्वतकया धर्म प्रतिपादक शास्त्रो में १८ संख्या को विशेष स्थान प्रदान किया गया है, जिससे कि १८ प्रकार के पापों की निवृत्ति इन १८ ध्येयों से हो सके।

२. कर्मो के १८ भेद किये गये है और उनसे उत्पन्न होने वाली अशुद्धि को दूर करने के लिये शास्त्रों के १८ भेद कल्पित है किन्तु समस्त कर्म अपने स्वरूप से भी १८ सिद्ध होते है । न्यायदर्शन के भाष्य मे दस प्रकार के शुभ कर्म और आठ प्रकार के अशुभ कर्म परिगपित–किए गये है । मन, वाणी और शरीर इन तत्वो से शुभ और अशुभ कर्म हुआ करते है मन से तीन प्रकार के अशुभ कर्म होते है–

१. दूसरें के साथ द्रोह (बैर)।

२. दूसरे का द्रव्य उठा लेने की इच्छा – और

३. ईश्वर धर्म पर अविश्वास।

वाणी से चार प्रकार के अशुभ कर्म होते है।

१. झूठ बोलना।

२. दूसरों को कष्ट पंहुचाने वाले कटु शब्दों का उच्चारण।

३. चुगली करना ।

४. बिना प्रयोजन असम्बद्ध बोलते रहना।

इसी प्रकार शरीर से भी तीन प्रकार के अशुभ कर्म होते रहते है–

१. किसी प्राणी को मारना।

२. चोरी करना।

३. परस्ती गमन ।

ये सभी १० पाप है इन्हीं को दूर करने के लिए 'दशहरा' को पूजन होता है । वह १० पापों के हरण में सहायक देता है ।

इसके लिए विरोधी शुभ कर्म ८ प्रकार के है । मन से तीन प्रकार के शुभ कर्म होते है–

१. दुःखी प्राणी की रक्षा करने की भावना जिसे दया कहते है।

२. अनुचित रूप से द्रव्योपार्जन की इच्छा को रोकना।

३. गुरू, शास्त्र, और ईश्वर पर श्रद्धा करना।

वाणी से दो प्रकार के शुभ होते है–

१ ऐसे बचन बोलना जो सत्य, हो दूसरे को प्रिय लगे और हितकारी हो।

२. उत्तम शास्त्रों को निरन्तर अभ्यास, जिसे 'स्वाध्याय' शब्द से कहा जाता है।

शरीर से भी तीन प्रकार के शुभ कर्म हो सकते है –

१ दान ।

२ दूसरों की रक्षा ।

३. प्राणिमात्र की सेवा ।

इस प्रकार सब मिलाकर १८ प्रकार के शुभाशुभ कर्म है। इन समस्त का निरूपण विद्याओं में होता है अथवा यह शुभ–शुभ–विभाग केवल प्रवृत्ति मार्ग में है। निवृत्ति मार्ग में तो ये सभी त्याज्य कोटि में हो जाते है अर्थात् मुमुक्षु जन के लिए ये सभी अशुभ है। सभी १८ प्रकार के कर्म निवृत्ति मार्ग में त्याज्य हो जाते है। इसीलिए धर्मशास्त्र, पुराण आदि विद्याओं को भी १८ रूपों में रखा जाता है।

३. याज्ञवल्क्य स्मृत्ति में अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), शौच (पवित्रता), इन्द्रिय–संयम, दान, दम (मन को रोकना), दया और क्षमा (दूसरों के अपराधों को भी सहन कर लेना) ये सभी के लिये धर्म कहे गये है। योगशास्त्र और जैनागमों में भी इनके 'अणुव्रत' ओर 'महावत' नाम से दो भेद किये गये है। देश, काल और पात्र से परिच्छिन्न कर इन धर्मो का ग्रहण करना 'अणुव्रत' कहा जाता है। 'तीर्थादि' स्थानों में इन धर्मो का मैं पालन करूॅगा, यह संकल्प देश परिच्छेद हुआ । 'एकादशी, पूर्णिमा आदि तिथियों में या कार्तिकादि पवित्र महीनो में इन धर्मो का पालन करूँगा, यह काल परिच्छेद हुआ ओर ब्राहमण, सन्यासी आदि के साथ हिंसा आदि दुर्व्यवहार नही करूँगा या उनपर दया, क्षमा, दानादि करूँगा यह पात्र–परिच्छेद हुआ। इस परिच्छेद के साथ इन धर्मो का स्वीकार अणुव्रत कहलाया। और 'सब देशो में' सब कालों में सब प्राणियों पर इन धर्मो को व्यवहार में लाया जायेगा, यह संकल्प 'महाव्रत ' हुआ। इस प्रकार नौ धर्मो के दो–दो भेद होने से १८ प्रकार के कर्म हो गये । इन समस्त का प्रवृत्ति मार्ग में ग्रहण करने के लिए आदेश पुराणों में ही प्राप्त होता है। इसलिए भी पुराणों की संख्या १८ ही है ।

४. पुराणों में सम्पूर्ण भूमण्डल को १८ भागों में विभाजित किया गया है । हमारे प्राचीन ग्रन्थों में अष्टादश द्वीपों का नाम बहुत स्थलों पर उपलब्ध होता है । महाकवि कालिदास ने – कार्ववीर्य सहसार्जुन के वर्णन प्रसंग में लिखा है कि "अष्टादशद्वीप निरन्नातयूपाः"[१]

१. पुराण परिशीलन, पु० २६, द्रष्टव्य।

अर्थात् कार्तवीर्यार्जुन ने १८ द्वीपों मे यज्ञस्तम्भ गाड दिये थे। महाकवि श्रीहर्ष ने भी नैषधीय चरित में वर्णन किया है कि –

'नवद्वयद्वीप पृथग्जयश्रियाम्'[१]

अर्थात् महाराज नल में १८ विद्यायें वर्तमान थीं जो कि १८ द्वीपों की विजयालक्ष्मीयों के साथ मानों स्पर्धा करती थीं । पुराणों में एक मुख्य 'जम्बू द्वीप' और आठ उसके उपद्वीप गिनाये गये हैं जिनके नाम हैं –

१. स्वर्णप्रस्थ

२. चन्द्रशुक्ल

३. नारमणक

४. आवर्तन

५. मन्दरहरिण

६. पांचजन्य

७. सिंहल

८. लङ्का

इसके अतिरिक्त भारतवर्ष के भी नौ उपद्वीप गिनाये गये है जो निम्न हैं।

१ इन्द्रद्वीप

२. सौम्य

३. गान्धर्व

४. वारूण

५. कशेरूमान्

६. गभस्तिमान्

७. ताम्रपर्ण

८. कुमारिका

इसमें भी स्पष्ट है कि १८ द्वीपों की प्रदेश – व्याप्ति दिखलाने के लिये पुराण, धर्मशास्त्रादि विद्याओं की भी १८ संख्या नियत की गयी है।

१. नैषधीष चरितम्

---

५. विद्याओं के १८ भेद पूर्व मे वर्णित हैं । प्रकारान्तर से भी १८ भेद हो सकते है । १८ विद्यायें जो पूर्व में लिखी गई हैं वह गणना ब्राहमणों के लिये है और क्षत्रियों के लिए चार विद्यायें कही जाती है ।

१ आन्वीक्षिकी।

२. त्रयी।

३. वार्ता, और

४. दण्डनीति।

आन्वीक्षिकी यह न्याय विद्या का अंग है । त्रयी से तीनों वेद कहे गये हैं । ये दोनों विद्यायें यद्यपि उपर्युक्त १४ विद्याओं में भी ली जाती हैं इसलिये यहॉ पुनरुक्ति प्रतीत होगी, किन्तु धर्म को प्रधान रूप से वेदों को अध्ययन और दर्शनो को उदाहरण मानकर न्यायविद्या का प्रयोग ब्राहमण पक्ष में जायेगा और अर्थ को प्रधान मानकर वेदों को अध्ययन या लौकिक विषयों में न्याय विद्या का प्रयोग क्षत्रिय–पक्ष में लिया आयेगा, इसलिए पुररुक्ति नहीं होती । इन १८ विद्याओं का प्रयोग पुराणों मेें यत्र–तत्र–सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है । इस संकेत से भी पुराणों की संख्या १८ ही है ।

६. पुराणों में सृष्टिविद्या ही प्रधान रूप से प्रतिपाद्य है। सृष्टि में जिन पदार्थो की उत्पत्ति का वर्णन होता है, वे १८ की संख्या में है।

१. महत् तत्व

२. अहंकार

३. पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ

४. पाँच कमेन्द्रियाँ

५. एक मन

६. पञ्चमहाभूत – आकाश, वायु, अग्नि, जल, और भूमि (पृथ्वी)

ये समस्त उपर्युक्त १८ तत्व हुए। इन १८ की सृष्टि पुराणों में वर्णित हुई है। इसलिए भी पुराणों की संख्या १८ ही है।

७. वेदों का अनुसरण करते हुए पुराणों में भी यज्ञक्रिया का मुख्यता प्रतिपादन है–
'यज्ञात् वै सृष्टिः'[१]

यज्ञ से ही जगत् उत्पन्न होता है, इसलिये सृष्टि प्रतिपादक पुराणों का यज्ञ से मुख्य सम्बन्ध है । यज्ञ को अष्टादश कर्मनाम से उपनिषदों में वर्णित किया गया है।

'प्लवा हयेते अदृष्टा यज्ञरूपा
अष्टादशोक्त, मवरं येषु कर्म'।
एतच्छे्यो येऽभिनन्दन्ति मूढा
जरामृत्युं ते पुनरवापि यान्ति।।[२]

इसका विवरण भाष्यकार शंकराचार्य जी ने इस प्रकार किया है कि यज्ञ में १६ ऋत्विक् होते हैं, यजमान् और यजमान पत्नी को मिलाकर अट्ठारह पुरूषों के द्वारा यज्ञ सम्पादित होता है। इस कारण इस यज्ञ को भी अष्टादश नाम से अभिहित किया गया हैइस अष्टादश यज्ञ के प्रतिपादक होने के संकेत से पुराणों की १८ संख्या की उपपत्ति हो जाती है।

इस प्रकार उपर्युक्त उपपत्तियों से यह सिद्ध हो जाता है कि पुराणों की अष्टादश संख्या भी विविध प्रकार के रहस्य प्रकाशित करने के लिए ही नियत की गयी है । प्रमादतः नहीं है ।

पुराणों का क्रम तथा नाम परिचय

पुराणों की संख्या का क्रम प्राचीन काल से ही नियत किया गया है पुराणों में समस्त पुराणों के नाम और उनका ग्रन्थ–परिमाण भी उल्लिखित है। वे नाम

---

१. शतपथ ब्रा० १ काण्ड
२. मुण्डकोपनिषद् मुण्डक १ खण्ड २/ मन्त्र

प्रायः क्रम से ही लिखे गये है, किन्तु कतिपय पुराणों में क्रम भेद भी दृष्टि गोचर होता है। उसका कारण यही है कि कही कही तो उसका क्रम दिखलाने का प्रयत्न मात्र है और कही कही केवल नाम परिगणित कर दिये गये है वहाँ क्रम की विवक्षा नही है, जैसा कि देवी भागवत पुराण ने आद्य अक्षर के निर्देश से अष्टादश पुराणों का नाम निर्देश इस लघुकाय अनुष्टुप् छन्द में निवद्ध कर दिया है –

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयें वचतुष्टयम्।
अनापद् लिंर्ग–कू–स्कानि पुराणानि पृथक्–पृथक्।।

अर्थात् मकारदि दो पुराण–

१. मत्स्य पुराण
२. मार्कण्डेय पुराण
२. भकारादि दो पुराण–
    १. भागवत् पुराण
    २. भविष्य पुराण
३. ब्रत्रयम् –
    १. ब्रहम पुराण
    २. ब्रद्धवैर्क्त पुराण
    ३. ब्रहमाण्ड पुराण
४. वचतुष्टयम्–
    १. वामन पुराण
    २. विष्णु पुराण
    ३. वायु पुराण
    ४. वाराह पुराण
५. अ–
    १. अग्नि पुराण

१. देवी भागवत् पुराण १ स्क० /३अ० /२१ /लोक २

६. ना–

१ नारदपुराण

७ पद्–

१ पद्मपुराण

८. लिंगं–

लिंगं पुराण

६. ग–

गरूड़ पुराण

१०. कू –

कूर्म पुराण

११. स्क–

स्कन्द पुराण

इस प्रकार संक्षेपेण आदि के अक्षरो को ग्रहण कर पुराणों के अट्ठारह नाम गिनाये गये है। यहॉ क्रम की कोई वार्ता नहीं उत्पन्न होती है। किन्तु अनेक पुराणों में क्रम निर्देश भी है। वहॉ प्रथम, द्वितीय,तृतीय आदि कहकर पुराणो के नाम गिनाये गये है। नारद पुराणमें समस्त पुराणों की क्रमबद्ध सूची दी गयी है। मत्स्य पुराण में भी संक्षिप्त सूची है। विष्णु पुराण, भगवत पुराण, पद्भ आदि में तो भगवान् के अङग से क्रम से पुराणों का संगठन बताया गया है–

१.	ब्रहम पुराण	१०,००० श्लोक
२.	पद्म पुराण	५५,००० श्लोक
३.	विष्णु पुराण	२३,००० श्लोक
४.	वायु पुराण (शिवपुराण)	२४,००० श्लोक (८८,०००)
५.	भागवत् पुराण	१८,००० श्लोक
६.	नारद पुराण	२५,००० श्लोक
७.	मार्कण्डेय पुराण	६००० श्लोक
८.	अग्नि पुराण	१५,४०० श्लोक

९.	भविष्य पुराण	१४,५०० श्लोक
१०.	ब्रहम वैवर्त पुराण	१८,००० श्लोक
११.	लिंग पुराण	११,००० श्लोक
१२.	वाराह पुराण	२४,००० श्लोक
१३.	स्कन्द पुराण	८१,००० श्लोक
१४.	वामन पुराण	१०,००० श्लोक
१५.	कूर्म पुराण	१७,००० श्लोक
१६.	मत्स्य पुराण	१४००० श्लोक
१७.	गरूड़ पुराण	१९,००० श्लोक
१८.	ब्रहमाण्ड पुराण	१२,००० श्लोक

अधिकतर पुराणों में यही क्रम उपलब्ध होता है। कई पुराणों में भिन्न भिन्न प्रकरणों में जहॉ अनेक स्थानों पर पुराणों के नाम आ गये है वहॉ एक जगह इस क्रम की रक्षा अवश्य की गयी है। दूसरी जगह प्रत्युत भिन्न क्रम ही क्यों न हो गया है। इससे सिद्ध हो जाता है कि नियत हो। क्रम यही है । यत्र–तत्र जहाँ नाममात्र बताने की इच्छा है, , वही भिन्न प्रकार से नाम – निर्देश उपलब्ध होता है। श्रीमद् भागवत् [१] में भी यही क्रम उपलब्ध होता है किन्तु, स्कन्द पुराण [२] में भिन्न क्रम से पुराणों के नाम पढ़े गये है वहाँ यही कहना उचित होगा कि अध्याय में क्रम की विवक्षा नही है मात्र नाम निर्देश ही किया गया है किन्तु, 'पुराण दिग्दर्शन' ग्रन्थ में ग्रन्थ कर्ता–' श्री माधवचार्य' जी ने सप्तमाध्याय, के क्रम को ही विशिष्ट क्रम नाम दिया है और बहुपुराण सम्मत क्रम को अवशिष्ट क्रम निरूपित किया है। यह उनका तो मात्र साम्प्रदायिक आग्रह ही परिलक्षित होता है ।

१. श्रीमद् भागवत पुराण १२/१३/४–९ पर्णन्त

२. स्कन्द पुराण १२/७/२३–२४।

पौराणिक क्रम के रहस्य का विवेचन

उपर्युक्त अष्टदश पुराणों की सूची में जो क्रम प्रतिपादित किया गया है वह तर्क सम्मत ही नही समीचीन भी है। एक सामान्य जिज्ञासा होती है कि पुराणों का इसी क्रम में निर्देश क्यो है ? इसका ऐतिहासिक कारण होना चाहिए। पुराणो का मनन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि नियत क्रम रखने का अवश्य ही रहस्यमय कारण है। शास्त्रों में क्रम द्विविध चलता है –

१. आरोह

२. अवरोह क्रम

दृश्य कार्य को पकड़ कर उसकी कारण परम्परा में जिज्ञासा के अनुसार प्रवेश करते जाना आरोह क्रम कहलाता है और मूल तत्व को प्रारम्भ में बताकर उसका क्रम से उसका स्थूल विस्तार बतलाना अवरोह क्रम है पुराणों में आरम्भ (ब्रह्मपुराण) से दशम् पुराण ब्रह्म वैवर्त्तपुराण तक आरोह क्रम है। दशम् से आगे ब्रह्माण्ड पुराण पर्यन्त अवरोह क्रम है । यह क्रम वर्ण्य विषय को लक्ष्य कर ही किया गया है। पुराणेंा के वर्ण्य–विषय तो नाना विध है। परन्तु 'प्राधान्येन व्यपदेशाः भवन्ति' न्याय के अनुसार प्रधान विषय (सृष्टि की दृष्टि से ही यह क्रम) सभी चीन प्रतीत होता है।

पुराणेंा का मुख्य प्रतिबन्ध विषय सर्ग या सृष्टि ही है। सृष्टि विद्या पुराणो का क्रम नियत करती है। सभी पुराणों में सृष्टि का एक मानचित्र का वर्णन है कि समुद्र में शेषनाग की शय्या पर भगवान् शयन कर रहे है , उन की नाभि से एक कमल निकलता है ,उस कमल मे चतुर्मुख ब्रहमा प्रकट होते हैं। संहिता का स्पष्ट कथन है कि – तैत्तिरीय

"ब्रहम ब्रहभाभवत् स्वयम्" [१]

अर्थात् सृष्टि कर्म के लिए ब्रहम ही ब्रह्मा हुए। फलतः सृष्टि का मूल है वही ब्रहम और इसी आदि कर्ता के निर्देश के लिये ही ब्रहम् पुराण का नाम प्रथमत् : सूची में रखा गया है। भगवान् विष्णु के समीप नारद खड़े हुए स्तुति करते

हैं, यह पुराणाक्त सृष्टि क्रम का चित्र है। ब्रहमा के लिए यह जिज्ञासा होती है कि ब्रह्मा जी कहाँ से आये या उनका निर्माता स्रष्टा कौन है इसका उत्तर पद्म पुराण प्रदान करता है। वह ब्रह्मा उत्पादक एवं आधार भूत पद्म का स्पष्ट रूपण करता है। पुनः जिज्ञासा हो तो है कि पभ का अविर्भाव कहॉ से हुआ । विष्णु पुराण के द्वारा प्रतिपाद्य विष्णु की ही नाभि मे वह कमल था जहाँ उत्पन्न हो कर ब्रहमा ने घोर तपस्या की, फलस्वरूप नूतन सृजन प्रारम्भ हुआ । वायुपुराण को शेषशय्या का निरूपण करने वाला वर्णित किया गया है। शेषशय्या पर भगवान् विष्णु शयन करते है और जो इसीलिए उनके आधार का काम करता है शेष भगवान् क्षीरसागर में शयन करते है और इस रहस्य को बतलाने वाला पुराण श्रीमद् भगवत् है। नारद जी भगवान् विष्णु के अहर्निश भजन कर्ता है जो अपनी वीणा पर मधुर स्वरेण भगवान् के अमृत नाम का कीर्तन किया करते है। इसी साहचार्य के कारण भागवत के अनन्तर नारदपुराण का क्रम निर्देश समीन्धीन ही है। इस प्रकार एक स्पष्ट चित्र उपर्युक्त छः पुराणों तक स्पष्ट चित्र चित्रित हो जाता है।

सृष्टि चक्र के विषय में प्रतिप्रश्न होता है कि यह चक्र किसी प्रेरणा से सतत घूमता रहता है। इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि प्रकृति स्वरूपिणी देवी ही मूल प्रेरिकस शक्ति है इस विश्व की इस मत का प्रतिपादन मार्कण्डेय पुराण करता है । घट के भीतर प्राण तथा ब्रहमाण्ड के भीतर अग्निपथ से क्रियाशील होने वाली वस्तु ही मूल प्रेरणा प्रदान करती है। यह भी सर्वमान्य विचार धारा है। जिसका प्रतिपादन अष्टम, अग्नि पुराण करता है । अग्नि का तत्व सूर्य पर आधारित है अर्थात् सूर्य ही प्रेरक शक्ति का कार्य करता है–

सूर्य आत्मा जगतस्तथुश्च।

के अनुसार सूर्य का जंगम और स्थावर सृष्टि की आत्मा होना वेद बतलाता है। इस प्रकार सृष्टि के उत्पादन में सूर्य की महत्ता सर्वाति शायिनी है जिसकी महिमा का प्रतिपादक भविष्य पुराण है ।

तैन्तिरीय सं० ३/१२/६/३

मूल तत्व के विषय में कई विप्रति पत्तिया का प्रतिपादन करने के अनन्तर पुराण ने अपने मत को स्थापित किया है । ब्रहम वैवर्त पुराण में अर्थात् पुराण मतानुसारेण सृष्टि का कर्ता ब्रहम ही है और यह जगत् ब्रहम का विवर्त ही है विकार तथा विवर्त का पार्थक्य तो सर्वत्र प्रख्यात ही है । जगत् ब्रहम से ही अवश्य उत्पन्न है परन्तु वह स्वयं तात्विक वस्तु नहीं वरन् मायिक है और इसलिए ब्रहम वेक्ता की संज्ञा से ब्रहम के मूल कारण होने और विश्व को उसका तिवर्त होने के सिद्धान्त का प्रतिपादन पुराण करता है।

मूल तत्व ब्रहम निर्गुण है तब सगुण रूप से उसकी मीमांसा कैसे की जो वे इस जिज्ञासा का शमन शेष आठ पुराणो से प्राप्त होता है । ब्रहम की शिव तथा विष्णु ही प्रख्यात अभिव्यक्तियाँ है और वे दोनों भी नाना रूपों में प्रकट हुआ करते है। जिन्हें 'अवतार' की संज्ञा प्रदान की जाती है लिंग तथा स्कन्द पुराण शिव से सम्बद्ध है। वारात, वामन तथा कूर्म ओर मत्स्य ये चारों अवतार भगवान् विष्णु के हैं जो सृष्टि तत्व से विशेष रूप से समब्द्ध है और जिसके द्वारा वे इस धराधाम पर अवतीण होकर भक्तों के क्लेशों का निवारण करते है, तथा मुमुक्षु जनों को मुकित का सुगम मार्गोपदेश भी करते है । श्रीमद् भागवत् पुराण का स्पष्ट कथन है कि–

मर्त्यावतारः खलु मर्त्य शिक्षणम्।

रक्षोबधायनव न केवलं विभोः।।[1]

विभू व्यापक भगवान् का मर्त्यरूप में अवतार राक्षसों के वध के लिये ही नही होता वरन् मर्त्यो के शिक्षण,के लिए भी होता है। मर्त्यशिक्षण ही प्रधान दिशा है, भवजंजाल से निवृत्त हो कर आनन्दमयी मुक्ति की प्राप्ति, इस प्रयोजन से भगवद्रूप के अतिरिक्त भी मर्त्यरूप में अवतरण होते है।

१. ऋ० सवृत्र सूक्त

---

१. श्री मद् भगवत् पुराण ५/१६/५

अंतिम दो पुराणेंा का सम्बन्धजीव जन्तुओं की गतिविधि है कर्म, ज्ञान तथा उपासना के माध्यम से जीवन को कौन सी शक्तियां प्राप्त होती है इसका प्रतिनिधित्व करने वाला गरूड़ पुराण है जो मरणान्तर स्थिति का विशेष विवरण प्रस्तुत करता है और इन गतियों के विस्तृत क्षेत्र को बोधक अंतिम में ब्रहमाण्उ पुराण है। अपने कर्मो के फलानुसार जीव इस समस्त ब्रहमाण्ड के अन्तर्गत भ्रमण करता हुआ सुख–दुःखादि का अनुभव किया करता हैं।

इस प्रकार सृष्टि विद्या से सम्बन्ध तथा सदुप योगी ज्ञान मार्ग के प्रतिपादन में १८ पुराणों की उपयोगिता है। पौराणिक क्रम का यही प्रयोजन है।

द्वितीय अध्याय

पुराणों का देवशास्त्रीय विभाजन

पुराणों का देवशास्त्रीय विभाजन

देवों को आधार बना कर पुराणो का क्रम से विविध विभाजन किया गया है। मत्स्य पुराण के अनुसार पुराणो का त्रिविध विभाजन मान्य है–

१. सात्विक

२. राजस

३. तामस

सात्विक पुराणेषु माहात्म्यमधिक हरेः।
राजसेषु माहात्म्यमधिकं ब्रहमाणो विदुः।।
तद्वदग्ने र्माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च।
सांकीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणां च निगद्यते।।[1]

अर्थात् सात्विक पुराणों में विष्णु का माहात्म्य अधिक रूप से वर्णित है। राजस पुराणों में ब्रहमा का तथा अग्नि का माहात्म्य वर्णित है तामसपुराणों में शिव का माहात्म्य वर्णित है। इन तीनो से इतर (पृथक्) एक संकीर्ण भेद भी है, जिसमे सरस्वती तथा पितरों का माहात्म्य अधिकाशंत विद्यमान है।

पभ पुराण में सात्विक पुराणों की गणना भी निर्दिष्ट है वैष्णव, नारद भागवत् गरूड़ पभ तथा वाराह लेकिन इस विभाजन से अन्य पुराणों के साथ ऐकमत्य नही है। आश्चर्य की बात यह है कि जब निश्चयपूर्वक शिवभक्ति के प्रतिपादक वायुपुराण को गरूड़ पुराण सात्विक पुराणो के अन्तर्गत रखता है। गरूड पुराण इषत् अग्रमी होते हुए सात्विक पुराणों का आभ्यन्तर त्रिविध विभाग करता है –

(क) सत्वाधम मत्स्य और कूर्म पुराण

(ख) सात्विक मध्यम् वायु पुराण

(ग) सात्विक उत्तम विष्णु,भागवत् तथा गरूड पुराण

---

१. मत्स्य पुराण ५३/६७–६८

सत्तवाधा मोत्स्य कौर्म तद्‌हुर्वायु चाहु . सात्विकं मध्यमं च।
विष्णोः पुराणं भागवत् पुराण सत्त्वोतमे गारूड प्राहुरार्याः।। [1]

देवता के प्राधान्य से पुराणों का विभाजन विद्वानों ने किया हे गरूड़ पुराण के उपर्युक्त वचन से कूर्म भी सात्विक अर्थात् विष्णु माहात्म्य प्रतिपादक पुराणो के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है परन्तु इसके प्रकाशित अंश– ब्राहमी संहिता में शिव–शिवा– के ही माहात्म्य का पूर्णतः प्रकाशन है। महेश्वर ही परमतत्व स्वीकार किये गये है शक्ति का भी यहॉ विविध प्रकारेण चित्रण है। श्री कृष्ण भी यहॉ शिव स्तुति करते हुए वर्णित हैं तथापि यह सात्विक कैसे स्वीकार किया गया है। यह निश्च चिम्तनीय है वायु पुराण के स्वरूप तो निश्चयपूर्वक शिव माहात्म्य परक है और इसलिये यह स्कन्द पुराण में (शैव नाम से अभिहित किया गया है ऐसे स्थिति में उसके पुराण सम्मत सात्विकता नही हो सकती इसलिये गरूड़ के विभाजन को श्रद्धपा स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

उपास्य देवों की विभिन्नता से पुराणों का विभाजन विद्वानों ने किया है गरूड पुराण के उपर्युक्त वचन से कूर्म भी सात्विक अर्थात् विष्णु माहात्म्य प्रतिपादक पुराणों के अन्तर्गत स्वीकार किया गयाहै परन्तु इसके प्रकाशित अंश– बाहमी संहिता में शिव–शिवा के ही माहात्म्य का पूर्णतः प्रकाशन है। महेश्वर ही परम तत्वस्वीकार किये गये हैं शक्ति का भी यहाँ विविध प्रकाशन चित्रण है श्री कृष्ण भी यहाँ शिव स्तृति करते हुए वर्णित है तथापि यह सात्विक कैसे स्वीाकर किया गया है यह निश्चयेन चिन्तनीय है । वायु पुराण का स्वरूप तो निश्चयपूर्वक शिव माहातत्म्य परक है और इसलिये यह स्कन्द पुराण में शिव नाम से अभिहित किया गया है ऐसी स्थिति में इसमे पुराण सम्मत सात्विकता नही हो सकती है इसलिये गरूड़ के विभाजन को श्रद्धया स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

---

१. गरूड़ पुराण

उपास्य देवों की विभिन्नता से पुराणो का विभजन किया गया है। स्कन्द पुराण के 'केदार खण्ड के अनुसार दश पुराणों में शिव, चार में भगवान् ब्रहमा दो में देवी और दो में हरि (विष्णु) इस प्रकार विभाजन किया गया है परन्तु तत् २ पुराणों के नाम निर्देश न होने के कारण इस कथन की भी वैज्ञानिकता स्वीकार नही की जा सकती है स्कन्द पुराण के 'शिवरहस्य' नामक खण्ड के अन्तगर्त सम्भव काण्ड में [१] एक अपन ही विभाजन प्राप्त होता है जो निम्न है –

१	शैव – शिव विषयक	
	शिव, भविष्य, मार्कण्डेय, लिग, वाराह, स्कन्द	
	मत्स्य, कूम्र वामन तथा ब्रहमाण्ड	
३.	वैष्णव विष्णु परक –	
	मत्स्य, कूर्म, वामन तथा ब्रहमाण्ड	१०
२.	वैष्णव – विष्णु परक–	
	विष्णु, भागवत् नारदीय तथा गरूड	४
३	ब्राहम – ब्रहमाविषयक – ब्रहम तथा पद्म पुराण	२
४	सावित्र सूर्य परक ब्रहमवैर्क्त	१
५.	आग्नेप अग्निविषयक अग्नि पुराण	१
		——
		१८
		——

स्कन्द पुराण के अनुसार प्रतिपाद्य देवानुसार यह विभाजन वैज्ञानिक सत्य शोभन नही स्वीकार किया जा सकता क्योंकि 'पद्म पुराण' तो निश्चयेन् भगवान् विष्णु की महिमा का सविशेषभावेन प्रतिपादक है। इसलिये गौड़ीय वैष्णवो के सिद्धान्तों का विकास विशेषकर 'श्री राधा' जी इसी पुराण के आधार पर है। इसीलिये यह विभाजन सामान्य सत्य ही मान्य होगा स्कन्द पुराण का विभाजन दो प्रकार से प्राप्त होता है–

---

१. स्कन्द पुराण शिव रहस्य/सम्भव काण्ड/ २/३०/३८

क– खण्डात्मक विभाजन

१.	माहेश्वर खण्ड	इन खण्डो के अन्तर्गत अनेक अवान्तर खण्ड भी
२.	वैष्णव खण्ड	विद्यमान हैं। श्लोकों की संख्या ८१,००० है।
३.	ब्रहम खण्ड	
४.	काशी खण्ड	
५.	अवन्ती खण्ड	
६.	नागर खण्ड	
७.	प्रभासखण्ड	

ख– संहितात्मक विभाजन

१.	सनत्कुमार संहिता	५५,००० श्लोक
२.	सूत संहिता	६,००० श्लोक
३.	शांकरी संहिता	३०,००० श्लोक
४.	वैष्णवी संहिता	५,००० श्लोक
५.	ब्राहमी संहिता	३,००० श्लोक
६.	सौरी संहिता	१,००० श्लोक

इन संहिताओं में भी अनेक अवान्तर खण्ड हैं।

पुराणों का वर्गीकरण

अष्टादश पुराणों के वर्गीकरण अनेक विधकियें गये है। भिन्न–भिन्न पुराणों ने इस विषय में भिन्न– भिन्न दृष्टि कोण अपनाये हैं। पुराण के पञ्चलक्षण को आधार मानकर प्राचीन और प्राचीनोत्तर से दो विभाग किये जा सकते है। इस निर्णय के अनुसार वायु, ब्रहमाण्ड, मत्स्य, और विष्णु प्राचीन प्रतीत होते है। कारण कि इन चारों में पुराण के पांचों विषय उचित परिमाण में वर्णित है। देवता के विचार से पुराण का अन्य भी वर्गीकरण है पभपुराण के अनुसार –

१. मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कन्द और अग्नि – ये छः पुराण तामस है –

२. ब्रहमाण्ड ब्रहमवैर्क्त मार्कण्डेय, भविष्य, वामन और ब्राहम ये छः पुराण राजस है।

३. विष्णु, नारद, भागवत्, गरूड़ पद्म और बाराह ये छः सात्विक पुराण

माने गये है।

यह वर्गीकरण विष्णु को सात्विक देव मानकर किया गया है यहाँ तामस, राजस और सात्विक पुराणों की समान सख्या निर्धारित है

मत्स्यं कौर्म तथा लिंग शैवं स्कन्दं तथैव च।
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध में।।
वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम्।
गारूड़ं च तथा पाद्म वारांह शुभदर्शने ।।
सात्विकानि पुराणनि विज्ञेयानि शुभानि वै।
ब्रहमाण्डं ब्रहमवैवर्त मार्कण्डेय तथैव च ।
भविष्यं वामनं ब्रहमं राजसानि निवोध में ।।

मत्स्य इससे कुछ विविभन्न बात का उल्लख करता है उसकी दृष्टि में विष्णु के गणना परक पुराणसात्विक ब्रहमा और अग्नि के प्रतिपादक पुराण राजस, शिव के प्रतिपादक तामस, भगवती और पितरों के माहात्म्प को वर्णित करने वाले पुराणं संकीर्ण माने गये है–

सात्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यअधिकं हरे :।
राजसेषु च माहत्म्यमधिकं ब्रहमणो विदुः।।
तद्वदग्नेश्च महातत्म्यं तामसेषु शिवस्य च ।
संकीर्णषु सरस्वत्या : पितृणा च निगद्यते ।।[2]

स्कन्द पुराण की दृष्टि से तो दस पुराणों में तो केवल शिव की ही स्तुति है चार में ब्रहमा की और दो में देवी तथा हरि की स्तुति है। इस वर्गीकरण में तत्तत् पुराणों का नाम निर्देश नहीं प्राप्त होता है–

अष्टादश पुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः।
चतुर्भिर्भगवान् ब्रहमा दृाभ्यां देवी तथा हरिः ।।[3]

---

१. पभ पुराण उत्तरखण्ड १६३/८१–८४ पर्यन्त ।
२. मत्स्य पुराण अध्याय ५३/६८–६६ श्लोक
३. स्कन्द पुराण केदारखण्ड १

तमिल ग्रन्थों में पुराणों के पाँच वर्ग किये गये है–

१ ब्रहमा– ब्रहम पुराण और पभ पुराण २

२. सूर्य– ब्रहमवैक्र्त पुराण १

३. अग्नि – अग्नि १

४. शिव – शिव, स्कन्द,लिंग, कूर्म वामन, वाराह, भविष्य, मत्स्य,मार्कण्डेय तथा बाहमाण्ड १०

५ विष्णु–नारद, श्रीमदभागवत् गरूड और विष्णु ४

इसका आशय यह है कि इस समस्त वर्गीकरण की विभिन्नता का कारण अलग अलग दृष्टिकोण का होना मात्र है आधुनिक विद्वानों ने पुराणों मे वर्णित विषयो को पूर्ण और आलोचनात्मक परीक्षणेंारान्त विषय विभागानुसार पुराणो के षट्वर्ग निर्धारित कियें हैं–

१. प्रथम वर्ग में साहित्य का विश्वकोष है अर्थात् मानव–समाज के लिये उपयोगी समस्त विद्याओं का आध्यत्मिक तथा भौतिक विद्याओं का सारअंश एकत्र कर दिया गया है आधुनिक कालीन प्रकाशित होने वाले ' विश्वकोष' के समान इनका सकंलन ही मुख्य है इस वर्ग में गरूड अग्नि,तथ नारद पुराण आते है। जिनमें प्राचीन विद्याओं का संक्षिप्ती करण बहुत ही सुरूचि पूर्ण रीत्याकर दिया गया है ।

२. द्वितीय कोटि में प्रमुख्तया तीर्थी तथा व्रतों का वर्णन है। इस विभाग में पभपुराण स्कन्द तथा भविष्य की गणना है ' प्राधान्येन व्यवपदेशाः भवन्तिं के न्यायनुसार ही इनकी गणना है।

३. तृतीय विभाग– ब्रहम,भागवत् तथा ब्रहम वैवर्न्तादि पुराणों का है।

४. चतुर्थ वर्ग में ऐतिहासिक पुराणों की गणना है– ऐतिहासिक पुराणों से तात्पर्य उस पुराण से है जिन में कलियुग के राजाओं का वर्णन विशेष रूपेण – इतिहास की दृष्टि को लक्ष्य में रखकर किया गया है ऐसे वर्ग में वायु तथा ब्रहमाण्ड पुराण भविष्य पुराण का समावेश है ।

५. पञ्चमवर्ग में साम्प्रदानिक पुराणों का अन्तर्भाव है। इसमें लिगं वामन तथा मार्कण्डेय पुराण समाविष्ट किये जा सकते है।

६. षष्टवर्ग में वाराह, कूर्म तथा मत्स्य पुराण की गणना हैं।

अध्याय - तीन

पुराण वर्णित अवतार तत्व निरूपण

पुराण वर्णित अवतार तत्व निरूपण

अवतारवाद का सिद्धान्त पौराणिक देव–कथाओं की एक महत्वपूर्ण विशेषता है । संसार की रक्षा हेतु ही विष्णु को –– मत्स्य, कूर्म, वाराह, वामन, राम, कृष्ण प्रभृति अवतार ग्रहण करने पड़ते हैं । इनमें कतिपय तो वैदिक साहित्य में ही सकेतित हैं और प्राचीन प्रकृति–कथाओं से सम्बन्धित हैं और कतिपय ऐतिहासिक व्यक्ति हैं जिन्हें शक्ति एवं सामर्थ्य की अधिकता – के कारण विष्णु से सम्बद्ध कर दिया गया है ।[१] विष्णु के अतिरिक्त अन्य देवता भी अपनी शक्ति से मनुष्यों को उत्पन्न करने में समर्थ हैं और युधिष्ठरादि पञ्च पाण्डव क्रमशः यम, वायु, इन्द्र तथा अश्विनौ की शक्ति से उत्पन्न माने गये हैं ।

अवतार तत्व की व्युत्पत्ति

'अवतार' शब्द की व्युत्पत्ति अव उपसर्ग पूर्वक 'तृ' धातु से घञ् प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न होती है । इस सन्दर्भ में पाणिनि का विशिष्ट सूत्र है ––

'अवे तृस्णोर्घञ्'[१]

जिससे 'अवतार' शब्द का अर्थ होता है किसी उच्च स्थान से नीचे उतरने की क्रिया अथवा उतरने का स्थान । एक सामान्य अर्थ के अतिरिक्त, इसका एक अपर विशिष्ट अर्थ भी है ––

"किसी महनीय शक्ति–सम्पन्न भगवान या देवता का नीचे के लोक में ऊर्ध्व लोक से उतरना तथा मानव या अमरत्व रूप का धारण करना ।"

---

(१) वामन – वामन ह विष्णुरास – शतपथ ब्रा० १ काण्ड, वेदि निर्माण प्रसंग।
राम–कृष्ण आदि ऐतिहासिक पुरुष ।––

इसी अर्थ में पुराणों में – आविर्भाव – शब्द का प्रयोग उपलब्ध होता है । 'अवतार' की सिद्धि दो तरह से मानी जा सकती है ––

१. रूप का परिवर्तन –– स्वीप रूप का परित्याग कर कार्यवश नवीन रूप का ग्रहण ।

२. नवीन जन्म ग्रहण कर ततद्रूप में आगमन, जिसमें माता के गर्भ में उचित काल तक स्थिति की बात भी सन्निविष्ट है ।

भगवान के लिये ये दोनों ही अवस्थायें उपयुक्त तथा सुलभ हैं । 'अवतार' की बात किसी अलौकिक शक्ति से सम्पन्न व्यक्ति भगवान् विष्णु, शिव या इन्द्र प्रभृति के लिये ही समीचीन मानी जाती है । कार्यवश भगवान् का बिना रूप परिवर्तन किये हुये ही आविर्भाव होना 'अवतार' के अन्दर ही माना जाता है । उदाहरण के लिये – प्रहलाद को विपत्ति से उद्धार के हेतु विष्णु का अपने ही रूप में आविर्भाव – विष्णु पुराण में ––

तस्य तच्चेतसो देवः स्तुतिभित्थ प्रकुर्वतः ।
आविर्बभूव भगवान् पीताम्बर धरो हरिः ।।[१]

तथा गजेन्द्र के उद्धार के लिये विष्णु का स्वरूपतः प्रादुर्भाव भागवत पुराण[१] में वर्णित है । इन अवतारों में रूप परिवर्तन की बात नहीं आती है ।

अवतार की प्रक्रिया का निरूपण

भगवान के अवतार धारण करने के विषय में पुराण तथा इतिहास में चार मत उपलब्ध होते हैं, जिनमें अवतार की कल्पना का स्पष्ट विकास लक्षित होता है ––

---

(१) अष्टाध्यायी ३/३/१२०

१. इस मत को लोकप्रिय सामान्य मत की सञ्ज्ञा दी जा सकती है । इस मतानुसार भगवान् अपनी दिव्य मूर्ति का सर्वथा परित्याग कर ही भूतल पर अवतीर्ण होते हैं – भले ही नूतन जन्म धारण करके या बिना जन्म धारण किये ही रूप–परिवर्तन क्रिया द्वारा । यह मत मानवीय कल्पना तथा विश्वास–प्रसूत माना जा सकता है ।[3]

२. द्वितीय मतानुसार भगवान् का केवल एक अंश ही भले ही वह अर्धभाग हो, चतुर्थांश हो या एक अत्यल्प भाग हो – इस धरातल पर अवतीर्ण होता है । अवतीर्णांश से अवशिष्ट भाग मूल स्थान में ही निवास करता है और ये दोनों भाग, एक साथ ही एक काल में विभिन्न व्यापारो का प्रतिपादन करते रहते हैं । अवतीर्ण अंश जिस समय एक विशिष्ट – यथा संरक्षण कार्य करता है, अवतारी अंश उसी कालावधि में अन्य कार्यो में संलिप्त प्राप्त होता है । श्रीकृष्ण के अवतार काल में विष्णु का स्वर्ग में भूमि के साथ वार्तालाप का वर्णन महाभारत करता है । तात्पर्य यह है कि दो भिन्न कार्य एक साथ ही निष्पन्न होते हैं ––

यदा यदा त्वधर्मस्य वृद्धिर्भवति भो द्विजाः ।
धर्मस्य ह्रासमभ्येति तदादेवो जनार्दनः ।।
अतवारं करोत्यत्र द्विधाकृत्वाऽऽमनस्तनुम् ।
सर्वदैव जगत्यर्थे स सर्वात्मा जगन्मयः ।।
स्वल्पांशेनावतीर्योर्व्यां धर्मस्य कुरुते स्थितिम् ।।[1]

(१) विष्णु पुराण १/२०/१४
(२) भागवत पुराण १/३ गजेन्द्र मोक्ष प्रकरण
(३) व्यक्त्वा दिव्यां तनुं विष्णुर्भानुषेस्विह जायते । मत्स्य पुराण युगे त्वथ परावृत्ते काले प्राशिथिले प्रभुः ।। मत्स्य पुराण ४७/३४; ––

३. तृतीय मतानुसार विष्णु अपनी मूर्ति का द्विविध विभाग कर, प्रथम मूर्ति स्वर्ग में स्थित रहकर दुष्कर तपस्या करती है और दूसरी मूर्ति योग निद्रा का आश्रयण कर प्रजाओं के संहार तथा सृष्टि के विषय में विचार मन्थन किया करती है । एक सहस्र युगों तक यह मूर्ति शयनानन्तर अपनी सामुद्रिक शय्या से उत्थित होती है तथा कार्य के अनुकूल आविर्भूत होती है ––

तस्यैका महाराज मूर्तिभवति सत्तम ।
नित्यं दिविष्ठा या राजन् ! तपस्चरति दुश्चरम् ।।
द्वितीया चास्य शयने निद्रा योगमुपाययौ ।
प्रजासंहार सर्गार्थे किमध्यात्मविचिन्तकम् ।।
सुप्त्वा युग सहस्र स प्रादुर्भवति कार्यतः ।
पूर्णे युग सहस्रे तु देवदेवो जगद्पतिः ।।[1]

हरिवंश पुराण के इस मत के प्रतिपादक श्लोकों की व्याख्या में 'नीलकण्ठ' मूर्ति को ––

सात्विकी और तामसी

द्विविध निरूपित करते हैं । इस मतानुसार अवतार कार्य भगवान् के अर्धभाग का विलास है । प्रथम मूर्ति, जो तपस्या के निष्पादन में ही संलग्न रहती है, अवतार के कार्य से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखती । – महाभारत प्रथम मूर्ति को वासुदेव तथा द्वितीय मूर्ति को – 'संकर्षण' – नाम से पुकारता है ।

४. चतुर्थ मत अधिक विकसित प्रतीत होता है । ब्रम्ह पुराण का कथन है कि समस्त जगत् को व्याप्त करने वाले नारायण ने अपनी मूर्ति को चतुर्धा विभक्त किया, जिसमें एक मूर्ति – 'निर्गुण' तथा इतर तीन – सगुण रूप हैं । निर्गुण मूर्ति का नाम है ––

---

(१) ब्रह्म पुराण ७२/२–३ और ६वां श्लोक

१ 'वासुदेव' तथा सगुण मूर्ति के नाम हैं ——

२. संकर्षण

३. प्रद्युम्न तथा

४. अनिरुद्ध ।

इन चारों मूर्तियों को महाभारत के क्रमशः ——

१. पुरुष

२. जीव

३. मनः तथा

४. अहंकार

के रूप में चित्रित किया गया है और इस प्रकार इनका दार्शनिक रूप अभिहित किया गया है । ब्रम्ह पुराण[१] के अनुसार – 'वासुदेव मूर्ति' निर्देश–विहीन शुक्ल, ज्वाला के समान दीप्तमान शरीर वाली, योगियों के द्वारा उपास्य, दूर तथा अन्तिक दोनों जगह रहने वाली तथा गुणों से अतीत रहती है ।

द्वितीय मूर्ति की संज्ञा–शेष या संकर्षण – है जो अपने मस्तक पर नीचे से पृथ्वी को धारण करती है और सर्परूप को धारण करने के कारण यह तामसी संज्ञा से ज्ञेय है ।

(१) बह्म पुराण – स देवो भगवान् सर्वंव्याप्य नारायणो विभुः ।
चतुर्धा सं स्थितो ब्रह्मा सगुणो निर्गुणस्तथा ।।
एका मूर्तिरनुद्देश्या शुक्लां पश्यन्ति तां बुधाः ।
ज्वालामालाऽवनद्धांगी सिष्टया सा योगिनां परा ।।
दूरस्था चान्तिकस्था च विज्ञेया सा गुणातिगा ।
वासुदेवाभिधानासौ निर्ममत्येन दृश्यते ।।
द्वितीया पृथिवी मूर्ध्ना शेषाख्या धारयत्धः ।

---

(१) हरिवंश पुराण प्रथम खण्ड ४१/१८–२० ।——

तामसी सा समाख्याता तिर्यक्त्वं समुपागता ।।
तृतीया कर्म कुरुते प्रजापालन तत्परा ।
सत्वोद्रिक्ता च सा ज्ञेया धर्मसंस्थानकारिणी ।।
चतुर्थी जलमध्यस्था शेते यन्नमतल्पगा ।
रजस्तस्या गुणः सर्ग सा करोति सदैव हि ।।
या तृतीया हरेर्मूर्तिः प्रजापालनतत्परा ।
सा तु धर्मव्यवस्थानं करोति नियतं भुवि ।।
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिः समुप जायते ।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजत्यसौ ।।
इति सा सात्विकी मूर्तिरवतारं करोति च ।
प्रद्युम्नेति समाख्याता रक्षा कर्मण्यव स्थिता ।।[७]

३. तृतीय मूर्ति – प्रद्युम्न संज्ञा धारण करती है । प्रद्युम्न का कार्य धर्म का संस्थापन तथा प्रजा का पालन है । इसीलिए यह सत्व प्रधान मूर्ति मानी जाती है ।

४. चतुर्थ मूर्ति – अनिरुद्ध के रूप में जानी जाती है और यह क्षीरसागर में सर्प की शय्या पर शयन करती है । रज इसका गुण होता है और इसी से यह संसार की सृष्टि करने वाली होती है । इन चारों मूर्तियों में से तृतीय मूर्ति (प्रद्युम्न) जिसका कार्य प्रजा का पालन है, नियत रूप से धर्म की व्यवस्था करती है । जब–जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तब–तब यह अपने को स्पष्ट कर भूतल पर अवतीर्ण होती है । 'अवतार' करने वाली यह 'प्रद्युम्न' मूर्ति है, जिसका मुख्य कार्य रक्षण कार्य की निष्पत्ति है । इस मतानुसार भगवान् की प्रद्युम्न मूर्ति का ही कार्य अवतार लेना तथा धर्म की व्यवस्था करना है अर्थात् अवतार भगवान् के चतुर्थांश का ही विलास है । देव, मनुष्य तथा तिर्यग्योनि में जहाँ कहीं यह मूर्ति अवतीर्ण होती है, वहाँ वह उसके स्वभाव को ग्रहण करती है तथा पूजित होने पर वह अभिलषित कामना की पूर्ति करती है ––

देवेत्वेऽथ मनुष्यत्वे तिर्यग्योनौ च संस्थिता ।

गृहणाति तत् स्वभावं च वासुदेवेच्छया सदा ।। (१)

ददात्यभिमतान् कामान् पूजिता सा द्विजोत्तमाः ।।

देव तथा गन्धर्व, जो धर्म के रक्षण में तत्पर रहते हैं, की तो वह रक्षा करती है, परन्तु उद्धत असुरों को, जो धर्म के नाश करने में आसक्त होते हैं, सर्वथा नष्ट कर डालती है ––

प्रोद्धतानसुरान् हन्ति धर्मच्युच्छित्ति कारिणः ।

पाति देवान् सगन्धर्वान् धर्मरक्षापरायणान् ।।(१)

इस प्रकार अवतार का सम्बन्ध पुराणों की दृष्टि में – 'चतुर्व्यहवाद' – से सिद्ध होता है । चतुर्व्युहवाद भागवतों का विशिष्ट सिद्धान्त था जैसा शांकर भाष्य(२) से स्पष्टतः संकेतित होता है । अवतार के सिद्धान्त की प्रतिपादिका श्रीमद्भगवतगीता चतुर्व्यूह के सिद्धान्त का उल्लेख नहीं करती । महाभारत के नारायणीय पर्व(३) में चतुर्व्यूह का वर्णन सम्यक् रूपेण प्राप्त होता है । कतिपय विचारकों की स्पष्ट विचारधारा है कि महाभारत के मूल में (प्राचीन हस्तलिखित मातृकाओ से सिद्ध होता है) 'वासुदेव तथा संकर्षण' केवल इन्हीं दोनों व्यूहों का ही वर्णन था । प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध की परिकल्पना परवर्ती काल की घटना प्रतीत होती है, क्योंकि ये दोनों व्यूह प्राक्कालीन हस्तलेखों में ही निर्दिष्ट किये गये हैं । महाभाष्य के एक उद्धरण ––

''जनार्दनत्वात्मचतुर्थ एव''
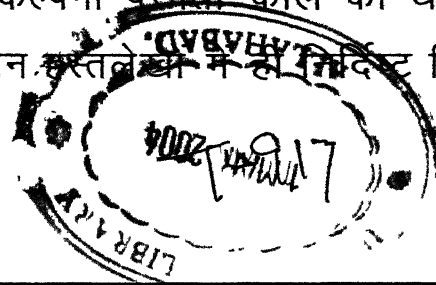
(१) ब्रह्म पुराण ७१/१६ आदि, इस कल्पना को महाभारत शान्ति पर्व अ० ३४२, ३४७ तथा ३५६में व्यवस्थित रूप से चित्रित किया गया है । भीष्मपर्व श्रीमद्भगवत गीता – ४/७–८ वां श्लोक ।

(१) बह्म पुराण ७१/४१–४२ ।––

को डॉ० आर०जी० भण्डारकर इस चतुर्व्यूहवाद का समर्थक मानते हैं ।[1] यदि इस मत की सार्वभौमिकता समीचीन मानी जाय तो चतुर्व्यूह का सिद्धान्त ईसा पूर्व द्वितीय शती से निःसन्देह प्राचीन सिद्ध होता है । आचार्य शंकर के अनुसार परमात्मा के प्रतीक भूत वासुदेव से जीव प्रतीक संकर्षण की उत्पत्ति होती है और संकर्षण से प्रद्युम्न (मन) की और प्रद्युम्न से अनिरुद्ध (अहंकार)[2] की । शंकराचार्य के मत में जीव की उत्पत्ति का यह सिद्धान्त अवैदिक है परन्तु रामानुजाचार्य के अनुसार यह पूर्ण वैदिक है ।[3] पाञ्चरात्र ग्रन्थों में अवतार का सिद्धान्त विशेष रूप से उपलब्ध नहीं होता, परन्तु 'वैखानस आगम' में इसकी संक्षेपण चर्चा मात्र है । तथापि, पुराणों के आधार पर अवतार का सिद्धान्त पाञ्चरात्रों के चतुर्व्यूहवाद के साथ घनिष्ठ रूपेण सम्बद्ध है और इस तरह अवतार के विकास के ऊपर इस तन्त्र का विशिष्ट प्रभाव परलक्षित होता है ।

अवतार का प्रयोजन

यह अवतार–तत्व पुराण के प्रधान विषयों में प्रमुखतम एवं अन्यतम है । अवतार का तात्व भगवान् के धर्म नियामकत्व रूप पर प्रतिष्ठित है । इस विषय को एक सूत्र में धारण करने वाला, नियमित रखने वाला तात्व धर्म है । इस धर्म का नियमन सर्व–शक्तिमान परमात्मा की एक विशिष्ट शक्ति का विलास है । जब–जब इस धर्म की ग्लानि होती है तथा अधर्म का अभ्युथान (उदय) होता है, तब–तब भगवान् अपने को इस विश्व में उत्पन्न करते हैं ––

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युथानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे–युगे ।।[1]

---

(१) ब्रह्म पुराण ७१/२४
(२) शारीरिक भाष्य (शंकराचार्य) २/२/४२
(३) महाभारत शान्तिपर्व नारायणीय खण्ड ३३६/७७–१०२–

ऊर्ध्वलोक से इस अधो लोक में भगवान् का उतरकर आना ही 'अवतार' पद वाच्य है । भगवान् श्रीकृष्ण का यह स्वतः कथन है कि साधुओं (दूसरों के कार्य को सिद्ध करने वाले व्यक्तियों) के परित्राण (सर्वत्र–सर्वतः रक्षा) के निमित्त तथा पापियों के नाश के लिये मैं प्रत्येक युग में अपनी माया का आश्रयण कर स्वयं उत्पन्न होता हूँ । श्रीमद्भगवतगीता के ये श्लोक अवतारवाद का मौलिक तथ्य प्रकट करते हैं ––

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युथानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे–युगे ।।[१]

उपर्युक्त श्लोक अवतारवाद के मानों मेरुदण्ड हैं और इन्हीं वचनों का प्रभाव पुराणों पर पड़ता है । इसलिए इस तथ्य के द्योतक श्लोक इसी रूप में उपलब्ध होते हैं ।[२]

(१) श्रीमद्भगवतगीता ४/७–८

(२) अवतार की आवश्यकता के समर्थक पौराणिक वचन अनेकशः उपलब्ध हैं तथापि विशिष्ट वचनों को ही उद्धृत करते हैं ––

इस प्रयोजन के अतिरिक्त भागवत में एक अन्य प्रयोजन की सूचना मिलती है जिसे इसकी अपेक्षा उदात्तर स्थान दिया गया है ––

(१) शैविज्म वैष्णविज्म एण्ड अदर माइनर सेक्टस् का वैष्णविज्म प्रकरण द्रष्टव्य ।

(२) शंकर का शारीरिक भाष्य २/२/४२

(३) आगम के प्रामाण्य पर द्रष्टव्य यामुनाचार्य कृत– 'आगम प्रामाण्य', वेदान्त देशिक की 'पाञ्चरात्र रक्षा' तथा भट्टारक वेदोत्तम का 'तन्त्रशुद्ध', भागवत सम्प्रदाय पृ० १०६–१११ पर ।

---

(१) श्रीमद्भगवतगीता ४/७–८ श्लोक ।

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ।

अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ।।(१)

अर्थात् अव्यय, अप्रेमय, गुणहीन तथा गुणात्मक भगवान् का प्राकट्य इस जगतीतल पर न होता, तो उनके अशेष गुण–समुच्चय का बोध एवं ज्ञान ही अल्पज्ञ जीव को कथमपि न हो पाता । – भगवान् का भौतिक सौन्दर्य, चारित्रिक माधुर्य, अप्रेमय आकर्षण का परिचय जीव को तभी प्राप्त होता है, जब उनकी अभिव्यक्ति अवतार के रूप में इस धराधाम के ऊपर होती है । भगवान् के विलास, हास, अवलोकन और भाषण अत्यन्त रमणीय होते हैं तथा उनके अवयवों से अलौकिक आभा निकलती रहती है । इनके द्वारा भक्तों का प्राण

---

(१) जज्ञे पुनः पुनर्विष्णुर्यज्ञे च शिथिलः प्रभुः ।
कर्तुं धर्मव्यवस्थानम् अधर्मस्य च नाशनम् ।।
वायुपुराण ६८/६६
मत्स्य पुराण ४७/२३५ में यह श्लोक मिलता है । पाठ भेद के साथ –
धर्मे प्रशिथिले तथा असुराणां प्रणाशनम् ।

(२) बह्वीः संसरमाणो वै यौनौर्वतौमि सत्तम ।
धर्मसंरक्षणार्थाय धर्मसंस्थायनाय च ।।
महाभारत आश्वमेधिक पर्व ५४/१३

(३) असतां निग्रहार्थाय धर्मसंरक्षणाय च ।
अवतीर्णौ मनुष्याणाम जायत यदृक्षये ।
ए एव भगवान् विष्णु कृष्णेति परिकीर्त्यते ।।
महाभारत वनपर्व २७१/७१–७२

(४) यदा–यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूधर ।
अभ्युथानमधर्मस्य तदा वेषान् विभर्म्यहम् ।।
देवी भागवत ७/३६

(५) ब्रह्म पुराण १८०/२६–२७ तथा १८१/२–४ में गीता के वचनों के सदृश वचन प्राप्त होते हैं ।

तथा मन विषयों से आहृत होकर भगवान् में ही केन्द्रित हो जाता है और न चाहने पर भी भक्ति मुक्ति का वितरण करती है, परन्तु यह तभी सम्भव है जब भगवान् का अवतार भूतल पर होता है --

अलौकिक रागात्मिका भक्ति का वितरण ही भगवान् के प्राकट्य का उच्चतर तात्पर्य है जिसके समक्ष धर्म का व्यवस्थापन एक लघुत्तम व्यापार है ।

ज्ञान का वितरण भी भगवान् के अवतार का प्रयोजन है । भगवान् ही गुरुणां गुरुः हैं तथा समग्र ज्ञानों के आधार हैं । उन्हीं से ज्ञान की धारा लोकमंगल के लिये प्रवाहित होती है जिसके कतिपाय बिन्दुओं को प्राप्त कर भी मानव धन्य हो जाता है । – 'कपिल' के अवतार का उद्देश्य ही तत्व–प्रसंख्यान तत्वों का निरूपण तथा आत्मा की उपलब्धि का मार्ग निरूपित करना था । कर्दम तथा देवहूति के घर कपिल रूप के अवतरण के समय भगवान् का अपना कथन है --

एतन्मे जन्म लोकेऽस्मिन् मुमुक्षूणां दुरा शयात् ।
प्रसंख्यानाय तत्वानां सम्मतायात्मदर्शने ।।[१]
अपि च --
कपिलस्तत्वसंख्याता भगवान् आत्ममायया ।
जातः स्वयमजः साक्षादात्म प्रज्ञप्तये नृणाम् ।।[२]

फलतः जीव को मोक्ष प्रदान करना ही भगवान् के अवतार का मुख्य विषय या उद्देश्य है । बद्ध जीव दूसरे बद्ध जीव को मुक्त नहीं कर सकता --

स्वयं बद्धः कथमपरान् तारयति ।

---

(१) भागवत पुराण १०/२६/१४

(२) तैर्दर्शनीयावयवैरुदार – विलासहासेक्षितवाम सूक्तैः ।।
हृतात्मनो हृतप्राणाँश्च भक्तिरनिच्छतो में गतिमर्ष्वीं प्रयुंक्ते ।।
भागवत पुराण ३/२५/३६

शुद्ध–बुद्ध–मुक्त भगवान् ही पाशबद्ध जीव के बन्धन को काटने का मार्ग उपदेशित कर उसे मुक्त कर सकते हैं । अवतार का यही प्रमुखतम उद्देश्य है । भौतिक क्लेश का विनाश तो एक लघुत्तर अभिप्राय अवतार का हो सकता है क्योंकि भागवत का यह उद्घोष इस उद्देश्य का चूड़ान्त निदर्शन है ––

मर्त्यावतारः खलु मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैवन केवलं विभोः ।।(१)

अवतार का बीज

अवतार का बीज वैदिक ग्रन्थों में स्पष्टतः प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है । ऋक संहिता के अनुशीलन से इसके बीजों का संकेत इसके अनेक मन्त्रों (ऋचाओं) में उपलब्ध होता है । अवतार का सम्बन्ध पुनर्जन्मवाद के साथ घनिष्ठ रूप से माना जाता है और विद्वानों की दृष्टि में पुनर्जन्म अथवा आत्मा के संसरण के सिद्धान्त ऋग्वेद की ऋचाओं में यत्र–तत्र प्राप्त होते हैं । इन्द्र को अपनी माया के द्वारा नाना रूपों के धारण करने का तत्व प्रतिपादित किया गया है ––

(क) रूपं रूपं मघवा बीभवीति
माया कृण्वानस्तन्वं परि स्वाम् ।
त्रिर्यद् दिवः परिमुहूर्तमागात्
स्वैर्मन्त्रैरनुतुपा ऋतावा ।। (१)

---

(१) भाग० पु० ३/२५/३६
(२) " " ३/२४/३६

---

(१) भागवत पुराण ––

(ख) रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव
तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते
युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ।। (२)

इन उपर्युक्त ऋचाओं में इन्द्र माया के द्वारा भिन्न–भिन्न रूप धारण करने वाला कहा गया है । 'माया' का वैदिक अर्थ लोक प्रचलित अर्थ से इतर माना जाता है । इसीलिये सायण ने इसका अर्थ – ज्ञान, शक्ति अथवा आत्मीय संकल्प किया है । परन्तु महाभारत काल में इसका व्यवहार प्रचलित अर्थ में होने लगा था, क्योंकि उपर्युक्त मन्त्रों के आधार पर ही यहाँ इन्द्र को – बहुमायः – वर्णन किया गया है –

स (इन्द्रः) हि रूपाणि कुरुते विविधानि–भृगूत्तम ।
बहुमायः स विप्रर्षे बलहा पाकशासनः ।।[३]

यह प्रयोग नूतन अर्थ में ही किया गया है । ऋ० सं० (१) में इन्द्र वृषणस्व की दुहिता का रूप धारण करने वाला कहा गया है । सायण के इस मन्त्रार्थ का आधार शाटयायन तथा ताण्डय ब्राह्मण के तत्तत स्थल हैं जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ब्राह्मण युग में यह आख्यायिका – बहुशः प्रचलित हो गयी थी । ऋ०[२] में इन्द्र 'श्रृंगवृष' के पौत्र का रूप धारण करने वाला माना गया है । इन दोनों स्थलों पर इन्द्र के अवतार का स्पष्ट आभास प्राप्त होता है ।

श्रीमद्भागवत पुराणानुसारेण भगवान का प्रथम अवतार "पुरुष"[३] है जिसका वर्णन ऋ० के प्रख्यात पुरुष सूक्त[५] में किया गया है ––

---

(१) ऋ० ३/५३/८
(२) ऋ० ६/४७/१८
(३) महाभारत अनुशासन पर्व – ७५/२५

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान् महदादिभिः ।
संभूतं षोडशकलामादौ लोकसिसृक्षया ।।

भागवत इस रूप को ही नाना अवतारों का आद्यबीज मानता है जिसके अंशांश से देव, तिर्यक् तथा नर इत्यादि की सृष्टि होती है ––

एतन्नानावताराणा। निधनं वीजमव्ययम् ।
यस्याशांसेन सृत्यन्ते देवतिर्यड्न्नरादयः ।। (५)

निष्कर्षेण अवतार का यह संकेत ––

ऋग्वेद के मन्त्रों में अस्पष्ट रूप से ही सही, अवश्यमेव विद्यमान है । यह तो इन्द्र–विषयक मन्त्रों के आधार पर है । पुरुष सूक्त में वर्णित 'पुरुष' को भागवत भगवान् का आद्य अवतार ही नहीं, वरन् नाना अवतारों का बीज (उद्गम स्थल) तथा निधन (संग्रहस्थान) भी घोषित करता है ।

अवतारवाद[१] के ऋ० संहिता में निक्षिप्त बीज ब्राह्मण ग्रन्थों में विशेष दृष्टिगोचर होते हैं – इस भावना का स्पष्ट रूप हमें शतपथ ब्राह्मण में उपलब्ध होता है । मनु एवं मत्स्य का उपाख्यान[२], कूर्म[३] का एवं वराह[४], वामन एवं देवकी पुत्र कृष्ण का उपाख्यान[६] ये सभी उपाख्यान शतपथ ब्राह्मण में उल्लिखित हैं ।

प्रजापति के बराह रूप धारण करने की कथा तैत्तिरीय–ब्राह्मण[७] तथा काठक संहिता[८] में भी बीज रूपेण प्राप्त होती है । रामायण[९] में भी बराह अवतार का उल्लेख विस्तृत रूप से निबद्ध है । महाभारत में ब्रह्मा[१०] के द्वारा मत्स्य रूप लेने का संकेत हमें प्राप्त होता है । अभी तक इन अवतारों का सम्बन्ध प्रजापति के साथ था, कालान्तर में विष्णु के प्राधान्य की स्थापना होने पर ये अवतार विष्णु के ही माने जाने लगे । परन्तु वामनावतार के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता । आरम्भ में ही ऋग्वेद में विष्णु 'उरुगाय' तथा 'उरुक्रम' विशेषणों से महिमा मण्डित किये गये हैं और तीन डगों में ही पृथिवी को नाप लेना ––

'विचक्रमाणस्त्रे धोरूगायः ।'[१]

उनका एक विशिष्ट वीर्य सम्पन्न कार्य माना गया है तथा शत० ब्रा० में

वेदि निर्माण के प्रसंग में विष्णु के वामन होने की विस्तार से कथा दी गयी है ––

"वामन ह विष्णुरास तथापि देवाः न जिहीडिरे ।"[२]

अतः वामनावतार का सम्बन्ध मूलतः विष्णु से है, अन्य अवतारों – मत्स्य, कूर्म, वाराह – प्रजापति के साथ वैदिक साहित्य में वर्णित सम्बन्ध विष्णु के प्रधान देव होने पर उन्हीं के साथ संयोजित कर दिया गया, ऐसा मानना युक्ति–युक्त एवं समीचीन ही होगा ।

(१) ऋ० १/५१/१३
(२) ऋ० ८/१७/१३
(३) भागवत पुराण १/३/१
(४) ऋ० १०/६० सूक्त
(५) भागवत पुराण १/३/४

(१) द्रष्टव्य याकोबी – इनकार नेशन, इ०आर०ए० भाग–७, वी०पी० काणे – धर्मशास्त्र का इतिहास भाग–२, पार्ट २ पृ० ३१७, राय चौधरी, अर्ली हिस्ट्री आफ वैष्णव सेक्ट, पृ० ६६,
(२) शत०ब्रा० १/८/१/१–६
(३) शत०ब्रा० ७/५/१/५
(४) शत०ब्रा० १४/१/२/११
(५) शत०ब्रा० १/२/५/१
(६) शत०ब्रा० ३/१७/६
(७) तैत्ति० १/२/३/५
(८) काठक सं० ८/२,
(९) रामायण २/११०
(१०) महाभारत ३/१८७

अवतारवाद ब्राह्मण साहित्य में अवश्वमेव विद्यमान था, परन्तु न तो उस काल में विष्णु का प्राधान्य था और न ही इन अवतारो की पूजा ही होती थी । भागवत सम्प्रदाय के उदय होने पर जब कृष्ण–बलराम की भक्ति उद्घोषित हुई, तब अवतारवाद का उत्कर्ष सम्पन्न हुआ । वासुदेव कृष्ण के, विष्णु के अवतार होने की कल्पना का उदय आरण्यक युग में हो गया था,
जब तैत्तिरीय आरण्यक उनकी गायत्री निम्न मन्त्र में वर्णित करता है ––

ॐ नारायणाय विद्महे,
वासुदेवाय धीमहि ।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ।।[1]

पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में ––

'वासुदेवार्जुनाभ्यांवुञ् ।'[2]

वासुदेव तथा अर्जुन की भक्ति का उल्लेख किया है । वैष्णव सम्प्रदाय के उदय होने पर वासुदेव कृष्ण का नारायण के साथ ऐक्य स्थापित हो गया और अवतारवाद के विकास का युग प्रारम्भ हो गया । श्रीमद्भगवतगीता के काल तक अवतारवाद वैष्णव धर्म का एक विशद तथ्य स्थापित हो गया था जिसे सिद्ध करने का आवश्यकता हेतु स्थान नहीं है । श्रीकृष्ण के वचन इस प्रसंग में स्पष्ट प्रमाण है ।[1]

(१) ऋ० सं० विष्णुसूक्त
(२) श० प्रा० १ काण्ड वेदि निर्माण प्रसंग

---

(१) तैत्ति० आरण्यक १० प्रपाठक(१ अनुवाक)
(२) पाणिनि अष्टाध्यायी

अवतारों की संख्या

अवतारवाद का सिद्धान्त मान्य हो जाने पर अवतारों की संख्या कितनी है ? इस पर ध्यान केन्द्रित होता है । एतदर्थ, महाभारत एवं पुराणों में अनेक मत दृष्टिगोचर होते हैं । विषय द्रव रूप (तरलवत) था, किसी ठोस अवस्था को प्राचीन ग्रन्थों में स्थान नहीं प्राप्त किया था । कारण, एक ही पन्थ के भिन्न–भिन्न अध्यायों में ही न केवल पार्थक्य है वरन् कभी–कभी एक ही अध्याय में भी विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है । अवतारवाद का मौलिक तथ्य भगवत्गीता की देन है, तथापि गीता में भी दो ही अवतार वर्णित हैं – राम

"रामः शस्त्रभृतामहम् ।"(२)

ओर कृष्ण – "वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि ।"(३)

महाभारत के शान्ति पर्व में नारायणीय खण्ड(४) में केवल छः ही अवतारों का अपने विशिष्ट कार्यो के साथ निर्देश प्राप्त होता है ––

१. वराह

२. नरसिंह

३. वामन

४. भार्गव राम (परशुराम)

५. दाशरथी राम

६. कृष्ण

इन अवतारों के कार्य वे ही हैं जो लोक में सर्वत्र सर्व जनीन एवं प्रख्यात हैं । इसी अध्याय में दश अवतार भी वर्णित हैं, जिसमें दशावतार के वर्णित एवं लोकप्रिय नामों में बुद्ध का अभाव है 'हंस' की सत्ता होने से संख्यापूर्ति हो जाती है ––

---

(१) श्रीमद्भगवतगीता १०वाँ अध्याय विभूति योग प्रकरण ।

(२) श्रीमद्भगवतगीता १०वाँ / ३१ श्लोक विभूति योग प्रकरण ।

(३) श्रीमद्भगवतगीता १०वाँ / ३७ श्लोक विभूति योग प्रकरण ।

हंसः कूर्मश्च मत्स्यश्च प्रादुर्भावाद् द्विजोत्तम ।
वराहो नरसिंहश्च वामनो राम एव च ।।
रामो दाशरथिश्चैव सात्वतः कल्किरेव च ।।[1]

साधारणतः स्वीकृत दश अवतारों का निर्देश पुराणों में बहुलतया उपलब्ध है ।[2] इन नामों के अतिरिक्त भी अवतारों की गणना पुराणों में प्राप्त होती है ।

श्रीमद्भागवत पुराण में चार स्थलों पर निर्देश प्राप्त होता है । प्रथम स्कन्ध के तृतीय अध्याय में अवतारों की संख्या द्वाविंशत् (२२) निर्दिष्ट है जो निम्न है[3]——

१. कौमार सर्ग – सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार ।
२. वराह
३. नारद
४. नर–नारायण
५. कपिल
६. दत्तात्रेय
७. यज्ञ
८. ऋषभदेव

---

(१) महाभारत शान्तिपर्व नारायणीय खण्ड ३३६/७७–१०२

---

(१) महाभारत शान्तिपर्व नारायणीय खण्ड ३३६/१०३–१०४
(२) वाराह पुराण ४/२; ४८/१७–२२; मत्स्य पुराण २८५/६–७, अग्निपुराण २/१६, (दशों के कार्यो का विवरण भी वर्णित है); नृसिंह पुराण अ० ३६, पद्म पुराण ६/४३/१३–१५ श्लोक

९. पृथु
१०. मत्स्य
११. कच्छप
१२. धन्वन्तरि
१३. मोहिनी
१४. नृसिंह
१५. वामन
१६. परशुराम
१७. वेदव्यास
१८. रामचन्द्र
१९. बलराम
२०. कृष्ण
२१. बुद्ध
२२. कल्कि

यहाँ केवल २२ अवतारों का ही निर्देश है, परन्तु साधारणतया भगवान् के तो २४ अवतार प्रसिद्ध हैं । इस वैषम्य को दूर करने के लिये टीकाकारों में अपने–अपने अलग मत कल्पित किये हैं ।

द्वितीय स्कन्ध(१) के सप्तम अध्याय में भी भगवान् के इन अवतारों का वर्णन क्रमशः दिया गया है ––

१. वराह
२. यज्ञ
३. कपिल
४. दत्तात्रेय
५. चतुः सनः – सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, कौमार सर्ग ।

---

(१) भागवतपुराण १/३/१–२५

६. नर—नारायण
७. पृथु
८. ऋषभ
९. हयशीर्ष – हयग्रीव
१०. मत्स्य
११. कच्छप
१२. नृसिंह
१३. गजेन्द्र—मोक्षदाता
१४. वामन
१५. हंस
१६. धन्वन्तरि
१७. परशुराम
१८. राम
१९. कृष्ण
२०. व्यास
२१. बुद्ध
२२. कल्कि

इस द्वितीय सूची को प्रथम सूची से मिलाने पर अनेक नामों में पार्थक्य दृष्टिगोचर होता है । द्वितीय सूची में अवतारों की संख्या वही २२ ही है । प्रथम सूची के २२ नामों में – 'हंस तथा हयग्रीव' – अवतारों को मिला देने पर यह संख्या २४ पूर्ण हो जाती है । कतिपय विद्वान इसकी उपपत्ति अन्यथा कल्पित करते हैं । उनका कथन है कि प्रथम सूची में (बल) राम तथा कृष्ण को छोड़ देने पर २० अवतार शेष रहते हैं । शेष चार अवतार श्रीकृष्ण के अंश ही हैं । श्रीकृष्ण स्वयं तो पूर्ण परमेश्वर हैं । अतः वे अवतारी हैं, अवतार नहीं हो सकते । उनके चार अंश हैं जो अवतार की गणना में परिगणित होते हैं —

१. केश का अवतार

---

(१) भागवतपुराण २/७

२. सुतपा और पृश्नि पर कृपा करने वाला अवतार

३. सकर्षण (बलराम)

४. परब्रह्म ।

इस प्रकार इन चारों अवतारों से विशिष्ट पॉचवें साक्षात् भगवान् वासुदेव हैं । इस प्रकार २४ अवतारों की पूर्ति टीकाकारों ने की है ।

भागवत के दशम् तथा एकादश स्कन्धों में अवतारों का वर्णन है जो पूर्व वर्णन से कहीं मिलते हैं और कहीं–कहीं पृथक भी हैं । दशम स्कन्ध[१] में इस क्रम से अवतारों का निर्देश है ––

१. मत्स्य

२. हयशीर्ष (हयग्रीव)

३. कच्छप

४. वराह

५. नृसिंह

६. वामन

७. भृगुपति (परशुराम)

८. रघुवर्य (राम)

६. वासुदेव

१०. संकर्षण

११. प्रद्युम्न

१२. अनिरुद्ध (चतुर्व्यूह)

१३. बुद्ध

१४. कल्कि ।

---

(१) भागवतपुराण दशम् स्कन्ध – ४०/१७–२२

एकादश स्कन्ध[1] में विशेष विवरण उपलब्ध है ––

१.	नर–नारायण	२.	हंस
३.	दत्तात्रेय	४.	कुमार
५.	ऋषभ	६.	हयास्य
७.	मत्स्य	८	वराह
६.	कूर्म	१०.	गजेन्द्र मोक्षकर्ता
११.	बालखिल्य के रक्षक	१२.	इन्द्र के शाप मोचक
१३.	देवस्त्रियों के उद्धारक	१४.	नृसिंह
१५.	वामन	१६.	राम
१७.	सीतापति	१८.	कृष्ण
१६.	बुद्ध तथा	२०.	कल्कि ।

उपर्युक्त चारों सूचियों का अनुशीलन करने पर यही ज्ञात होता है कि अवतारों की गणना अभी प्रारम्भिक चरण में ही थी, जिसमें नवीन–नवीन नाम जोड़े और घटाये जा रहे थे । अभी तक, ठोस रूप से एक निश्चित परम्परा में अन्तर्भुक्त होने वाली स्थिति नहीं स्थिर हो सकी थी ।

बाइस या चौबीस रूपों में अवतारों का नियमन करना श्रीमद्भागवत पुराण के प्रणयन के पीछे की घटना प्रतीत होती है । इसलिए भागवत का वचन है कि सत्वनिधि भगवान् श्री हरि के अवतार असंख्येय हैं, उनकी गणना सम्भव नहीं है । जिस प्रकार अगाध सरोवर से सहस्रों छोटे–छोटे नाले निकलते हैं उसी प्रकार अवतारों की बात समझना चाहिए ––

अवतारा हयसंख्येया हरेः सत्वनिधेर्द्विजाः ।
यथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ।।
ऋष्यो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः ।

---

(१) भागवतपुराण – ११/४/१७–२२

कलाः सर्वे हरेव सप्रजापतयस्तथा ।।
एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।। (१)

ऋषि, मनु, मनुपुत्र, देव, प्रजापति तथा शक्तिशाली पुरुष – ये सब भगवान् के अंशावतार हैं, परन्तु श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् (अवतारी) हैं अवतार नहीं । भागवत का यह परिनिष्ठत सिद्धान्त कि –

"कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" धार्मिक जगत् का एक समग्र तथ्य है, जिसमें वैष्णव मतावलम्बी ही नहीं, वरन् प्रत्येक आस्तिक जन पूर्ण आस्था एवं श्रद्धा रखता है । सम्प्रति, भगवान् के अवतारों की संख्या प्रचलित रूप में दस[१] ही मानी जाती है, जिनका नाम और क्रम इस प्रकार है ––

वनजौ बनजौ खर्वः त्रिरामो सकृपोऽकृपः ।
अवतारा दशैवैते कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।।

अर्थात् वनजौ – जल में उत्पन्न होने वाले – दो अवतार–मत्स्य तथा कच्छप ।

बनजौ – जंगल में पैदा होने वाले दो अवतार – वराह तथा नृसिंह ।
त्रिरामो – तीन राम – परशुराम, दाशरथिराम, तथा बलराम ।
सकृपः कृपा युक्त अवतार – बुद्ध ।
अकृपः – कृपाहीन अवतार – कल्कि ।

---

(१) भागवतपुराण १/३/२६–२७–२८

(१) हरिवंश तथा शान्तिपर्व में भी अवतारों के इसी गणनातीत रूप का उल्लेख मिलता है––
प्रादुर्भाव सहस्राणि अतीतानि न संशयः ।
भूयश्चैव भविष्यन्तीत्येवमाह प्रजापतिः । हरिवंश पुराण १/४१/४१
अतिक्रान्ताश्च बहवः प्रादुर्भावा ममोत्तमाः ।। शान्तिपर्व ३३६/१०६
मत्स्य पुराण ६६/१४

श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान हैं जिनसे ये अवतार संभूत होते हैं । जयदेव ने 'गीत-गोविन्द' के प्रथम सर्ग में और क्षेमेन्द्र ने - 'दशावतार चरित' महाकाव्य में इन्हीं दशों अवतारों की स्तुति किये है ।

विष्णु पुराण[१] में वर्णन है कि लक्ष्मी विष्णु के अवतारों में उनके साथ आती हैं । पुराणों ने विष्णु के विभिन्न अवतारों के क्रिया-कलापों का पर्याप्त वर्णन किया है । किन्तु, यह सन्देह नहीं होना चाहिए कि शिव जी के अवतार नहीं हुए हैं । वायु पुराण ने महेश्वर के २८ अवतारों का उल्लेख किया है जिनमे - 'नकुली' (लकुली) अन्तिम अवतार कहा गया है ।[२] वराह पुराण[३] में बुद्ध के अतिरिक्त समस्त अवतारों के नामों की सूची है । नृसिंह की पूजा से पापों के भय से मुक्ति मिलती है, वामन की पूजा से मोह का नाश होता है, परशुराम की पूजा से धन की प्राप्ति होती है, क्रूर शत्रुओं के नाश के लिये राम की पूजा करनी चाहिए, पुत्राप्ति के लिये बलराम एवं कृष्ण की पूजा करनी चाहिए, सुन्दर शरीर हेतु बुद्ध की तथा शत्रुघात के लिये कल्कि की पूजा करनी चाहिए ।[४] अग्निपुराण में दस अवतारों की मूर्तियों की विशेषताओं का वर्णन है[५] बुद्ध की प्रतिमा के विषय में वर्णन है कि --

---

(१) यही क्रम और सं० अग्निपुराण में भी स्वीकृत हैं --
अग्नि० २/१६ तथा पद्मपुराण में भी -
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथवामनः ।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्किश्च ते दश ।।
प० पु० उत्तर खण्ड २५७/४०-४१/
लिंग पुराण २/४८/३२-३२, में भी यह श्लोक है ।
मत्स्यो कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश ।।
वराह पुराण ४/२

शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौरागश्चाम्बरावृतः ।
ऊर्ध्वं पद्भस्थितो बुद्धो वरदाभयदायकः ।।[६]

अर्थात् मूर्ति में शान्तात्मा वाला मुख होना चाहिए, कर्ण लम्बे हों, अंग गौर हो, भगवान् बुद्ध उत्तरीय धारण किये हुए हो ।

पद्मासन पर स्थित हों और दोनों हाथो मे वरद् एवं अभय की मुद्रायें हों ।

दशावतार की कल्पना, जिसमें बुद्ध अवतार के रूप में गृहीत किये गये कब मान्य हुई ? इसकी मात्र कल्पना ही की जा सकती है । कुमारिल भट्ट ने तन्त्रवार्त्तिक में लिखा है कि ––

स्मर्यन्ते च पुराणेषु धर्मविप्लुति हेतव. ।
कलौ शाक्यादयस्तेषां को वाक्यं श्रोतुमर्हति ।।[७]

पुराण में धर्म के लोप करने वाले शाक्य (गौतम बुद्ध) आदि का चरित कलि प्रसग में वर्णित है, परन्तु इनका वचन कौन सुनेगा ? कुमारिल भट्ट के इस कथन से तात्पर्य निकलता है कि उन पुराणों में, जिनके साथ उनका परिचय था, बुद्ध की निन्दा की गयी थी । फलतः बुद्ध उस समय (७–८वीं शती) तक अवतार के रूप में गृहीत नहीं हुए थे । एक और तथ्य का पता चलता है कि कुमारिल के समय में कलियुग से सम्बद्ध विशेषताओं का ही वर्णन प्राप्त होता था । यह भी एक विशिष्ट तथ्य है । दशावतार की कल्पना का उदय काल अष्टम से एकादश शती के मध्य की शताब्दियां हैं । एकादश शती में दशावतार की बुद्ध सहित योजना स्वीकृत हो गयी थी । ११५० ई० के लगभग जयदेव ने 'गीत गोविन्द' की आरम्भिक स्तुति में दशावतारों में बुद्ध को भी स्थान दिया है । क्षेमेन्द्र ने १०६६ ई० में अपने 'दशावचरित' महाकाव्य का प्रणयन किया तथा अपरार्क ने याज्ञवल्क्य की विशद् टीका में मत्स्य पुराण से एक लम्बा उद्धरण दिया है, जिसमें बुद्ध के साथ दश अवतारों का नाम निर्देश किया गया है ––

मत्स्यः कूर्मो वराहः पुण्यहरिवायुर्वामनो जामदग्न्यः ।
काकुत्स्थः कंसहन्ता स च सुगतमुनिः कर्किनामा च विष्णुः ।।(२)

इस प्रमाण के आधार पर यही सिद्ध होता है कि एक हजार ई० के पूर्व ही बुद्ध अवतारों के मध्य परिगणित किये गये थे, यद्यपि कुमारिल के समय तक उन्हें यह गौरवपूर्ण स्थान नहीं प्राप्त हो सका था और वे तिरस्कार की दृष्टि – धर्म विप्लावक की दृष्टि से ही देखे जाते थे । अतः विभिन्न पुराणों में उपलब्ध । दशावतार (बुद्ध सहित) की कल्पना के उदय का यही काल समीचीन प्रतीत होता है – लगभग ६वीं शती ।

मत्स्य पुराण ने दश अवतारों में तीन को दिव्य माना है –– नारायण, नृसिंह और वामन और सात को मानुष = दत्तात्रेय, मान्धाता, चक्रवर्ती परशुराम, राम, व्यास, बुद्ध तथा कल्कि ।

हरिवंश पुराण में दश अवतारों के नाम ये हैं –– मौक्षरक, वराह, नरसिंह, वामन, दत्तात्रेय, परशुराम, कृष्ण, व्यास तथा कल्कि ।

---

(१) विष्णु पुराण – एवं यदा जगत्स्वामी देवदेवो जनार्दनः ।
अवतारं करोत्येषा तदा श्रीस्तत्सहायिनी ।। १/६/१४२

(२) वायु पुराण – २३/२२१

(३) वराह पुराण – १५/१०–१६

(४) वराह पुराण – ४८/२०–२२

(५) अग्नि पुराण – ४६/१–६

(६) अग्नि पुराण – ४६/८

(१) जैमिनिसूत्र १/३/६
तन्त्रवर्तिका –

---

(१) दशावचरित १/२, मत्स्य पुराण अ० २८५/७ श्लोक

(२) मत्स्य पुराण ४७वाँ अध्याय ।–

ब्रह्मपुराण में भी ये ही नाम प्राप्त होते है व्यास वहां स्वयं वक्ता होने के कारण परिगणित नहीं हैं ।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि दश अवतारों की संज्ञा के विषय में पुराणों में वैचित्र्य दृष्टिगोचर होता है, परन्तु विभिन्न शताब्दियों से होकर यह अभिधान अधुनातम के प्रचलित नामों में सीमित तथा मर्यादित कर दिया गया है ।

अवतारवाद तथा विकास तत्व

अवतारवाद के इस क्रम के भीतर एक वैज्ञानिक रहस्य निगूढ़ है और जिस पर ध्यान केन्द्रित करना नितान्त आवश्यक है । प्रथमतः इसका सामान्य तात्पर्य सुतरां सुस्पष्ट है कि भगवान को कोई एक विशिष्ट योनि अभीष्ट नहीं है, क्योंकि वे छोटी–से–छोटी योनि से लेकर ऊँची–से–ऊँची योनि में उत्पन्न होते हैं । प्रत्येक योनि में उनका प्राकट्य सम्भावित है और ऐसा होना उचित ही है । जब समस्त योनियों का निर्गम स्थान स्वयं भगवान ही हैं,[१] तब उनके लिये कौन योनि ग्रहण के लिये ग्राह्य हो और कौन योनि त्याज्य हो, इस भेद–भावना के लिये यहाँ स्थान ही नहीं है ।

दूसरा मार्मिक तथ्य यह है कि इस क्रमबद्धता में वैज्ञानिक विकास–सिद्धान्त का तत्व गुप्त रूपेण निविष्ट है । यह सर्वजनीन है कि एक अंग्रेज वैज्ञानिक **'डारबिन'** ने १६वीं शती के मध्य भाग में अपने वैज्ञानिक अन्वेषणों के आधार पर विकासवाद (थ्योरी ऑफ इयोल्यूशन) का तत्व पश्चिमी जगत् में सर्वप्रथम प्रतिष्ठित किया । तब से लेकर अद्यतन काल पर्यन्त इसने ज्ञान के समस्त विभागों में अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया है । सृष्टि के विषय में **'विकासवाद'** का यही तात्पर्य है कि सृष्टि का प्रारम्भ लघुकाय जीवों में प्रथमतः हुआ और धीरे–धीरे सृष्टि दीर्घकाय प्राणियों में आविर्भूत होती गयी ।

---

(१) भगवत गीता अ० १० विभूतियोग प्रकरण

प्रथमतः जन्तु वुद्धि से विहीन थे, कालान्तर में उनमें बुद्धि तत्व का विकास हुआ । इस प्रकार पश्चिमी जगत् में विकासवाद सौ वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं है ।

यह अवतार–तत्व समीक्षा करने पर विकासवाद की भित्ति पर आधारित प्रतीत होता है । सर्वप्रथम सृष्टि का आरम्भ जलीय प्राणी से होता है । **'मत्स्य'** उसी का प्रतीक है । मछली का निवास केवल जल ही हो सकता है । जल में ही वह जीती–जागती है और पानी के बाहर आते ही यह निश्प्राण हो जाती है । कालान्तर में जलीय और स्थलीय जीवों का सृजन हुआ । इसका प्रतिनिधि कूर्म है जो जल में भी रहता है और स्थल पर भी रहते हुए चलता–घूमता है । मात्र जल तक ही उसकी गतिविधि सीमित तथा मर्यादित नहीं रहती । तदनन्तर स्थलीय जीवों (जमीन के ऊपर रहने वाले) का विकास प्राप्त होता है जिसका प्रतिनिधि वराह सूकर को माना जा सकता है । यह जंगल का प्राणी है, पृथ्वी पर रहकर जीवन–यापन करना इसकी विशेषता है ।

इसके अनन्तर मानव का क्रम आना चाहिये परन्तु विशुद्ध मानव की उत्पत्ति के पूर्व ऐसे प्राणी की कल्पना की जानी चाहिए, जिसमें एक साथ पशुत्व तथा मनुष्यत्व दोनों का ही अंश हो । वह प्राणी निःसन्देह नृसिंह ही है । नरसिंह में अर्ध भाग पशु का और अर्ध भाग मानव का है । नरसिंह के पश्चात् पूर्ण मानव का क्रम है । वह मानव लघुकाय खर्व अर्थात् वामन है और वामन–विष्णु का यह स्वरूप हमें सहज ही दृष्टिगोचर हो जाता है ।

मानव का वामन रूप ही प्राथमिक रूप है, जहॉ से सृष्टि का क्रम विकासोन्मुख हो उठता है । मनुष्य का खूंखार, भयानक, रक्त पिपासु रूप वामन के अनन्तर प्रत्यक्ष होता है और अपने हाथ में **'परशु'** धारण करने वाले इक्कीस बार दुर्दान्त शासकों का नाश करने वाले **'परशुराम'** इस रूप के प्रतिनिधि हैं । दाशरथि–राम हमारे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं जिनमें मानव के जीवन के समग्र मर्यादाओं का विकास सम्पन्न होता है । यहाँ आदर्श राजा

आदि समग्र आदर्शों की पूर्ण प्रतिष्ठा होती है तथा मानव अपने चरम विकास तक पहुचने के लिये उत्सुक होता है । **'बलराम'** में हम **'बल'** के ऊपर अधिक आग्रह रखने वाले मानव का साक्षात्कार करते है जो प्रत्येक समस्या के समाधान के लिये अनिश्चित बल का ही आश्रयण करता है ।

'बुद्ध' में कृपा की ही अधिकता प्राप्त करते हैं । यहॉ मानव कृपा के आधिक्य से इतना सम्पन्न रहता है कि वह शत्रु के ऊपर बल का प्रयोग न कर कृपा, करुणा तथा मैत्री के उपायों द्वारा उसे अपने वश में करने में समर्थ होता है । ऐसा करने पर भी मानव की समस्या सुलझती नहीं । कृपा का प्रयोग कुछ सीमा तक प्राणियों की समस्याओं का समाधान तो करता है, परन्तु दुर्दान्त तथा उदण्ड प्राणी कृपा–करुणा के कोमल साधनों से पराक्रान्त नहीं होता । **'कल्कि'** के रूप में हम मानव के **'अकृप'** रूप का साक्षात्कार करते हैं । दुर्दान्त–दमन हिंसा की सहायता चाहता है । उदण्ड का स्वभाव करुणा की सुस्वादु गोली से शान्त नहीं होता । फलतः कल्कि के अवतार में हम प्राणियों के वर्तमान युगीन समस्याओं का समाधान परक रूप का साक्षात्कार करते हैं ।

इस प्रकार अन्तः प्रविष्ट होकर परिशीलनोपरान्त अवतारवाद विकासवाद के वैज्ञानिक तथ्य के ऊपर आधारित नितान्त सत्य तथा बहुमूल्य देन परिलक्षित होता है, जिसमें लेशमात्र भी संशय हेतु स्थान नहीं है । इस विकासवाद का तत्व भारतवर्ष में प्राचीन काल में ही निवेचित हो चुका था ।

पौराणिक अवतारवाद का मूल स्रोत

अवतारवाद पौराणिक साहित्य का विशिष्ट क्षेत्र है, परन्तु इसे पुराणों की ही अपनी निजी सम्पत्ति नहीं स्वीकार किया जा सकता है । अवतारों का मूल उद्गम (स्रोत) स्वयं वेद भगवान् ही हैं – मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद, जहाँ से ये संगृहीत होकर विभिन्न पुराणों में उपन्यस्त हैं । वेदों का परिवृंहण इतिहास–पुराण में है और इसी सिद्धान्त का अनुगम किया जा रहा है ––

१. **मत्स्य अवतार** -- मत्स्य अवतार की वैदिक कथा शतपथ ब्राह्मण में उपलब्ध होती है ।[१] वैदिक कथा का स्वरूप निम्न प्रकार से है --

"नदी के तट पर यजन करते समय मनु के हाथ में मछली का एक बच्चा अकस्मात् आ गया । उसने कहा कि मेरा पालन–पोषण करो, तो मैं तुम्हें पार उतार दूंगा । मनु ने आश्चर्यचकित होकर पूछा कि किससे पार उतारोगे ? मछली ने कहा– बड़ी बाढ़ (ओघ) आने वाली है, जो समग्र प्रजाओं को अपने में समेट ले जायेगी । उससे मैं तुम्हें बचाऊँगा । मनु ने उसे बचाया और उसके कथनानुसार उसे घड़े में, पश्चात् तालाब में और अन्त में समुद्र में रखा, जहाँ वह बढकर विशालकाय वाला हो गया । ओघ–जलप्लावन आया और समस्त वस्तुओं को नष्ट कर डाला । मत्स्य के कथनानुसार मनु ने समस्त अन्नों के बीजों को पहले ही एक नाव में सुरक्षित रखा था । ओघ शान्त होने पर मनु ने यज्ञ किया और उन्हीं सुरक्षित बीजों से पुनः पदार्थों का सृजन किया ।"

मत्स्यावतार की यही कथा प्रायः अनेक पुराणों में प्राप्त होती है । **'मत्स्यपुराण'** तो इसी के ही कारण तन्नामधारी है । श्रीमद्भागवत के एक अध्याय[१] में यह कथा संक्षेप रूप में दी गयी है। अन्तर मात्र इतना है कि वैदिक आख्यान में कथानक का भौगोलिक क्षेत्र हिमालय है, तो भागवत में द्रविड़ देशीय **'कृतमाला'** नदी है तथा तद्देशीय **'राजा सत्यव्रत'** के सम्बन्ध से यह कथा द्रविड़ देश में घटित मानी गयी है । इस भौगोलिक भेद का जो भी हेतु हो, कथा में कोई भी विशेष अन्तर नहीं है ।

(१) "मनवे ह्वै प्रातः -- मत्स्यपाणौ आगेदे । स हयस्मै वाच मुवाच विभूहि मा पारयिष्यामि त्वेति । कस्मानमां पारयिष्यसीति ? ओघ इमाः सर्वाः प्रजाः निर्वोढा । ततस्त्वां पारयिष्यामीति ।" शतपथ ब्रा० १/८/१/१

---

(१) भागवत गीता १/३!१५, २२/७/१२, ८/२४/११–६१ श्लोक, मत्स्य पु० १/२६६/अग्नि पु० २/४६/गरुड पुराण १/१४२, पद्म पु० ५/४/७३, महाभारत १२/३४०

यहाँ एक विशिष्ट तथ्य पर ध्यान स्वतः केन्द्रित हो जाता है कि जलप्लावन की कथा, जिसमें संसार के पूर्व सृष्ट समस्त पदार्थो का नाश होने तथा नूतन सृष्टि का आरम्भ होने का वर्णन किया गया है, भारत वर्ष भर मात्र में प्रख्यात नहीं है, प्रत्युत समस्त जातियों की कथा–परम्परा में भी यह प्रचलित है । बाइबिल में यह कथा प्रायः इसी के मिलते स्वरूप में उल्लिखित है । यहाँ **'नूंह की किश्ती'** का उल्लेख विस्तार से वर्णित है । कुरान भी इसी का अनुसरण करता है । अन्य देशों के कथा–साहित्य में, यहाँ तक कि जंगली जातियों की दन्त–कथाओं में यही कथा उपलब्ध होती है, जिससे इसके ऐतिहासिक होने की सम्भावना विद्वानों ने स्वीकार की है । इस वैदिक कथा ने कब तथा किस प्रकार अन्य देशों में परिभ्रमण करते हुए अपना अस्तित्व सर्वत्र स्थापित कर लिया, यह अज्ञात ही है ।

इतना तो सुनिश्चित ही है कि मत्स्यावतार की यह कथा पुराण की परिकल्पना न हो कर वैदिक है ।

२. **कूर्मावतार** -- कूर्मावतार का प्रसंग तैत्तिरीय आरण्यक में विस्तरेण वर्णित है[९] – "अन्तरतः कूर्मभूत –पर्यन्तं तमब्रबीत् – मम वै त्वङ्मांसात् समभूत । नेत्यब्रबीत् । पूर्वमेवाहमिहासमिति । तत् पुरुषस्य पुरुषत्वम् । स सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात भूत्वो दतिष्ठत् ।"

इस प्रसंग का आशय यह है कि प्रजापति के शरीर में रस कम्यामान हुआ । जल के अभ्यन्तर कूर्म रूपेण विचरण करते हुए देखकर प्रजाप्रति ने कहा –– "हे कूर्म, तुम मेरी त्वचा तथा मांस से उत्पन्न हुए हो ।" कूर्म ने उत्तर दिया – "नहीं, मैं यहाँ तो तुमसे भी पहले था । इसलिये उसे **'पुरुष'** की संज्ञा हुई अर्थात् 'पुरस्तिष्ठति इति पुरुषः' इति व्यत्पत्ति के अनुसार पहले से (पुरः) रहने वाला व्यक्ति **'पुरुष'** पद वाच्य होता है । कूर्म यहाँ पहले से निवास करता था । अतः इस व्युत्पत्ति के अनुसार कूर्म 'पुरुष' कहलाया । उसके हजार सिर थे (सहस्रशीर्षाः), हजार आँखें थीं तथा हजार पैर थे । इस रूप में यह कूर्म पुरुष उठा ।"

इसका तात्पर्य यह है कि – "सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्" पुरुष सूक्त[1] के इस मन्त्र द्वारा यही कूर्म निर्दिष्ट है । इस तै०आ० के भाष्य ने उस कूर्मरूप को परमात्मा से अभिन्न माना है । शतपथ ब्रा० ने भी इस तथ्य का ही प्रतिपादन किया है –

"स यत् कूर्मो नाम एतद् वै रूप कृत्वा प्रजापतिः प्रजाः असृजत ।"[2]

इस मंत्र में कूर्म का रूप धारण कर प्रजापति के द्वारा प्रजा की सृष्टि करने का उल्लेख स्पष्टतः प्रतिपादित किया गया है ।

इस वैदिक तत्व का विवेचन––

समुद्र मन्थन के अवसर पर पुराणों में किया गया है । श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के सप्तम अध्याय में समुद्र मन्थन के शुभ अवसर पर निराधार होने के हेतु जब मन्दराचल समुद्र में डूबने लगा तथा समुद्र मन्थन में व्यवधान उत्पन्न होने लगा, तब भगवान् ने कच्छप का अद्भुत रूप धारण कर मन्दराचल को अपने ऊपर धारण कर लिया । अद्भुत का तात्पर्य है कि वह कच्छप शरीर से बहुत विशाल था – १ लक्ष योजन फैला हुआ, ठीक जम्बूद्वीप के समान ––

विलोक्य विघ्नेशविधि तदेश्वरो,[1]
दुरन्तवीर्योऽवितथाभि सन्धिः ।
कृत्वा वपुः काच्छामद्भुतं महत्;
प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार ।।

\+ + + + +

(१) तैत्तिरीय आरण्यक १/२/३/३

---

(१) ऋग्वेद १०/९० पुरुष सूक्त, विराट पुरुष की परिकल्पना

(२) शतपथ ७/५/१/५

दधार पृष्ठेन स लक्षयोजन[2]

प्रस्तारिणा द्वीपइवापरो महान् ।।

इसी दृढ़ आधार के ऊपर मन्दराचल से नाना वस्तुओं की सहायता से जब समुद्र मन्थन किया गया तब एक–के पश्चात् एक १४ विशिष्ट रत्न क्रमशः उत्पन्न हुए । फलतः यहाँ भी एक महान संकट से उद्धार करने के कारण ही महान भगवान् ने कच्छप का रूप धारण किया । इस प्रकार कूर्मावतार[3] हेतु पर्याप्त वैदिक आधार उपलब्ध हैं जो पुराणों में विस्तरेण वर्णित है ।

३. **वराह अवतार** -- वराह अवतार का प्रसंग तैत्तिरीय संहिता में, तैत्तिरीय ब्राह्मण मे और शतपथ ब्राह्मण में तीन स्थानों पर पृथक रूप से, परन्तु एक ही आधार मे, उपलब्ध होता है । इन तीनों स्थलों का सारांश नीचे उपस्थित किया जा रहा है ––

(क) "आपो व इदमग्रे सलिलमासीत् ।
तस्मिन् प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाऽचरत ।
स इमामपश्चत् ।
त वराहो भूत्वाऽहरत् ।।"[1]

(ख) "स वराहो रूपं कृत्वोपन्यमज्जत ।
स पृथिवीमधः आच्छैत् ।।"[2]

(ग) "इतीयती ह व हदमग्रे पृथिव्यास प्रादेशमात्रीतामेमूष इति वराह उज्जघान ।
सोऽस्याः पतिरिति ।"[3]

---

(१) भागवत पु० ८/७/८

(२) भागवत पु० ८/७/६

(३) भागवत पु० ८/७, कूर्म पु० १/१६!७७–७८, अग्नि पु० ४/४६, गरुड़ १/४२, पद्म पु० ५/४/१३, ब्रह्म पु० १८०/२१३, विष्णु पु० अकरोत्स्वतनूमन्यां कल्पादिषु यथा पुरा ।
मत्स्य कूर्मादिकां तद्वद्वाराहं व पुरास्थितः ।। १/४/८

अर्थात् (क) पहले इस विश्व मे जल–ही–जल था । प्रजापति वायु रूप होकर उसमें विचरण करने लगा । वहाँ उसने पृथिवी को देखा । तब वह वराह के रूप में उस पृथिवी को उस लोक से उद्धार कर हरण किया । तै० सं०,

(ख) "स वराहो रूपं कृत्वोपन्यमज्जत । स पृथिवी मधः आच्छेत् ।" तै०ब्रा०

अर्थात् प्रजापति ने वाराह का रूप धारण कर जल के भीतर निमज्जन किया । वह पृथिवी को नीचे से ऊपर ले आये ।

(ग) "इतीयती ह व इयमग्रे पृथिव्यास प्रादेश मात्री–तामेमूष इति वराह उज्जधान । सोऽस्याः पतिरिति ।" श०प०ब्रा०

अर्थात् वह इतनी बड़ी पृथिवी प्रादेशमात्र थी । तब पृथिवी के पति प्रजापति वाराह रूप धारण कर इसे नीचे से ऊपर लाये ।

(घ) "वाराहेण पृथिवी सर्विदना ।"[1]

(ङ) उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।[2]

इन वैदिक ग्रन्थों में प्रकटित तथ्य अक्षरशः पुराणों[1] में स्वीकृत हैं —

पादेषु वेदास्तव यूपदंष्ट्र;
दन्तेषु यज्ञाश्चितयश्च वक्त्रे ।[2]
हुताशजिह्वोऽसि तनूरुहाणि;
दर्भाः प्रभो यज्ञपुमांस्तवमेव ।।

---

(१) तैत्तिरीय संहिता ७/१/५/१
(२) तैत्तिरीय ब्राह्मण १/१/६
(३) शतपथ ब्राह्मण १४/१/२/११

---

(१) अथर्ववेद १२/१/४८
(२) तै० आ० १/१/३०

विलोचने रात्र्यहनी महात्म –
न्सर्वाश्रयं ब्रह्म परं शिरस्ते ।
सूक्तान्यशेषाणि सटाकलापो;
घ्राणं समस्तानि हवींषि देव ।।
स्रुकतुण्ड सामस्वर धीरनाद,
प्राग्वंशकायाखिलसत्रसन्धे ।
पूर्तेष्टधर्मश्रवणोऽसि देव
सनातनात्मन्भगवान्प्रसीद् ।।
पादक्रमाक्रान्तभुवं भवन्त,
मादिस्थितं चाक्षर विश्वमूर्ते ।
विश्वस्य विद्मः परमेश्वरोऽसि;
प्रसीद नाथोऽसि परावरोऽसि ।।
दंष्ट्राग्रविन्यस्तमशेषमेत –
द्भूमण्डलं नाथ विभाव्यते ते ।
विगाहतः पद्मवनं विलग्नं;
सरोजिनी पत्रमिवोऽपंकम् ।।

श्रीमद्भागवत पुराण के तृतीय स्कन्ध के तेरहवें अध्याय में इसका बड़ा ही यथार्थ तथा आकर्षक चित्रण किया गया है ––

रूपं तवैतन्तनु दुष्कृतात्मना,[१]
दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम् ।
छन्दांसि यस्य त्वर्चि बर्हिरोमस्त्वार्च्ये
दृशि त्वङ्घ्रिषु चातुर्होत्रम् ।। (१)

---

(१) विष्णु पु० १/४/३२–३६; ब्रह्म पु० २१३/३२–३६; वायु पु० ६/१६–२३; ब्रह्माण्ड पु० १/५/१६–२३; मत्स्य पु० २४८/६६–७४, अग्नि पु० ५/१–३, भागवत पु० ३/१३/३५–३६

(२) विष्णु पु० १/४/३२–३६

सुकतुण्ड आस्तीत्स्रुव ईश
नासयोरिडोदरे चमसाः कर्णरन्ध्रे ।
प्राशित्रमास्थे प्रसने ग्रहास्तु ते
यश्चर्वणं ते भगवन्नग्निहोत्रम् ।। (२)
दीक्षानुजन्मोयसदः शिरोधर त्वं
प्रायणीमोदमनीय दंष्ट्रः ।
जिह्वा प्रवर्ग्यस्तव शीर्षकं क्रतोः
सन्मायसध्यं चितयोऽन्तयो हिते ।। (३)
सोमस्तु रेतः सवनान्मयस्थितिः
संस्थायिभेदास्तव देव धातवः ।
सत्राणि सर्वाणि शरीरसन्धि –
स्त्वं सर्वयशक्रतुरिष्टि बन्धनः ।। (४)
नमो नमस्तेऽखिलमन्त्रदेवता –
द्रव्याथ सर्वक्रतवे क्रियात्मने ।
वैराग्यभक्त्यात्मजमान भावित
ज्ञानाय विद्यागुरुवे नमोनमः ।। (५)

इस स्थल पर वराह **'यज्ञवराह'** के रूप में चित्रित किया गया है अर्थात् यज्ञ मे जितने साधन तथा अंग स्रुव, चमस् आदि प्रयुक्त किये जाते हैं, उन समस्त का प्रतीक स्वरूप वराह के शरीर में विद्यमान था । वराह को यज्ञवाराह के रूप में चित्रण स्पष्टतः वैदिकत्व की छाप को स्पष्ट कर रहा है । फलतः वराह अवतार के द्वारा पाताल लोक से भूतधात्री पृथिवी का उद्धारकार्य प्रजापति के कार्यों में एक विशिष्ट स्थान रखता है और यह वेद में स्पष्टतः निर्दिष्ट होकर पुराणों में वटवृक्ष की तरह परिव्याप्त होकर उप वृंहित हुआ है । आधुनिक काल में मत्स्य अवतार को प्रथम अवतार निरूपित किया जाता है, परन्तु अनेक स्थलों पर वराह अवतार को ही आदि अवतार होने का गौरव प्राप्त है । भागवत पुराण के द्वितीय स्कन्ध के सप्तम अध्याय में अवतारों की द्वितीय सूची में भी वराह अवतार को ही प्रथम स्थान प्राप्त है, जो समीचीन भी है —

यत्रोद्यतः क्षितितलोद्धरणाय विभ्रत्
क्रौडी तनुं सकलयज्ञमयीमनन्तः ।
अन्तर्महार्णव उपागतमादिदैत्यं;
तं दंष्ट्रयाद्रिमिव वज्रधरो ददार ।।

जिस पृथिवी के ऊपर अन्य अवतारो का लीला–विलास सम्पन्न होता है, उसी पृथिवी के उद्धारकर्ता अवतार – वराह – को प्रथम अवतार के रूप में मान्यता प्रदान किया जाना, सर्वथा समीचीन तथा तर्कसंगत प्रतीत होता है । पुराणों में वराह के साथ यज्ञ का प्रतीक इतना पुष्ट स्वीकार किया गया है कि वह **'यज्ञवाराह'** के नाम से ही सर्वजनीन एवं सर्वश्रुत हो गया है ।[१]

४. **नृसिंह अवतार** -- नृसिंहावतार की पूर्ण सूचना तैत्तिरीय आरयण्यक से प्राप्त होती है । वहाँ नृसिंह की गायत्री दी गयी है --

ॐ वज्रनखाय विद्महे,
तीक्षणदंष्ट्राय धीमहि ।[२]
तन्नो नारसिंहः प्रचोदयात् ।।

इस गायत्री में नरसिंह अवतार के लिये **'बज्रनख'** तथा **'तीक्ष्णदंष्ट्र'** पदों का स्पष्ट प्रयोग उसकी भयंकरता की ओर स्पष्टतः लक्ष्य कर रहा है । इसी का उपवृंहण हिरण्यकशिपु को मारकर प्रहलाद को आशीर्वाद देने वाले नृसिंह भगवान् के चरित–चित्रण के अवसर पर पुराणों[३] में किया गया है विशेषतः श्रीमद्भागवत पुराण के सप्तम स्कन्ध में चित्रण है । अष्टम अध्याय में नृसिंह का जो सटामण्डित करालरूप का वर्णन किया गया है, वह उपर्युक्त गायत्री के **'वजनखाय'** तथा **'तीक्ष्ण दंष्ट्राय'** शब्दों के ऊपर मानों भाष्य रूप प्रतीत होता है --

---

(१) भागवत पु० ३/१३/३५–३६

मीमांस्मानस्य समुत्थितोऽग्रतो[1]
नृसिंहरूपस्तदलं भयानकम् ।
प्रतप्तचामीकराचण्डलोचनं
स्पुरत् सटाकेसरजृम्भिताननम् ।। २०।।
करालदंष्ट्रं करवालचञ्चल
क्षुरान्तजिहमं भृकुटीमुखोल्बणम् ।
स्तब्धौर्ध्वकर्ण गिरिकन्दराद्भुत्
व्यात्तास्यनासं हनुभेदभीषणम् ।। २१।।

नृसिंह का स्वरूप भयानक है, उग्र है, वीर रूप है, वह महाविष्णु है, चतुर्दिक (सर्वतः) जला डालने वाली अग्नि है, भीषण है और भक्तजनों के लिये भद्र – कल्याणकारी है तथा भक्तों के विरोधियों के लिये काल का भी महाकाल है –

"उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतो दिशम् ।[2]
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्यु–मृत्युर्नमाम्यहम् ।।"

ऐसे महाबीर विष्णु को प्रणाम करने से भक्तों की समस्त बाधायें उसके द्वारा स्वतः नष्ट हो जाती हैं ।

---

(१) भाग० पु० २/७/१ – यह तो मात्र सूच्य है, परन्तु विशेष वर्णन के प्रसंग पर भी इसी अवतार का वर्णन है । द्रष्टव्य भागवत पु० ३/१३ पर ।

---

(१) यज्ञवाराह के सांगोपांग विस्तृत विवेचन के लिये – द्रष्टव्य डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल का एतद्विषयक लेख 'पुराणम्' – वर्ष ५, भाग २, पृ० १९९–२३६, जुलाई १९६३, रामनगर, वाराणसी (सम्प्रति चन्दौली)

(२) तै०आ०/१०प्र०/१ अनुवाक

(३) भागवत पुराण ७ स्कन्ध/८ अध्याय, अग्नि पुराण ४/३–५, २७६/१०, २७६/१०, २७६/१३

---

५. **वामनावतार** -- वामनावतार के लिये वैदिक स्रोतों को विशेष प्रयत्न पूर्वक खोजने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है । यह तो ऋग्वेद के विष्णु सूक्तों के अनेक मन्त्रों में बहुशः वर्णित ही है ।[१] विष्णु के वैदिक स्वरूप का परिचय हमें प्राप्त होता है । उनके विशिष्ट कार्यों मे तीन डगों में पृथिवी को माप लेना अपनी प्रधानता रखता है ––

"विचक्रमाणस्त्रे धोरुगायः ।"[२]

विष्णु ने अकेले ही तीन पदों में माप लिया, इस दीर्घ दूर तक फैलने वाले – **'सधस्थ'** (अन्तरिक्ष) को जहाँ पितर लोगों का एकत्र निवास होता है ––

"य इदं दीर्घ प्रयत्नं सधस्थम् ।[३]
एको विवमे त्रिभिरित् पदेभिः ।।"

तीन डगों से पृथिवी को माप लेने के कारण ही – **'उरुगाव'** तथा **'उरुक्रम'** जैसे विशेषण मात्र विष्णु के लिये ही वेद में प्रयुक्त हुए हैं यह निम्नलिखित प्रसिद्ध मन्त्र इसी का द्योतक है ––

"इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधेपदम् ।
समूढमस्य पांसुरे ।"[४]

इस मन्त्र का आशय यह है कि विष्णु ने इस जगत् को तीन चरणों में आक्रान्त कर पद–प्रक्षेप किया और इसके धूलि–धूसर (पांसुरे) पद में यह भूमि आदि समस्त लोक अन्तर्हित हो गये ।

विष्णु के लिये **'वामन'** शब्द का प्रयोग हमें शतपथ ब्राह्मण में इस उक्ति के साथ प्राप्त होता है ––

"वामनो ह विष्णुरास तथापि देवाः न जिहीडिरे ।"[१]

फलतः वेद में विष्णु के तीन डगों को भरने की – **'उरुगाय-उरुक्रम'** आदि अन्वयर्थक नामों के धारण करने की ही उपलब्धि नहीं होती, प्रत्युत – "वामन" विशिष्ट नाम का भी प्रयोग हमें वेद में उपलब्ध होता है । फलतः वामनावतार की कथा का मूल स्रोत वेद में प्रामाणिकतया प्राप्त हो जाता है ।

विष्णु सूक्तों के अनुशीलन से गोपाल–कृष्ण की भी कथा का संकेत उपलब्ध होता है ––

''त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः अतो धर्माणि धारयन् ।''(२)

यह मन्त्र विष्णु को **'गोपा'** के विशेषण से सम्बोधित करता है । फलतः **'उरुक्रम वामन'** तथा **'गोपवेशधारी विष्णु'** की एकता का स्पष्ट प्रतिपादक यह मन्त्र आध्यात्म दृष्टि से अपना विशिष्ट महत्व रखता है । इतना ही नहीं, वैष्णव मत (सम्प्रदाय) में भगवान् विष्णु के सर्वोच्च पद को ''गोलोक'' नाम से अभिहित किया जाता है और इसके लिये वैदिक आधार हमें निम्न मन्त्र में सहज ही प्राप्त है ––

''ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै
यत्र गावो भूरिश्रृंगा अयासः ।

(१) श्रीमद्भागवत पुराण ७/८/२०–२१
(२) वैष्णव सम्प्रदाय में नृसिंह उपासकों का प्रमुख मन्त्र जो दीक्षा में प्रदान किया जाता है।
विष्णु पुराण १/१६ अध्याय से १६ अध्याय नृसिंह का वृतान्त पर्यन्त

---

(१) ऋ०सं० १ मण्डल १५४वां सूक्त
(२) ऋ०सं० १/१५४वां सूक्त
(३) ऋ०सं० १/१५४/३
(४) ऋ०सं० १/२२/१७

---

(१) शतपथ ब्रा० १/२/५/५
(२) ऋ०सं० १/२२/१८

अत्राह तदुरुगायस्य वृष्ण :
परम पदमव भाति भूरि ।।''(१)

तात्पर्य यह है कि हम इन्द्र–विष्णु के उन लोकों को जाने की सतत् कामना करते हैं जहाँ बहुत ही सींगों वाली तथा चंचल गायें निवास करती हैं । फलतः गायों के कारण यह लोक **'गोलोक'** की सज्ञा से भक्ति साहित्य में सर्वत्र अभिहित किया गया है । विशेष रूप से यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि विष्णु के सौर देवता होने के कारण उनका किरणों के साथ अभेद सम्बन्ध स्थापित है वैदिक मन्त्रों में । अतः 'गो' शब्द का तात्पर्य यहाँ किरणों से माना जाता है । विष्णु सूक्तों के अनुशीलन से परवर्ती काल मे उनके स्वरूप के विकास का पूर्ण परिचय सहजता से ही हो जाता है ।

शतपथ ब्राह्मण(१) में वामन का प्रसंग आता है, जो पौराणिक प्रसंग का मूलरूप माना जा सकता है । संक्षेपेण यह प्रसंग इस प्रकार है – ''देव और असुर – दोनों ही प्रजाप्रति की सन्तान हैं । वे दोनों आपस में विवाद करने लगे । उनमें से तीक्ष्ण स्वभाव वाले असुरों से देवगण हार गये, तब असुरों ने माना कि यह समस्त भुवन हमारा है ।''१।।

उन लोगों ने विचार किया कि समस्त पृथिवी को हम विभाजित कर दें और उसी को बाँटकर उसी के द्वारा आजीविका निर्वाह करें । यह विचार कर, उन्होंने वृषचर्म की बहुत बारीक ताँत बनाया और पश्चिम से लेकर पूर्व तक उसका विभाजन करने के लिए उद्यत हुए ।२।।

इस बात को देवों ने सुना कि असुरगण पृथिवी का बंटवारा कर रहे हैं, तो देवगण विचार कर कहने लगे – चलें, जहाँ असुर लोग पृथिवी का विभाजन कर रहे हैं । यदि हमें इसका अंश नहीं मिलेगा, तो हमारा क्या होगा ? हमारा काम कैसे चलेगा ? तब वे यज्ञरूपी विष्णु को आगे कर अर्थात् अपना नेता बनाकर असुरों के स्थान पर गये ।३।।

देव बोले – "हमारे पीछे पृथिवी का बँटवारा मत करो । हमारा भी तो इसमें भाग है । " इस बात को सुनकर असुरगण असूया करने लगे और बोले कि जितने स्थान पर यह विष्णु सोता है (व्याप्त कर लेता है) उतनी ही पृथिवी तुमको दे देंगे ।४।।

विष्णु जी वामन थे (अर्थात् यदि विष्णु के शयन योग्य भूमि ही देवों को प्राप्त होती, तो वह बहुत थोड़ी थी, क्योंकि विष्णु का रूप बौने का था) इसलिये देवों ने यह बात स्वीकार नहीं की और आपस में कहने लगे – असुरों ने यज्ञ के बराबर की भूमि हमें दी, सो ठीक है । यह कम नहीं बहुत ही है ।५।।

देव लोगों ने पूर्व दिशा में विष्णु को स्थापित कर छन्दों के द्वारा उन्हें चारों ओर से घेर लिया । पूर्व दिशा में गायत्री छन्द से, दक्षिण में त्रिष्टुप् से, पश्चिम में जगती से और उत्तर दिशा में पंक्ति छन्द से, चारों ओर से घेर दिया ।६।।

पूर्व दिशा में अग्नि की स्थापना की और उसकी पूजा–अर्चा करते हुये वे चारों ओर घूमने लगे और इस अर्चा के प्रभाव से उन्होंने समग्र पृथिवी को पुनः प्राप्त कर लिया ।"७।।

इस कथानक के द्वारा देवों के द्वारा असुरों से समस्त पृथिवी को जीतने का वृतान्त उपस्थित किया गया है । इस कार्य में यज्ञरूपी विष्णु का ही हाथ था । यहाँ स्पष्टतः विष्णु वामन के रूप में वर्णित किये गये हैं । ऋग्वेद के उरुगाय विष्णु के त्रिविक्रम को तथा शतपथ के इस वामन आख्यान को संयुक्त प्रस्तुत कर पुराणों में वामनावतार का पूर्ण प्रसंग प्रस्तुत किया गया है । अन्तर इतना ही है कि जहाँ शतपथ में असुरों से भूमि जीतने की कथा है, वहीं पुराणों में असुरों के राजा बलि से तीन पैरों में समस्त त्रिलोगी सहित बलि को भी जीत लेने की कथा वर्णित है । शतपथ का कथानक यज्ञ की महिमा का प्रतिपादक है और देवों ने असुरों की भूमि पर यज्ञ का विस्तार कर उसे आत्मसात कर लिया । पुराणों में तीन क्रमों में पृथिवी, स्वर्ग तथा बलि के शरीर को मापने के

अनन्तर समस्त पृथिवी को असुरो से छीन कर, देवों को समर्पित कर दी गयी है । दोनों आख्यान विष्णु के माहात्म्य–द्योतक हैं । पुराणों ने ऋकसंहिता तथा शतपथ ब्राह्मण दोनों पर आधारित कर स्वाभीष्ट कथन को प्रामाणिक बनाया है ।

पुराणों में, विशेषतः, भागवत पुराण के अष्टम स्कन्ध में वामन अवतार[१] का वर्णन राजा बलि के प्रसंग में किया गया है । स्वर्ग को जीतकर बलि स्वयं इन्द्र बन गया और देवों को पराजित कर उन्हें स्वर्ग से निकाल दिया । तब देवों की तीव्र प्रार्थना पर भगवान् अदिति के गर्भ से उत्पन्न हुये । इस कामना की पूर्ति के निमित्त अदिति ने – 'केशवत्तोषण' नामक(१) व्रत किया था । वामन रूप से उत्पन्न होकर भगवान् बलि की यज्ञशाला में पधारे और तीन पद भूमि मांगी । शुक्राचार्य के निषेध करने पर भी बलि ने वामन की इच्छा पूर्ण की । वामन ने दो ही डगों में पृथिवी तथा स्वर्ग दोनों को नाप लिया और तीसरा चरण बलि के आत्म–समर्पित मस्तक के ऊपर रखकर "त्रिविक्रम" नाम को चरितार्थ किया । भागवत पु० में निर्दिष्ट यह कथा प्रायः इसी रूप में अन्य पुराणों में भी आती है । एक विशिष्ट तथ्य यह है कि भागवत पुराण वामन के लिये वैदिक विशेषणों का बहुशः प्रयोग करता है – पृश्निगर्भ वेदगर्भ, त्रिनाभ, त्रिपृष्ठ, त्रिर्पिविष्ट, ब्रह्मण्य देव, धिष्ण – आदि नामों के साथ ही उरुगाय और उरुक्रम प्रयोग वेद का सर्वथा अनुकरण करता है ––

"अथोरुगाय भगवन्नुरुक्रम नमोऽस्तु ते ।[२]
नमो ब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणाय नमोनमः ।।
नमस्ते पृश्निगर्भाय वेदगर्भाय वेधसे ।
त्रिनाभाय त्रिपृष्टाय त्रिपिविष्टाय धिष्णवे ।"

---

(१) ऋ०सं० १/१५४/६

---

(१) शतपथ ब्रा० **"उभये प्राजापत्याः प्रस्पिधरे ...... वामन ह विष्णुरास तथापि देवाः न जिहीडिरे" १/२/५/७**

निष्कर्ष यह है कि वामनावतार का संकेत ही नही, वरन् विस्तृत उल्लेख वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है तथा अन्य अवतारों के समान इस अवतार को भी वेदानुकूल प्रशस्त करता है ।

इस प्रकार विष्णु के आद्य पञ्च अवतारों के वैदिक स्रोतों का यहां विस्तारेण परिशीलन किया गया है । इसके आगे के अवतारों में अन्तिम दो अवतारों के सन्दर्भ में यह सर्वजनीन है कि 'बुद्ध' को जन्म लिये हुये केवल २५०० वर्ष ही हुआ है तथा **'कल्कि'** का अवतार इसी युग में अभी भविष्य मे सम्भाव्य है । एतदर्थ, वैदिक श्रोतों की इनके सन्दर्भ में कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती है । शेष तीन अवतार ——

१. परशुराम
२. राम तथा
३. कृष्ण

इनके लिये वेद में पर्याप्त पोषक सामग्री उपलब्ध नहीं होती तथापि ये उपर्युक्त तीनों अवतार परशुराम, राम और कृष्ण पर जो भी पौराणिक साक्ष्य उपलब्ध हैं वे विचारणीय हैं ।

(१) भागवत पुराण ८/१६/१८ अध्याय
अग्नि पुराण ४/५

---

(१) भाग०पु० ८/१६
(२) भाग०पु० ८/१७/२५–२६

---

६. **परशुराम** -- यह अवतार राम तथा कृष्ण की भांति ही ऐतिहासिक माना जाता है । क्योंकि परशुराम ऐतिहासिक व्यक्ति हैं । इनके द्वारा सम्पादित कार्य अलौकिक भले ही हों वे कथमपि अति मानव नहीं हैं । "क्षतात् किल त्रायत इति उदग्रस्य क्षत्रस्य शब्दः भुबनेषु रुढ़ः"[1] इस व्युत्पत्ति के विरुद्ध जब क्षत्रिय शासक प्रजा का तथा विशेषतः आध्यात्म परायण ब्राह्मण वर्ग का पोषक होने के स्थान पर शोषक बन जाता है, तब इस अवतार का उदय होता है । दुर्दान्त तथा अभिमानी शासक का दमन तथा ब्राह्मण की रक्षा इस अवतार का उद्देश्य है ।

परशुराम के जीवन की प्रमुखतम् घटना कार्तवीर्य हैहय राजा का नाश तथा उसका रक्तपान और उद्धृत क्षत्रिय शासकों का २१ बार संहार करना है । इनका चरित महाभारत[2] तथा पुराणों[3] में बहुशः वर्णित है । परशुराम का अवतार – वामन तथा राम के मध्य में – षष्ठ माना जाता है । मत्स्य पुराण की गणना में भी यह अवतार षष्ठ ही स्वीकृत है । एक विशेष तथ्य यह है कि ——

एकोनविंश्यां त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकृद्विभुः ।[3]
जामदग्न्यंस्तथा षष्ठो विश्वामित्र पुरः सरः ।।

अर्थात् यह अवतार १९वें त्रेतायुग में हुआ था तथा विश्वामित्र विष्णु के यज्ञ के पुरोहित थे ।

भागवतानुसार यह सोलहवां तथा सत्रहवां अवतार विष्णु के २२ अवतारों के मध्य में माना गया है ।

महाभारत के पूर्व युग में इस अवतार के अस्तित्व का पता ही नहीं चलता । कात्यायन की 'सर्वानुक्रमणी' में जमदग्नि के पुत्र राम किन्हीं वैदिक मन्त्रों के द्रष्टा कहे गये हैं । सम्भव है कि ये ही जमदग्नि पुत्र राम पौराणिक परशुराम हों, परन्तु वैदिक ऋषि के ऊपर वीर योद्धा के शौर्यमण्डित क्रिया–कलापों का आरोप सम्भतः नैसर्गिक नहीं प्रतीत होता है ।

७. **रामावतार और तत्सम्बन्धी कथानक** -- वेदों में राम की और तत्सम्बधी

प्रख्यात कथा संकेत रूप में ही दृष्टिगोचर होती है । रामायण कथा के प्रसिद्ध कतिपय पात्र वैदिक साहित्य में अवश्य ही प्राप्त होते हैं, परन्तु इनका पारस्परिक सम्बन्ध कहीं भी निर्दिष्ट नहीं मिलता, जिसके कारण कथा का सूत्र विच्छिन्न ही रहता है । 'इक्ष्वाकु' शब्द ऋग्वेद[3] में एक बार तथा अथर्ववेद[4] में भी एक बार प्रयुक्त हुआ है । दशरथ का उल्लेख वैदिक साहित्य में एक बार ही हुआ है –

---

(१) रघुवंश द्वितीय सर्ग

(२) महाभारत – द्वितीय/४६, तृतीय/६८, ११६–११७ आदि

(३) मत्स्य पु० ४७ अ०, विष्णु पु० ४/४/७४, ४/६४

अवतारे षोडश मे पश्यन् ब्रह्मद्रुहो नृपान् ।
त्रिः सप्त कृत्वा कुपितो निः क्षत्रामकरोन्महीम् ।।

भागवत १/३/२०

क्षत्रं क्षयाय विधिनोपभृतं महात्मा ब्रह्मधुगुज्झित पथं नरकार्तिलिप्सु ।
उद्धन्त्य साववनिकण्टक मुग्रवीर्यस्त्रिः सप्तकृत्व उरुधार परश्वधेन ।।

भा०पु० २/७/२२

दुष्टं क्षत्रं भुवो भारमब्रह्मण्यमनी नशत् ।
रजस्तमो वृतमहन् फल्गुन्यपि कृर्तेऽहसि ।।१५।।
किं तदंहो भगवतो राजन्यैरजितात्मभिः ।
कृतं येन कुलं नष्टं क्षत्रियाणामभीक्ष्णशः ।।१६।।

भाग०पु० ६/१५–१६

(३) मत्स्य पुराण – ४७/२४१

---

(१) भागवत पुराण १/३/२०, २/७/२२

(२) सर्वानुक्रमणी १०/११०

(३) ऋ० १०/६०/४

(४) अथर्ववेद· १६/३६/६

ऋग्वेद की एक दानस्तुति में, जहाँ अन्य राजाओं के साथ दशरथ की भी प्रशंसा की गयी है --

चत्वारिंशद् दशरथस्य शौणाः ।[१]
सहस्रस्यायै भौणि नमन्ति ।।

अर्थात् दशरथ के चालीस भूरे रंग के घोडे एक हजार घोड़ों के दल का नेतृत्व करते हैं । राम नामधारी अनेक जनों का उल्लेख वैदिक साहित्य में उपलब्ध होता है --

(१) एक राजा के रूप में ।[२]
(२) ब्राह्मण कुलीन 'राम' नामधारी अनेक जनों का उल्लेख मिलता है ।

राममागधेय -- ये श्यापर्ण कुल के तथा जनमेजय के समकालीन थे ।[३]
राम औषतस्विनी -- याज्ञवल्क्य के समकालीन दार्शनिक आचार्य ।[४]
रामक्रातुजातेय -- एक वैदिक आचार्य ।

इस प्रकार इन नामों का अस्तित्व यही प्रमाणित करता है कि राम ऐसा अभिधान वैदिक काल में राजाओं तथा ब्राह्मणों में उपलब्ध था, इससे इतर कोई भी वृतान्त उद्घाटित नहीं होता ।

इसी प्रकार जनक वैदेह का प्रचुर उल्लेख तैत्तिरीय ब्रा० और शतपथ ब्रा० में प्राप्त होता है । सीता[१] सावित्री की कथा तै०ब्रा० में वर्णित है । कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में सीता का उल्लेख मिलता है ।[२]

(१) ऋ० १/१२६/४
(२) ऋ० १०/६३/१४
(३) ऐ०ब्रा० ७/२७/३४
(४) श०प०ब्रा० ४/६/१/७

इस प्रकार रामायणीय कथा के प्रधान पात्रो के नाम तो वैदिक साहित्य में अवश्य ही प्राप्त हो जाते हैं, परन्तु इनका आपस में किसी सम्बन्ध का परिचय नहीं मिलता । इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न दशरथ के पुत्र राम थे, इस घटना का परिचय इक्ष्वाकु, दशरथ तथा राम नामों के मिलने पर भी नही होता । सीता तथा जनक के उल्लिखित होने पर भी सीता जनक की पुत्री थीं, यह तथ्य अपरोक्ष ही है तथा राम और सीता का सम्बन्ध वैदिक साहित्य में स्पष्ट रूपेण प्रकट नहीं है ।

इसका निष्कर्ष यही हो सकता है कि वैदिक काल में रामायण की रचना हुई थी अथवा राम सम्बन्धी गाथायें प्रसिद्ध हो चुकी थीं, इसकी असंदिग्ध सूचना वैदिक साहित्य के आधार पर प्रमाणित नहीं की जा सकती ।

पात्रों के नाम मिलने मात्र से ही परस्पर के सम्बन्धों का निर्धारण नहीं किया जा सकता है ।

पौराणिक साक्ष्य इसके विपरीत स्थिति का निर्धारण करता है । विष्णुपुराण का कथन है कि दशरथ जी के भगवान् कमलनाभ जगत की स्थिति के लिये अपने, अंशों से 'राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न' इन चार रूपों में पुत्र भाव को प्राप्त हुये ––

खटवांगादीर्घ बाहुः पुत्रोऽभवत् । ८३ ।।
ततो रघुरभवत् । ८४ ।। तस्मादप्यजः । ८५ ।। अजाद्दशरथः । ८६ ।।

तस्यापि भगवानब्जनाभो जगतः स्थित्यर्थमात्मांशेन रामलक्ष्मण भरत शत्रुघ्नरूपेण चतुर्ध्दा पुत्रत्वमा यासीत् ।। ८७ ।।[1]

---

(१) तै०ब्रा० २/३/१०,

(२) ऋ० ४/७, अथर्ववेद ३/१७,

राम जी ने बाल्यावस्था में ही विश्वामित्र जी की यज्ञ रक्षा के लिये जाते हुए मार्ग मे ही 'ताड़का' राक्षसी को मारा, फिर यज्ञशाला में पहुँचकर मारीच को वाणरूपी वायु से आहत कर समुद्र में फेंक दिया और सुबाहु आदि राक्षसो को नष्ट कर डाला । उन्होंने अपने दर्शन मात्र से अहिल्या को निष्पाप किया । जनक के राजभवन में बिना श्रम ही शिव जी का धनुष तोड़ा और पुरुषार्थ से प्राप्त होने वाली अयोनिजा जनक नन्दिनी श्री सीता जी को पत्नी रूप से प्राप्त किया । तदनन्तर सम्पूर्ण क्षत्रियों को नष्ट करने वाले, समस्त हैहय कुल के अग्नि स्वरूप परशुराम जी के बल—वीर्य का गर्व नष्ट किया ।

तदनन्तर पिता के वचन से राज्यलक्ष्मी को कुछ भी न गिनकर भ्राता लक्ष्मण और धर्मपत्नी सीता के सहित वन में चले गये ——

पितृ वचनाच्चागणितराज्याभिलाषो भ्रातृभार्यासमेतो वनं प्रविवेश ।।६५।।[१]

वहाँ विराध, खर—दूषण आदि राक्षस तथा कबन्ध और बालि का वध करके, समुद्र पर सेतु बाँधकर, सम्पूर्ण राक्षस कुल का संहार किया तथा दशानन द्वारा अपहृत और उसके वध से कलंकहीना होने पर अग्नि—प्रवेश से शुद्ध हुई समस्त देवगणों से प्रशंसित स्वभाव वाली अपनी भार्या जनकराज कन्या सीता को अयोध्या में ले आये ।

दशरथ—नन्दन श्री रामचन्द्र जी प्रसन्नवदन लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, विभीषण, सुग्रीव, अंगद, जाम्बवान् और हनुमान आदि से छत्र—चामरादि द्वारा सेवित हो ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर और ईशान आदि सम्पूर्ण देवगण, वशिष्ठ, वामदेव, बाल्मीकि, मार्कण्डेय, विश्वामित्र, भरद्वाज और अगस्त्य प्रभृति मुनिजन तथा ऋक, यजुष, साम और

---

(१) विष्णु पु० ४/४/६५

अथर्ववेदों से स्तुति किये जाते हुए तथा नृत्य, गीत, वाद्यादि सम्पूर्ण मंगल सामग्रियों सहित वीणा, वेणु, मृदंग, भेरी, पटह, शख, काहल और गोमुख आदि वाद्य–घोष के साथ समस्त राजाओं के मध्य में सम्पूर्ण लोकों की रक्षा के लिए विधि पूर्वक अभिषिक्त होकर ग्यारह हजार वर्ष पर्यन्त शासन किया । तदनन्तर अयोध्या वासियों सहित स्वर्गलोक सिधारे ––

''अशेषस्य जगतो निष्पादितस्थितयो रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नाः पुनरपि दिवमारूढ़ा ।।''(१)

श्रीमद्भागवत पुराण के नवम् स्कन्ध में भी यही कथानक कुछ विस्तार से वर्णित है––

तस्यापि भगवानेष साक्षाद् ब्रह्ममयो हरिः ।
अंशाशेन चतुर्थागात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः ।।
रामलक्षमणभरतशत्रुघ्नाः इति संज्ञया ।।
तस्यानुचरितं राजन्नृषिभिस्तत्वदर्शिभिः ।
श्रुतं हि वर्णितं भूरि त्वया सीतापर्तेर्मुहः ।।(२)

१०वें एवं ११वें अध्याय में शुद्ध रूप से राम सम्बन्धी कथानक ही वर्णित है ।

इन दोनों ही अध्यायों में जन्म से लेकर अन्त तक का चरित उद्घाटित हुआ है । लगभग इसी प्रकार का वर्णन अन्य पुराणों में भी प्राप्त होता है । कहीं–पर विस्तरेण तो कहीं पर संक्षेपेण वर्णन है ।

राम का अर्थ होता है ––

'रमन्ते योगिनो यस्मिन् स रामेति ।'

'रमु क्रीड़ायां धातोः घञ् प्रत्यये कृते राम इति भवति ।'

---

(१) वि०पु० ४/४/७३

(२) श्री मद्भागवत पु० ६/१०/२–३ / रामचरित और रामोपाख्यान ६/११ अध्याय दृष्टव्य ।

अर्थात् रमु क्रीड़ार्थक धातु में घञ् प्रत्यय के संयोग से राम शब्द सिद्ध होता है । राम भगवान् विष्णु के सातवें अवतार है जो धराधाम पर अवतीर्ण होकर पृथ्वी के समस्त राक्षस कुलों का संहार किया और गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में ––

विप्र धेनु सुर सन्त हित, लीन्ह मनुज अवतार
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गोपार ।।(१)

यही अवतार का कारण था । विप्र, गाय, देवगण, सन्तजन, भक्तों के कष्ट–निवारणार्थ प्रभु को निष्जेच्छा से मानव रूप धारण करना पड़ता है । यही प्रभु की प्रतिज्ञा भी है जिसके निर्वहन हेतु उन्हें आना पड़ता है । राम का मन्त्र तारक मन्त्र कहलाता है । काशी में भगवान शंकर मुमुक्षुओं को 'रां' रामाय नमः मन्त्रोपदेश देकर मुक्त करते हैं ।

८. **कृष्णावतार और तत्सम्बन्धी कथानक** -- अवतारों में श्री कृष्णावतार नवम् अनेकत्र उल्लिखित है, परन्तु कहीं–कही श्रीकृष्ण के संग में बलराम भी अवतार स्वीकार किये गये हैं । श्रीमद्भागवत पुराण की प्रथम सूची[१] में राम (बलराम) तथा कृष्ण दोनों ही अवतार माने गये हैं । परन्तु जब श्रीकृष्ण साक्षात् परमात्मा के रूप में गृहीत कर लिये गये, तब नवम् अवतार बलराम के रूप में परिग्रहीत हुआ । इसीलिए अनेक पुराणों में बलराम का भी वर्णन मिलता है । उदाहरणार्थ अग्नि पुराण में बलभद्र अनन्त[२] की मूर्ति माने गये हैं । जिनकी मूर्ति चतुर्भुजी बनाये जाने का उल्लेख हैं । बायें भाग के ऊपर हाथ में – 'लांगल' (हल) तथा निचले हाथ में शंख रखने का विधान है । दाहिने हाथ के ऊपरी हाथ में मुसल तथा निचले हाथ में चक्र रखने का नियम है ।

अग्नि पुराण में ही दाशरथी राम का[३] तथा बुद्ध[४] का वर्णन प्राप्त होता है, जिससे दोनों के मध्य वाला अवतार श्रीकृष्ण के स्थान पर नवम् अवतार माना गया है । श्रीकृष्ण का संकेत वैदिक साहित्य में प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है । छान्दोग्य उप०[५] ने 'घोर आंगिरस' के शिष्य जिस 'देवकीपुत्र कृष्ण' की चर्चा की है वे पुराणों में वर्णित देवकी तथा वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण से इतर नहीं प्रतीत होते । वसुदेव शब्द का उल्लेख न होने पर 'देवकी पुत्र' विशेषण

ही दोनों के ऐक्यसाधन के लिये प्रमाण हैं ।

श्रीकृष्ण अवतार का विवरण

यह परमेश्वर परमात्मा स्व स्वरूप से अविज्ञेय है । स्वरूप लक्षण द्वारा हम उसे पहचान नहीं सकते । यह सभी में निलीन–निगूढ़ हैं । किन्तु जगत जो कि प्रत्यक्ष है, वह भी उनसे पृथक नहीं । वही जगत हैं और वही जगत के नियन्ता हैं । अतएव जगत में जो–जो उनके रूप जगत का नियमन करते हुए दिखलायी पड़ते हैं, उनके द्वारा ही हम परमात्मा को पहचान सकते हैं । उनके द्वारा ही हम उपासना कर सकते हैं, वे ही परमेश्वर के 'अवतार' हैं । दूसरे शब्दों में क्षर पुरुष (जीव) में अव्यय पुरुष की जो कलायें परिचित होती हैं, वे ही अवतार हैं । उनके द्वारा ही अव्यय पुरुष उपास्य का ध्येय होता है । इसी कारण अवतार का वाचक श्री मद्भागवतादि में 'आविर्भाव' शब्द भी आया है और जगद्व्यापी विराट–रूप को ही भागवत में प्रथम अवतार कहा गया है[१] ––

---

(१) श्री रामचरित मानस
सूर्य में १२ कलायें होती हैं । राम सूर्यवंश के हैं उनमें १२ कलायें स्वीकार की गयी हैं ।

---

(१) भागवत पु० ३/२३
(२) अग्नि पु० १५/५
(३) अग्नि पु० ४६/६–७
(४) अग्नि पु० ४६/८वां श्लोक

---

(१) छान्दो० उप० ३/१७/६

'एतन्नानावताराणं निधानं बीजमव्ययम् ।' (१)

जगत में परमात्मा जो आविर्भूत होता है सो मानो, अपने स्व–स्वरूप स्वधाम से जगत मे उतरता है । अव्यय पुरुष ही क्षरपुरुष रूप में उतरकर आया है, इसीलिए उसे 'अवतार' कहते हैं । परमात्मा का रूप 'सत्य' है । वह तीनों कालों मे, सभी देशों में, सभी दशाओ में अवाधित रहता है । कारण को ही सत्य कहते हैं । वह सभी का कारण है, इसलिए परम सत्य है । वह सत्य जगत में 'नियति' रूप से प्रकट है । प्रत्येक पदार्थ के भीतर एक नियम काम कर रहा है । जल सदा नीचे की ओर ही आता है, अग्नि की ज्वाला सदा–सर्वदा ऊर्ध्व ही गमन करती है, वायु तिर्यग्गमन करती है, सूर्य नियत समय पर ही उदय होता है । हरिण के दोनों सींग समान नाप में बढ़ते हुए, समान रूप से मुड़ते है । वसन्त ऋतु में आम के वृक्षों में मञ्जरी निकलने लगती है । इस प्रकार सब जगत को अपने–अपने धर्म मे नियत रूप से स्थिर रखने वाली शक्ति, जिसमें चेतना भी अनुस्पूत है, अन्तर्यामी 'नियति' या 'सत्य' शब्द से कही जाती है । कहा जा सकता है कि उस परम सत्य का नियम रूप से, इस जगत मे अवतार है । इसी प्रकार सत्‌चित् और आनन्द परमात्मा के ये रूप शास्त्रों में वर्णित हैं, उनका जगत में प्रतिष्ठा, ज्योति और यज्ञ के रूप में अवतार होता है । सत्ता और विभूति ये दोनों ही प्रतिष्ठा के रूप हैं । प्रत्येक पदार्थ अपना अस्तित्व रखता है और अपने कार्य को अपने आधार पर धारण करता है । ये सत्ता के विश्वचर रूप हुए । चित् (ज्ञान) का विश्वचर रूप ज्योति है । इसके तीन भेद हैं ––

१. नाम

२. रूप

३. कर्म

---

(१) श्रीमद्‌भागवत पुराण १० अवतार प्रकरण द्रष्टव्य ।

इन्हीं से समस्त पदार्थों का प्रकाश (ज्ञान) होता है । ये समस्त पदार्थों के भेदक है । आनन्द का विश्वचर रूप यज्ञ है । आनन्द का अन्न ग्रहण करना ही यह सज्ञाभाक् है । इसलिए 'अन्न' नाम से भी इस रूप का व्यवहार करते हैं । अन्न-ग्रहण से वस्तु का विकास होता है, और विकास ही आनन्द का रूप है । इन तीनों विश्वचर रूपों को भी --

"प्रतिष्ठा वै सत्यम्", "नामरूपे सत्यम्"[1]

इत्यादि श्रुतियों में 'सत्य' शब्द से कहा गया है ।

यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमय तपः ।[2]
तस्मादेतद् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते ।।

इस श्रुति में सर्वज्ञ पर पुरुष अव्यय से इन्हीं तीन विश्वचर रूपों की उत्पत्ति कही गयी है । विश्वातीत रूपो का विश्वचर रूप से अवतार ही उत्पत्ति है । श्रुति में ब्रह्म नाम प्रतिष्ठा का और अन्न नाम यज्ञ का है । इन तीनों सत्यों का भी सत्य परमात्मा है । इसलिए यह --

'सत्यस्य सत्यम्'

कहा जाता है । श्रीमद्भागवत में भगवान् श्रीकृष्ण की गर्भ-स्तुति आरम्भ करते हुए देवताओं ने कहा है --

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यामृतसत्यनेत्रं;
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ।। (१)

अर्थात् जिनके व्रत-कर्म का संकल्प सत्य है (देवताओं के - अग्नि, वायु, सूर्य प्रभृति के कर्म व्यभिचारी नहीं होते, इस विशेषण से भगवान् की सर्वदेवरूपता प्रमाणित की गयी है), जो तीनों काल में सत्य अबाधित है --

(१) वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति पृ० २३०
(२) वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति पृ० २३०

या तीनो रूप से जो सत्य है (अन्तर्यामी, वेद और सूत्रात्मा – ये तीन भगवान् के सत्य रूप हैं), जो सत्य के (पूर्वोक्त प्रतिष्ठा, नामरूप और यज्ञ के कारण हैं, जो उक्त तीनों सत्यों में निहित निगूढ़ रूप से प्रविष्ट हैं, या जो अव्यय पुरुष रूप भगवान् परम सत्य–शुद्ध रस–रूप बह्म में निहित आत्म–रूप से स्थित है, जो सत्य के भी सत्य हैं अर्थात् कारणो के भी कारण हैं (कार्य की भी अपेक्षा कारण को सत्य कहा जाता है) अथवा प्रजापति का नाम सत्य है, उसमें भी जो सत्य है, अर्थात् कारणों के भी कारण हैं (कार्य की भी अपेक्षा कारण को सत्य कहा जाता है) अथवा प्रजापति का नाम सत्य है, उसमें भी जो सत्य है, अर्थात् प्रजापति की सत्यता भी जिनपर अवलम्बित है, जिसका केन्द्र न हो, उन्हें ऋत कहते है – जैसे – वायु, जल आदि । जो केन्द्रबद्ध हों, वे सत्य कहलाते हैं, जैसे – तेज–पृथ्वी आदि । इन दोनों प्रकार के नेताओं (रुई चलाने की रस्सियाँ) में से – जिन्होंने समस्त प्रपंच को पकड रखा है – इन दोनों भावों की अभिव्यक्ति परमेष्ठिमण्डल में होती है, इससे भगवान् का परमेष्ठिरूप बतलाया गया) और स्वयं भी जो सत्यस्व–रूप हैं । हम उन्हीं भगवान् की शरण में हैं । इस श्लोक में भगवान् के सत्यरूपों का संक्षिप्त विवरण है ।

उक्त – नियति–प्रतिष्ठा–नामरूप आदि रूपों से परमात्मा का प्रथम अवतार स्वयंभू में होता है । वही विश्व का प्रथमोत्पन्न रूप है । अतः, सत्य का प्रथम आविर्भाव यही है । आगे परमेष्ठी में, सूर्य में, चन्द्रमा में और पृथ्वी में क्रमिक अवतार है । पृथ्वी द्वारा पृथ्वी के समस्त प्राणियों में भी परमात्मा के विश्वचर रूपों का आंशिक अवतार होता है । अतः, स्वयंभू भगवान् का प्रथमावतार और आगे के परमेष्ठी आदि भी अवतार कहे जाते हैं । इसमें पूर्व–पूर्व का 'प्राण' उत्तरोत्तर में अनुस्पूत होता है । इससे पूर्व–पूर्व के धर्म न्यूनाधिक मात्रा में उत्तरोत्तर में संक्रान्त हैं । स्वयंभू के प्राण और उसके धर्म परमेष्ठी में, दोनों के सूर्य में, तीनों के चन्द्रमा में, चारों के पृथ्वी में और पाँचों के प्राणियों में संक्रान्त होते हैं । कौन–कौन मण्डल किस–किस 'प्राण' का अन्यत्र सक्रमण करता है, यह भी श्रुतियों से प्रमाणित हो जाता है । स्वयंभूमण्डल से भृगु, चित् और सूत्र (ऋत, सत्य), परमेष्ठी मण्डल से भृगु, अंगिरा और अत्रि,

सूर्य से ज्योति, गौ और वायु, चन्द्रमा से यश; रेत और पृथिवी से वाक्, गौ एव द्यौ – ये प्राण निकलते रहते हैं और अन्यत्र संक्रान्त होते रहते है । संक्षेपेण, इतना कहा जा सकता है कि प्राणिमात्र मे विशेषतः मनुष्यों में जो शक्तियॉ दृष्टिगोचर होती हैं, वे इन्हीं भगवान् के अवतारों से ही प्राप्त हैं । भिन्न–भिन्न शक्ति के अधिष्ठान भिन्न–भिन्न आत्माओ का विकास भी प्राणियों में इन मण्डलों से प्राप्त प्राणों द्वारा ही होता है । जैसे – खनिज आदि में केवल वैश्वानर आत्मा, सूर्यादि में वैश्वानर और तैजस; इतर प्राणियों में वैश्वानर, तैजस, प्रज्ञान ये तीनों भूतात्मा और मनुष्यों में भूतात्मा, विज्ञानात्मा, महानात्मा, सूत्रात्मा आदि विकसित होते हैं । जिसमें जिस मण्डल के प्राण की अधिकता हो, उसमें उसी के अनुसार विशेष शक्ति प्राप्त होती है और उसे उसका ही अवतार कहा जाता है । इस प्रकार, सभी प्राणी एक प्रकार के भगवान् के विभूति–अवतार कहे जा सकते हैं । किन्तु, जिसमें शक्तियों का जितना अधिक विकास होता है, वह उतने ही रूप में औरों का विभूति–रूप से उपास्य हो जाता है ।

जिनमें जीव–कोटि से अधिक शक्तियो का विकास हो, बुद्धि के चारों ऐश्वर्य रूप का उनमें से एक, दो या तीन मनुष्य–कोटि से अधिक मात्रा में जहाँ प्रकट हुए हों, जीव–साधारण आवरण से हटकर अव्ययात्मा की कलायें जिनमें आविर्भूव दीख पड़े, उन्हें विशेष रूप से अवतार माना जाता है और जहाँ पूर्ण से सब शक्तियों का विकास हो, पूर्ण रूप से अव्ययात्मा की समस्त कलायें प्रकट हों, वे पूर्णावतार या साक्षात् परमेश्वर परब्रह्म से उपास्य होते हैं ।

---

(१) भागवत पु० दशम् स्कन्ध पूर्वार्द्ध – १०/२/२६

श्रीकृष्णावतार

ईश्वर और अवतार का यह रहस्य दृष्टि में रखकर जब भगवान् श्री कृष्ण के चरित पर दृष्टिपात करते हैं तब प्रकटतया स्पष्ट हो जाता है कि वे 'पूर्णावतार' हैं । कृष्णस्तु भगवान् स्वयं – श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् –परब्रह्म परमेश्वर हैं – प्रथम बुद्धि के चारों ऐश्वर्य रूपों – धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य और वैराग्य – को लें तो इनकी पूर्णता श्रीकृष्ण में प्रतीत होगी । धर्म की स्थापना के लिये ही भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार है ––

यदा–यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युथानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे–युगे ।।[1]

उनका प्रत्येक कार्य धर्म की कसौटी है, उनके सब चरित्र शुद्ध, सात्विक हैं, रज और तम का वहाँ स्पर्श भी नहीं है । अमानिता, अदम्भादि बुद्धि के ६ ाार्मिक गुणों को पूर्ण मात्रा में संयुक्त कर देते हैं । युधिष्ठर महाराज के यज्ञ में आगन्तुकों के चरण–प्रक्षालन का काम उन्होंने स्वीकार किया था । महाभारत में अर्जुन के सारथी बने थे । इन बातों से बढ़कर निराभिमानता क्या हो सकती है ? भगवान् श्री रामचन्द्र इसीलिए धार्मिक शिरोमणि मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाते हैं कि पिता की आज्ञा से उन्होंने राज्य त्याग दिया था । विचारणीय है कि वहाँ साक्षात् पिता की साक्षात् आज्ञा थी, किन्तु कंस के मारने पर भगवान् श्रीकृष्ण के मथुरा का राज्य ग्रहण करने का सब बान्धवों ने जब अनुरोध किया, तब उन्होंने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि हमारे पूर्व–पुरुष यदु का महाराज ययाति ने वंश–परम्परा तक के लिये राज्याधिकार छीन लिया है, इस लिये हम राजा नहीं हो सकते, यों उन्होंने बहुत पुराने पूर्व–पुरुष की परोक्ष आज्ञा का सम्मान कर राज्य छोड़ा । इससे उनका धार्मिक आदर्श कितना ऊँचा सिद्ध होता है । धर्म के प्रधान अंग सत्य में वे इतने सुदृढ़ थे कि शिशुपाल की माता को शिशुपाल के सौ (शत्) अपराध सहन करने का वचन दे दिया था । युधिष्ठर की

यज्ञ–सभा में शिशुपाल के कटुभाषण पर सदस्यों को क्रोध आ गया । किन्तु, वे सौ (शत्) की पूर्ति तक शान्त रहे, सौ की संख्या पूर्ण होने पर ही उसका सहार किया । इसके अतिरिक्त धर्म के नाम पर जो लोग विपरीत मार्ग में फंसते हैं, दो धर्मों का परस्पर विरोध दिखलायी पड़ने पर उस ग्रन्थि को सुलझाने में बड़े–बडे विद्वानों की भी बुद्धि चक्कर मे पड़ जाती है और भ्रान्तिवश अधर्म को धर्म मान लेती है, उन ग्रन्थियों को अपने आचरण और उपदेश दोनों से भगवान् श्रीकृष्ण ने भली–भाँति सुलझाया है । धर्म के समस्त अंगों को पूर्ण रूपेण निभाया है । धर्म का स्वरूप सदा देश कालपात्र – सापेक्ष होता है । एक समय एक के लिये जो धर्म है, भिन्न अवसर में या भिन्न अधिकारों के लिये वही अधर्म हो जाता है । इस अधिकार–भेद – "श्रेयान् स्वधर्मः"[१] के वे पूर्ण ज्ञाता थे । धर्म का बलाबल वे अच्छी तरह देखते थे । दुष्टों का किसी भी प्रकार दमन वे धर्मानुमोदित मानते थे । कर्णार्जुन–युद्ध में रथ का पहिया पृथिवी में धंस जाने पर धर्म की दुहाई देकर अर्जुन से शस्त्र चलाना बन्द करने का अनुरोध करते हुए कर्ण को यही कहकर फटकारा था कि "जिसने अपने जीवन के आचरणों में धर्म का कभी आदर नहीं किया, उसे दूसरे से अपने लिये धर्माचरण की आशा करने का क्या अधिकार है ?"[२] कालयवन जब अनुचित रूप से अकारण मथुरा पर चढ़ाई करने आया, तो उसे धोखा देने में उन्होंने कुछ भी अनौचित्य नहीं माना । अधार्मिकों के साथ भी यदि पूर्ण धर्म का पालन किया जाय, तो अधार्मिकों का हौसला और बढ़ जाता है और धर्म की ही हानि होती है । इसलिए समाज व्यवस्थापक को इसका पूर्ण ध्यान रखना चाहिए । रथचक्र लेकर भीष्म के समक्ष दौड़ते हुए, उन्होंने जब भीष्म पर आक्षेप किया कि तुमने धार्मिक होकर भी अधर्मी दुर्योधन का साथ क्यों दिया, तब भीष्म के – "राजा परं दैवतम्"[३] अर्थात् राजा बड़ा देवता है, उसकी आज्ञा माननी ही चाहिए, उत्तर देने पर उन्होंने स्पष्ट कहा था कि दुष्ट राजा कभी माननीय नहीं होता तभी तो देखो, मैंने कंस का नियन्त्रण किया ।"(१)

---

(१) भागवत गीता –– ४/७–८वाँ श्लोक

सामाजिक नेता के धर्मों को उन्होंने भली–भाँति शिक्षा प्रदान की है और धर्म के साथ नीति का क्या स्थान है ? कहाँ–कहाँ नीति को प्रधानता देनी चाहिए और कहाँ–कहाँ धर्म को प्रधानता देनी चाहिए । इन बातों को अच्छी तरह स्पष्ट किया है । नीति का उपयोग जहाँ धर्म रक्षा में होता हो, वहाँ वे नीति को प्रधानता देते हैं । इस व्यवस्था को विस्मरण करने मात्र से ही भारतवर्ष विदेशियों से पदाक्रान्त हुआ है, परिणामतः इसे धर्म की दुर्दशा झेलनी पड़ी है । अस्तु, कर्णपर्व में – महाराज युधिष्ठर के गाण्डीव धनुष की निन्दा करने पर सत्य–प्रतिज्ञा निर्वाह के उद्देश्य से युधिष्ठर पर शस्त्र चलाने के लिये उद्यत अर्जुन को ऐसे अवसर में सत्य–पालन का अनौचित्य समझाते हुए उन्होंने रोका था और बड़ों की निन्दा ही उनका हनन है, इस अनुकल्प से उनकी रक्षा कराई थी ।[२]

सौप्तिक पर्व[३] में अश्वत्थामा ने जब सोते हुए द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को मार दिया और अर्जुन ने उसके वध की प्रतिज्ञा से विलखती द्रौपदी को सान्त्वना देकर, युद्ध में जीतकर उसे पकड़ लिया – तब युधिष्ठर और द्रौपदी कह रहे थे कि ब्रह्म–हत्या मत करो, इसे छोड़ दो ।

भीमसेन कह रहे थे कि ऐसे दुष्ट को अवश्य मार दो । अर्जुन की भी प्रतिज्ञा मारने के पक्ष में थी । उस समय भी उन्होंने ––

---

(१) भगवत गीता ३/३५
(२) वैदिक वि० और भार० संस्कृति पृ० २३३ द्रष्टव्य
(३) वैदिक वि० और भार० संस्कृति पृ० २३३ द्रष्टव्य

---

(१) वैदिक वि० और भार० संस्कृति पृ० २३३
(२) महाभारत, कर्णपर्व
(३) म०भा०, सौप्तिक पर्व

"धनहरण मारने के ही सदृश होता है, इसके मस्तक की मणि निकाल लो ।"[1]

यह अनुकल्प बताकर अर्जुन से दोनों गुरुजनों की आज्ञा का पालन कराया था और उसे ब्रह्म–हत्या से बचाकर अनुकल्प रूप से सत्यरक्षा कराई थी । ऐसे प्रसंग धर्म–ग्रन्थि सुलझाने के आदर्श उदाहरण हैं ।

भगवद्गीता के प्रारम्भ में अर्जुन के विचार स्थूल दृष्टि से बिल्कुल धर्मानुकूल, प्रत्युत एक आदर्श धार्मिक के विचार प्रतीत होते हैं, किन्तु उन्होंने स्वधर्म विरुद्ध कहकर ––

"प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।"[2]

के द्वारा उन विचारों को बिल्कुल अनुचित ठहराया और उसे युद्ध में प्रवृत्त किया, जो गीता का स्वाध्याय करने पर बिल्कुल समीचीन प्रतीत होता है । बाल्यकाल में ही गोपों द्वारा इन्द्र की पूजा हटाकार उन्होंने जो गोवर्धन–पूजा प्रारम्भ की[3] उसमें भी वही अधिकार–भेद का रहस्य काम कर रहा है । उनका यही अभिप्राय है कि ईश्वर जब सर्वव्यापक है, तो गोवर्धन जो हमारे समीप है और जिससे हमारा सर्व प्रकारेण पालन होता है, उसे ही ईश्वर की मूर्ति मानकर क्यों न पूजा जाय ? क्या वह ईश्वर की विभूति नहीं है ? 'इन्द्र की पूजा करने से इन्द्र वर्षा करेगा', इस काम्यधर्म के सदैव विरोधी रहे हैं । इसे उन्होंने स्थान–स्थान पर 'दुकानदारी' बताया है और धर्म–सीमा से बहिर्भूत माना है । अपना कर्तव्य समझ धर्म का अनुष्ठान करना, यही श्रीकृष्ण भगवान् की शिक्षा है ––

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते ।
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ।।

---

(१) वै० वि० भा० सं० पृ० २३३

(२) गीता २/१२

(३) भागवत पुराण १०/२३–२७वाँ अध्याय पर्यन्त

अस्ति चेदीश्वरः कश्चित् फलरूपम्यकर्मणाम् ।
कर्तारं भजते सोऽपि न हयकर्तुः प्रभुर्हि सः ।।[२]

अस्तु, सर्वांगपूर्ण बलाबल–विवेचना–सहित, आदर्श धर्म का उनकी कृति और उपदेशों में पूर्ण निर्वाह है । इसीलिए, उस काल के धार्मिक नेता भगवान् व्यास जी बालब्रह्मचारी भीष्म या धर्मावतार युधिष्ठर आदि उनको साक्षात् ईश्वर मानते थे और धर्मग्रन्थि सुलझाने में उनको ही प्रमाण मानते थे । महाराज परीक्षित का जब मृत बालक–दशा में जन्म हुआ, तब उनको जिलाते समय भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी धर्म परायणता का ही आधार रखा है ––

ऐसा महाभारत में भी आख्यान है । वहाँ उनकी उक्ति यही है कि – "यदि मैंने आजन्म कभी धर्म या सत्य का अतिक्रमण न किया हो, तो यह बालक जी उठे ।" इससे अपनी धर्मपरायणता का आदर्श और धर्म की अलौकिक शक्ति भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं प्रकट की है ।

दूसरा बुद्धि का रूप 'ज्ञान' भी भगवान् श्रीकृष्ण में सर्वांगपूर्ण था । चाहे व्यावहारिक ज्ञान हो चाहे राजनैतिक, धार्मिक हो अथवा दार्शनिक ज्ञान हो, सबकी उनमें पूर्णता थी । वे सर्व–ज्ञाननिधि थे, इसके लिये उनका एक भगवद्‌गीता[१] का उपदेश ही पर्याप्त प्रमाण है, जिसके ज्ञान की थाह आज पाँच हजार वर्ष तक भी मिल न सकी । नित्य नये–नये विचार और नये–नये विज्ञान ७०० श्लोकों के छोटे से ग्रन्थ से प्रस्फुटित हो रहे हैं और भी, श्रीमद्‌भागवत के एकादश स्कन्ध आदि में कई एक उपदेश हैं, जो ज्ञान में उनकी पूर्णता के प्रबल प्रमाण हैं । इनके अतिरिक्त व्यवहार में भी उनका पूर्ण ज्ञान विकसित है ।

---

(१) पर्जन्यो भगवमिन्द्रो मेघास्तस्यात्मर्मूर्तयः ।
तेऽभिवर्षन्ति भूतानां प्रीणनं पयः ।। भाग० पु० पूर्वार्द्ध १०/२४/८

(२) भाग० पु० १०/२४/१३–१४ पूर्वार्द्ध

व्यावहारिक ज्ञान कार्य–कारण–भावज्ञान का नाम है, किस उपाय से कौन–सा कार्य सिद्ध हो सकता है, इसका समीचीन ज्ञान ही व्यावहारिक ज्ञान होता है, जिसका लक्षण है –– सफलता । जितना व्यावहारिक जिसमें होगा, उतनी ही सफलता उसे मिलेगी । जीव–कोटि मे बड़े–बड़े विद्वान और महान नेता भी प्रमुख अवसरों पर धोखा खा जाते हैं और सफलता से हाथ धो बैठते हैं । धर्मग्रन्थों में अनेकशः प्रमाण इस प्रकरण पर दृष्टिगोचर होते हैं श्रीकृष्ण का व्यावहारिक मार्ग बाल्यकाल से ही कितना कष्टकाकीर्ण था, यह उनके चरित के स्वाध्याय करने वालों से छुपा नहीं है । चतुर्दिक आसुर भावपूर्ण राजाओं का आतंक था, जिनका दमन करना था । किन्तु, इस दशा में भी उन्हें वहाँ असफलता नहीं मिली । इतना ही नहीं, किसी दशा में चिन्तित होकर सोचना भी नहीं पड़ा, सर्वत्र सफलता बद्धहस्त खड़ी रही । यह विज्ञान की पूर्णता का प्रत्यक्ष प्रमाण है इससे भगवान् श्रीकृष्ण का पूर्ण ईश्वरत्व ही प्रकट होता है । भारत का सम्राट जरासन्ध और उनका मित्र कालयवन अपने अतुल सैन्य–सागर से मथुरा पर घेरा डाले पड़े हैं, उस दशा में समस्त यादवों को अपने अक्षत सामान सहित सुदूर पश्चिम में काठियावाड के द्वारका स्थान में ले जाकर बसा देना और समुद्र के मध्य में एक आदर्श नगर बना, उसे भारत के समस्त नगरों से प्रधान करना, वास्तव में व्यावहारिक ज्ञान की मानव–सीमातीत पराकाष्ठा है ––

प्रययौ सोऽव्यवच्छिन्नं छिन्न्यानो दिने–दिने ।
यादवान्प्रति सामर्षो मैत्रेय मथुरां पुरीम् ।। ८ ।।
कृष्णोऽपि चिन्तयामास क्षयितं यादवं बलम् ।
यवनेन रणे गम्यं मागधस्य भविष्यति ।। ९ ।।
मागधस्य बलं क्षीणं स कालयवनो बली ।
हन्तैतदेवमायान्तं यदूनां व्यसनं द्विधा ।। १० ।।
तस्माद्दुर्गं कष्यामि यदूनामरिदुर्जयम् ।। ११ ।।[२]

(१) भागवत् गीता – द्रष्टव्य

(२) भागवत पुराण ११वाँ स्कन्ध द्रष्टव्य

यादवों के एक छोटे–से राज्य का इतना अधिक प्रभुत्व स्थापित कर देना कि सम्पूर्ण भारतवर्ष के महाराजाओं को उनकी आज्ञा माननी पडे यह राजनीतिक ज्ञान की परम सीमा है । महाभारत में भी उनका ज्ञान स्थान–स्थान मे अपनी अलौकिक छटा बिखेर रहा है । आधुनिक काल में भी राजनीतिज्ञ उनके राजनैतिक ज्ञान का लोहा स्वीकारते हैं । ज्ञान की सर्वांगपूर्णता में किसी विचारक को सन्देह नहीं हो सकता है ।

अब ऐश्वर्य पर विचार करते हैं । बुद्धि के परम विकास का नाम ऐश्वर्य है, उसके प्रतिफल आध्यात्मिक अणिमा, महिमा आदि सिद्धियॉ और बाह्य अलौकिक सम्पत्ति की बात नहीं बतायी जा सकती है । बाल्य–चरित्रों कालिय–दमन, गोवर्धन–धारण आदि वा आगे के चरित्रों में (१) विश्वरूप प्रदर्शन, अनेक रूप प्रदर्शनादि आध्यात्मिक पराकाष्ठा के उदाहरण भी प्रचुरता से मिलते हैं, जिन्हें आध्यात्मिक ज्ञान शून्य आधुनिक भौतिकता में डूबा हुआ जन–मानस असम्भव मानता है । वस्तुतः भगवान् श्रीकृष्ण में ऐश्वर्य जन्मसिद्ध है; आध्यात्मिक शक्तियों की विभूतियों के रूप में ही उनके अलौकिक कार्य हुए हैं । कालवश भारत के दुर्दैव से योग–विद्या आज नष्ट हो गयी, जिसके कारण भारत आध्यात्मिक शक्तियो का जगत्गुरू था, आज उसका परिचय ही न रहा ।

व्यवसायात्मिकता बुद्धि का चतुर्थ रूप वैराग्य है, जो कि राग–द्वेष का विरोधी है । इसकी पूर्णता का चिन्ह (लक्षण) यह है कि समस्त कार्य करता हुआ भी, पूर्णरूपेण संसार में रहता हुआ भी सबमें अनासक्त रहे, किसी बन्धन में न आये, कमलपत्र की तरह निर्लिप्त बना रहे । संसार का परित्याग कर अलग हो जाना अभ्यासवश जीवों में सम्भव है, किन्तु संसार में रहकर सर्वथा निर्लिप्त शुद्ध – ऐश्वर्य धर्म है । भगवान् श्रीकृष्ण के चरित में आदि से अन्त तक वैराग्य का (राग–द्वेष शून्यता का) पूर्ण विकास है । कहाँ बाल्यकाल का गोप–गोपियों और नन्द–यशोदा के साथ वह प्रेम कि जिसमें बंधकर एक क्षण वे बिना श्रीकृष्ण के न रह सकते थे और कहाँ यह आदर्श निष्ठुरता कि अक्रूर के साथ मथुरा जाने के पश्चात् वे एक बार भी वृन्दावन वापस नहीं आये । ऊद्धव को

भेजा, बलराम को भेजा, उन्हे सात्वना प्रदान की, किन्तु अपना 'वेलागापन' दिखाने को एक बार भी किसी से मिलने को स्वयं उधर मुख नही किया ।[1] प्रथमतः गोपियों के साथ रासलीला करते समय ही मध्य में तिरोहित होकर अपनी निरपेक्षता उन्होंने पहले ही प्रकट कर दी थी । प्रकट होने पर जब गोपियों ने व्यंगपूर्वक प्रश्न किया कि अपने साथ प्रेम करने वालों से भी जो प्रेम नहीं करते, उनका क्या स्थान ? तब उन्होंने उत्तर दिया कि वे दो ही हो सकते है --

"आत्मासमा, आप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः ।"(२)

अर्थात् या तो पूर्ण ज्ञानी या कृतघ्न । साथ ही अपना स्वभाव भी उन्होंने बतलाया --

"नाहं तु सख्यो भजतोऽपिजन्तून्,
भजाम्यमीषामनुवृत्तिसिद्धये ।
यथा धनो लब्ध धने विनष्टे;
तच्चिन्तयान्यन्निभृतो न वेद ।।[3]

वश, इस स्वभाव का उन्होंने पूर्ण निर्वाह किया । यादवों के राज्य का सारा कार्य वे ही सम्पादित करते थे, किन्तु बन्धन-रूप कोई अधिकार उन्होंने नहीं ले रखा था, वहाँ भी वे 'वेलाग' ही रहे । महाभारत-युद्ध अपनी नीति से ही चलाया, किन्तु कहलाये और बने भी रहे 'पार्थ सारथी' । बहुत से दुष्ट राजाओं का संहार किया, किन्तु उनके पुत्रों को ही राज्य का अधिकार दे दिया, राज्य-लिप्सा नहीं दिखलायी । अपने कुटुम्बी यादवों को जब ऊद्धव होते देखा, उनके द्वारा जगत में अशान्ति की सम्भावना हुई, तब उनका भी अपने समक्ष ही सर्वनाश करा दिया ।

---

(१) भाग० पु० १० स्कन्ध पूर्वार्द्ध बाल चरित्र प्रकरण विष्णु पु० ५ अंश/७वाँ अध्याय भ० गीता ११वाँ अध्याय विभूति योग प्रकरण

वैराग्य का – राग–द्वेष शून्यता का ही लक्षण 'समता' है, जो उनके आचरणो में ओत–प्रोत है, प्रत्येक जन यही समझ रहे थे कि श्रीकृष्ण मात्र मेरे ही हैं, किन्तु वे किसी के भी नहीं थे, सबके और सबसे स्वतन्त्र । पटरानियों में भी यही स्थिति थी, रुक्मिणी अपने को पटरानी समझती थीं । सत्यभामा अपने का अतिप्रिया मानती थीं, सब ऐसा समझती थी ।(२) यह भगवान् श्रीकृष्ण की समता का निदर्शन है । नारद ने परीक्षा करते समय इसी समता पर आश्चर्य प्रकट किया था । आप सत्यभामा का हठ रखने के लिये पारिजात हरण करते हैं —–

यदि चेत्त्वद्वचः सत्यं त्वमत्यर्थं प्रियेति मे ।
मग्देह निष्कुटार्थाय तदयं नीयता तरुः ।।३४
न मे जाम्बवती तादृगभीष्टा न च रुक्मीणी ।
सत्ये यथा त्वमित्युक्त त्वया कृष्णासकृत्प्रियाम् ।। ३५।।
सत्यं तद्यदि गोविन्द नोपचारकृतं मम ।
तदस्तु पारिजातोऽयं मम गेह विभूषणम् ।। ३६ ।।
विभ्रती पारिजातस्य केशपक्षेण मञ्जरीम् ।
सपत्नीनामहं मध्ये शोभेयमिति कामये ।। ३७ ।।'[1]

अपि च

चोदितो मार्ग योत्पाटय पारिजातं गरुत्मति
आरोप्य सेन्द्रान् विबुधान निर्जित्योपान्भयद् पुरम् ।।[2]

तो जाम्बवती को पुत्र प्राप्त होने के लिये शिव की आराधना करते हैं । किसी भी प्रकार समता को नहीं जाने देते । महाभारत युद्ध के उपस्थित होने पर अर्जुन और दुर्योधन दोनों ही सहायता मांगने जाते हैं और दोनों का मनोरथ पूर्ण करते हैं । पार्थ (अर्जुन) से पूर्ण सौहार्द है, किन्तु गर्व–भंजन के लिये स्थान–स्थान पर उसका शासन किया जाता है । ये सब समता के प्रबल प्रमाण हैं । बुद्धि के उक्त चारों सात्विक रूप जिसमें हों वही भगवान् कहा जाता है —

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञान वैराग्य यौश्चेव षण्णां भग इतीरणा ।।
वैराग्यं ज्ञानमैश्वर्य धर्मश्चैत्यात्मबुद्धयः ।
बुद्धयः श्रीर्यशश्चैते षड् वै भगवतो भगाः ।।
उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामगतिं गतिम् ।[3]
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यौ भगवानिति ।।

यश और श्री इन दो बाह्य लक्षणो को **'भग'** शब्दार्थ में परिभाषित किया गया है । उन दोनों का भगवान् श्रीकृष्ण में पूर्ण मात्रा में विकास सर्वप्रसिद्ध है, इस पर कुछ अधिक कहने की आवयश्कता नहीं । तृतीय श्लोक में भगवान् का जो लक्षण लिखा है – भूतों की उत्पत्ति, प्रलय, लोकलोकान्तर–गति, वहॉ से लौटना विद्या और अविद्या – इन समस्त का ज्ञान, भगवतद्गीता में इन सब विषयो का सुस्पष्ट प्रतिपादन ही बता रहा है कि भगवान् श्रीकृष्ण में यह परिपूर्ण रूप से हैं । भगवद्गीता में उक्त चारों सात्विक बुद्धिरूपों का विशद् निरूपण है । बुद्धियोग ही गीता का मुख्य प्रतिपाद्य है, उसमें वैराग्य योग, ज्ञानयोग, ऐश्वर्य योग और धर्म योग – यह क्रम रखा गया है । इनको क्रमशः राजर्षि विद्या, सिद्ध विद्या, राजविद्या ओर आर्षविद्या के नाम से भी कहते हैं ।

---

(१) विष्णु पु० ५/१८वाँ अध्याय, भागवत पु० १० स्कन्ध पूर्वार्द्ध ३७–४१वाँ पर्यन्त
(२) भाग० पु० १० स्कन्ध (पूर्वार्द्ध) ३३/१६ श्लोक
(३) ״ ״ ״ ״ ३३/२० श्लोक

---

(१) योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय सिद्धयासिद्धयोः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते ।। गीता २/४८
(२) भाग० पु० १०/६६वाँ अध्याय (उत्तरार्द्ध) श्रीकृष्ण गार्हयत्य वर्णन और १०/६० (उत्तरार्द्ध) विष्णु पु० ५/२६ और ३१वाँ अध्याय

इनका फल क्रम से अनाशक्ति (समता), अनावरण, भक्ति और बन्धन–मुक्ति द्वारा बुद्धि का अव्ययात्मा में समपर्ण रूप योग है । चारों रूपों की पूर्णता गीता–वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण में सिद्ध होती है, जो भग लक्षण की पूर्णता से श्रीकृष्ण (अच्युत) भगवान् कहलाते हैं और पूर्णावतार या साक्षात् परमेश्वर है । भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अपने को 'अव्यय'(१) पुरुष कहा है । अव्यय पुरुष सभी मे समन्वित रहता हुआ भी, सबका आलम्बन होता हुआ भी वह सर्वथा निर्लिप्त रहता है । यह लक्षण श्रीकृष्ण में वैराग्य–निरूपण प्रकरण में वर्णन किया जा चुका है । अव्यय की कलाओं --

१ आनन्द

२. विज्ञान

३. मन

४. प्राण

५. वाक्

में वाक् के विकास के लक्षण हैं – भौतिक समृद्धि और वाक्शक्ति । भौतिक समृद्धि के विषय में किया जा चुका है ।

वाक्शक्ति से भी उन्होंने काम लिया है । भगवत्गीता की घटना सुप्रसिद्ध ही है । युद्ध छोड़कर – पलायन करते हुए एक दृढ़ प्रतिज्ञ हठी वीर को अपनी वाक्शक्ति से ही उन्होंने स्वधर्म में लगाया । अल्पावस्था में वाक्शक्ति से ही गोपों से इन्द्रपूजा छुड़वाकार गोवर्धन– पूजा करवा दी ।[1] ग्राम की भोली–भाली सरल हृदय जनता का विश्वास, धार्मिक विश्वास परिवर्तन करना कितना कठिन एवं दुःसाध्य है, यह कार्य उन्होंने मात्र सात वर्ष की उम्र में ही कर दिखाया । वाक्शक्ति के प्रभाव से । गोप–बालाओं को यमुना में नग्न–स्नान रोकने का कार्य भी उन्होंने वाक्शक्ति–विकास के प्रभाव से ही पूर्ण किया,[2] ऐसे वाक्शक्ति–विकास **के अनेक उदाहरण शास्त्रों** में भरे पड़े हैं ।

---

(१) विष्णु पु० ५/३०/३४–३७ **श्लोक**

(२) भाग० पु० १०/५६/३६ **(उत्तरार्द्ध)**

दूसरी प्राण–कला के विकास के लक्षण है – बल, शौर्य, क्रियाशीलता आदि । जिसने शिशु–अवस्था में अपनी लात से खडे शकटों को पलट दिया (३), कुमारावस्था में पुराने अर्जुन–वृक्षों को एक झटके में उखाड़ फेंका (४) ।

किशोरावस्था में कंस के बड़े–बडे मल्लों को अखाडे में पछाड दिया तथा हाथी कुवलयापीड को मार गिराया ।(१) यौवन मे नग्नजित राजा के यहॉ सप्त मन्त वृषभों को एक साथ नाथ दिया, क्षत्रियत्व की पूर्णता के उस समय में महा महावीर क्षत्रियों के भारत वर्ष में विराजमान रहते–जिसके समक्ष लड़कर कोई भी न जीत सका, सब दुष्ट राजाओं पर आक्रमण करके सभी का दमन जिन्होंने किया, समस्त भूमण्डल का भार उतारा, अकेले इन्द्रपुरी पर चढ़ाई कर पारिजात–हरण में इन्द्र–पूजा और इन्द्र तक का मान भंग किया, उनके बल और वीर्य के अतिमानुष विकास में संदेह के लिये स्थान ही कहाँ है ।(२)

आपकी क्रियाशीलता भी जगद्विदित है । आज द्वारिका में हैं तो कल हस्तिनापुर में, परसों युद्ध में चढ़ाई हो रही है, तो अगले दिन तीर्थ यात्रा । हजारों रानियों के साथ पूर्ण गार्हयत्य–धर्म का निर्वाह, यादव–राज्य का समस्त प्रशासकीय प्रबन्ध कर भूमण्डल में उसे आदर्श प्रतिष्ठित बनाना, पाण्डवों के प्रत्येक कार्य में सहायक और सलाहकार रूप में उपस्थित रहना, भू–भार–हरण का अपना कर्तव्य भी पालन करते जाना, महाशत्रुओं से द्वारिका की रक्षा भी और शत्रुओं पर आक्रमण कर विध्वंश भी करना । यथा समय द्वारिका से विदर्भ देश पहुँचकर रुक्मिणी का मनोरथ पूर्ण करना भी क्रियाशीलता के अतिमानुष उदाहरण है ।[१] इस प्रकार अव्यय पुरुष की दूसरी कला का विकास पूर्ण रूप से सिद्ध होता है ।

(१) वैदिक विज्ञान एवं भार०सं० पृ० २३६

---

(१) भग०गीता – ४/१ – प्रोक्तवान हमव्ययम् ।।

तृतीय कला मन के विकास के लक्षण हैं–– मनस्विता, उत्साहशीलता और मनोमोहकता (मनोहरता) आदि । शिशुपाल जैसे वीर राजा के मित्रों और सेना–सहित उपस्थित होने का समाचार सुनकर भी अकेले कुण्डिनपुर चले जाना[२], भारत के सम्राट परमशत्रु जरासन्ध से लडने को केवल भीम और अर्जुन को साथ ले, बिना सेना के आ पहुँचना[३], भरी सभी में कूदकर कंस जैसे राजा के केश पकड उसे गिरा देना ––

> केशेष्वाकृष्य विगलत्किरीटमवनीतले ।
> स कंसं पातयामास तस्योपरिपपात् च ।। ८६ ।।
> अशेषजगदाधारगुरुणा पततोपरि ।
> कृष्णेन त्याजितः प्राणानुग्रसेनात्मजो नृपः ।। ८७ ।।[४]

मणि चोरी[५] का कलंक लगने पर, सभी के मना करने पर भी अकेले अपार गुफा में चले जाना, ऐसी मनस्विता और हिम्मत के उदाहरण उनके चरित्रों में शताधिक हैं । मनोहरता तो उनकी प्रसिद्ध है, उनका नाम ही 'चितचोर' है । शत्रु भी लड़ने को सामने आकर एक बार आकृष्ट होकर चौकडी भूल जाते थे । विदेशीय क्रूर वीर कालयवन को भी अनुताप हुआ था कि ऐसे सुन्दर नवयुवक से लड़ना पड़ेगा ।(१)

चतुर्थी कला विज्ञान है । बुद्धि–प्रसाद–रूप 'ज्ञान' के रहते अव्यय पुरुष की इस 'ज्ञान' कला का विकास होता है । यहाँ विज्ञान से संसार–ग्रन्थि मोचक आत्मज्ञान ही अभिप्रेत है । उसके विकास में भगवद्‌गीता के उपदेश से बढ़कर किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती ।

---

(१) वि०पु० ५/१० अध्याय, भाग०पु० १० स्कन्ध पूर्वार्द्ध २४–२६ अध्याय पर्यन्त
(२) भाग०पु० दशम् स्कन्ध (पूर्वार्द्ध) चीरहरण प्रसंग । पूर्वार्द्ध १०/२२ अध्याय विष्णु पु० ५/६ अध्याय
(३) भाग०पु० दशम् स्कन्ध पूर्वार्द्ध बाल चरित प्रकरण
(४) भाग०पु० १०/१० (पूर्वार्द्ध)

अब पञ्चमी कला सबसे उत्कृष्ट अव्यय की (प्रथम) कला आनन्द है । वही ब्रह्म का मुख्य स्वरूप बताया गया है ––'रसो वै सः ।' इसका पूर्ण विकास अन्य अवतारों में भी नहीं दृष्टिगोचर होता । भगवान् श्री रामचन्द्र में अन्य सब कलाओं का विकास है, किन्तु आनन्द का सर्वांश में विकास नहीं है, उनका जीवन 'उदासीनतामय' है । उसमें शान्त्यानन्द है ।

किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण में आनन्द के सब गुणों (रूपों) का पूर्ण विकास है । आनन्द के दो भेद हैं ––

---

(१) वि०पु० ५/१६ (रजकवध) ५/२० धनुर्भग, कुवलयापीड बध, चापूरादि मल्लों का नाश
भागवत पु० १० स्कन्ध (पूर्वार्द्ध) ४४ अध्याय

(२) वि०पु० ५/२५ (जरासन्ध पराजय, पारिजातहरण भाग०पु० पारिजात–हरण १० (उत्तरार्द्ध)
५६वाँ जरासन्ध वध १०/७२ अध्याय (उत्तरार्द्ध)
शिशुपाल वध १०/७४वाँ अध्याय (उत्तरार्द्ध)

---

(१) भा० पु० १० स्कन्ध (उत्तरार्द्ध) ५३–५४वॉ अध्याय
वि०पु० ५/२६वाँ अध्याय

(२) भाग०पु० – शिशुपालवध १० (उत्तरार्द्ध) ७४वाँ अध्याय

(३) भाग०पु० – १० स्कन्ध (उत्तरार्द्ध) ७२वाँ अध्याय

(४) वि०पु० ५/२०/८६–८७ श्लोक, भाग०पु० १० (उत्तरार्द्ध) ४४/३७–३६ श्लोक

(५) भाग०पु० १० (उत्त०) ५६–५७ अ०

---

(१) भा० पु० १० स्कन्ध (उत्तरार्द्ध) ५६वाँ अध्याय
वि०पु० ५/२६वाँ अध्याय

---

१. समृद्ध्यानन्द

२ शान्त्यानन्द

जब मनुष्य को किसी इष्ट वस्तु धन–पुत्रादि की प्राप्ति होती है, तब उसका चित्त प्रफुल्लित होता है, उस प्रफुल्लता की मनोवृत्ति–रूप आनन्द या समृद्धयानन्द कहा जाता है । यह प्रफुल्लता अल्पकाल ही रहती है, आगे वह इष्ट वस्तु–धन पुत्रादि विद्यमान रहती हे, किन्तु वह चित्त–विकास, वह प्रफुल्लता नहीं रहती, अब वह समृद्ध्यानन्द शान्त्यानन्द में परिणत हो गया है । निर्धन की अपेक्षा धनवान को अपुत्र की जगह (अपेक्षा) पुत्रवान् को अधिक आनन्द प्राप्त होता है; किन्तु, उस आनन्द का सर्वदा अनुभव नहीं होता । चित्त–विकास सदा नही रहता । केवल अनुभव–काल में चित्त–विकास–दशा में समृद्ध्यानन्द ओर अनुभव में न आने वाला, मनोवृत्ति से ग्रहीत न होने वाला आनन्द शान्त्यानन्द कहलाता है । मन में इच्छा रूप तरग न उत्पन्न होने की दशा में या दुःख–निवृत्ति–दशा में भी शान्त्यानन्द ही होता है । शान्त्यानन्द के ब्रह्मानन्द, योगानन्द, विद्यानन्द आदि भेद 'पंचदशी' आदि वेदान्त ग्रन्थों में बताये गये हैं और समृद्ध्यानन्द के–मोद–प्रमोद–प्रिय आदि भेद तैत्तिरीयोपनिषद् में आनन्दमय के शिर, पक्ष आदि के रूप मे कहे गये हैं ––

तस्माद्रा एतस्माद्विज्ञानमयादन्योऽन्तर आत्मा ऽऽनन्दमयः । तेनैष पूर्णः । सवा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविधः । तस्य प्रियमेव शिरः । मोदो दक्षिणः पक्षः । प्रमोद उत्तरः पक्षः । आनन्द आत्मा । ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ।[१]

अभिनव वस्तु के दर्शन से प्रिय–रूप आनन्द है; उसके प्राप्त होने में मोद और भोग–काल में प्रमोद होता है, ऐसी भाष्यकारों की व्याख्या है । अस्तु, शान्त्यानन्द तो ईश्वर के प्रायः सभी अवतारों में रहता है, क्योंकि ईश्वर है ही आनन्द–रूप, किन्तु भोग–लक्षण समृद्ध्यानन्द का भगवान् श्री कृष्ण में ही पूर्ण विकास है । चित्त–विकास–रूप आनन्द की पूर्ण मात्रा हमारे चरित्र नायक में ही है । अनेक ग्रन्थों में संक्षेपेण विस्तरेण वा भगवान् श्रीकृष्ण का जीवन–चरित

वर्णित किया गया है; किन्तु कही उनके जीवन मे ऐसा अवसर नहीं दृष्टिगोचर होता, जहाँ वे हाथ पर गाल रखकर किसी चिन्ता में निमग्न हो, जीवन भर में कोई ऐसा दिन नहीं, जिस दिन वे शोकाक्रान्त हो अश्रुपात करते दृष्टिगोचर होंवे । कैसा भी झंझट आये, सभी को क्रीडा–क्रीडा में ही सुलझा दिया । चिन्ता अथवा शोक समीप आने ही नहीं दिया । बाल्यकाल में ही नित्य कंस के भेजे हुए असुर मारने को आ रहे हैं, किन्तु खेल–तमाशों में उन्हें ठिकाने लगाया जाता रहा है । कंस जैसा घोर कर्मी पातकी ताक में है । किन्तु यहाँ गोवत्सों को चराने के ब्याज से गोपसखाओं के साथ बंशी के स्वरों में राग अलापे जा रहे हैं । गोपियों के घरों का माखन उडाया जा रहा है, चीर–हरण का विनोद हो रहा है, रासलीला रची जा रही है ।[१] वर्तमान सभ्यता के अभिमानी जो महाशय इन चरित्रों पर आक्षेप करते हैं, वे कृष्णावतार का रहस्य नहीं समझते । इतना अवष्य कहेंगे कि यदि ये लीलायें न हुई होतीं, तो भगवान् श्रीकृष्ण पूर्णावतार या साक्षात् भगवान् न कहलाते, आनन्द की पूर्ण अभिव्यक्ति उनमें न मानी जा सकती । युवा होने पर दुष्टों का संहार भी हो रहा है, राज्य की उन्नति भी हो रही है । जो सुन्दरियाँ अपने में अनुरूप सुनी जाती हैं उनके साथ विवाहों का आयोजन भी हो रहा है । समस्त झंझट सुलझाये भी जा रहे हैं और राजधानी को पूर्ण समृद्धिमय बनाकर अनेक रानियों के साथ आदर्श गार्हस्थ्य–सुख का उपभोग भी हो रहा है । पारिजात–वृक्ष लाकर सत्यभामा के मान का भी अनुरोध रखा जा रहा है । भूमि को स्वर्ग–रूप भी बनाया जा रहा है । अर्जुन जैसे मित्रों के साथ पर्यटन का आनन्द भी लिया जा रहा है ।[१] कदाचित् कोई मनचले महाशय प्रश्न करें कि बहुत से पुरुष मद्यपानादि में या अनेक स्त्रियों के सहवास में ऐशो–आराम में ही अपना जीवन यापन करना जीवन का लक्ष्य मानते हैं, क्या उन्हें भी ईश्वर का पूर्णावतार समझा जाय, तो उत्तर होगा कि हाँ समझा जा सकता था, यदि वे अपने धर्म से विच्युत न होते, यदि सब प्रकार ऐशो–आराम में रहकर भी अपने कर्तव्य को न भूलते, यदि लौकिक और पारलौकिक उन्नति से हाथ न धोते, यदि सब कुछ भोगते हुए भी क्षण मात्र में सबको छोड़कर कभी याद न करने की शक्ति रखते, यदि ऐसे भोग के परिणाम–रूप में नाना आधि–व्याधि या भयानक शोक, मोह आदि से ग्रस्त न

होते, यदि पूर्ण समृद्ध्यानन्द भोगते हुए भी शान्त्यानन्द मे निमग्न रहते, यदि उस दशा में भी अपने अनुभव के --

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वक्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
सशान्तिमाप्नोति न कामकामी ।।(२)

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्तएव च कर्मणि ।।(३)

ऐसे सच्चे उद्‌गार निकालकर संसार को शान्ति--समुद्र में लहरा सकते । क्या ससार में कोई जीव ऐसा दृष्टान्त है, जिसके जीवन में दुःख का स्पर्श भी न हुआ हो, जिसने सब प्रकार के लौकिक सुख भोगते हुए अपना पूर्ण कर्तव्य पालन किया हो ? जो संसार में लिप्त दीखता हुआ भी आत्मविद्या का पारंगत हो ? जो जगत भर को अन्याय से हटाने की चुनौती देता हुआ भय और चिन्ता से दूर रहे । निःसन्देह ये परमानन्द परमात्मा के लक्षण हैं, जीवकोटि के बाहर की बाते हैं ।

---

(१) तैत्तिरीयोपनिषद् २ वल्ली / ५ अनुवाक / २ मन्त्र

---

(१) भाग०पु० १० स्कन्ध के विविध प्रकरण

---

(१) भाग०पु० १० स्कन्ध विविध प्रसंग, वि०पु० ५ अंश के विविध प्रकरण
(२) गीती २/७० श्लोक
(३) गीता ३/२२ श्लोक

वेदान्त के ग्रन्थों में आनन्द का चिन्ह प्रेमास्पदत्व को माना है, आत्मा को आनन्द रूप इसी शक्ति से सिद्ध किया जा सकता है कि वह परम प्रेमास्पद है औरो के साथ प्रेम आत्मार्थ होने पर ही सम्भव है, आत्मा में निरुपाधिक प्रेम है । भागवत पुराण में[1] जब ब्रह्मा ने गोप–गोवत्स–हरण किया था और भगवान् श्रीकृष्ण ने सब गोप–गोवत्स अपने रूप से प्रकट कर दिये थे, उस प्रसंग में वर्णन है कि गौओं को या गोपों के पिताओं को उनमें बहुत अधिक प्रेम हुआ । परीक्षित के कारण पूछने पर सूत ने यही कारण बताया —

सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैव बल्लभः ।
इतरेऽपत्यवित्ताद्यस्तद्वल्लभ्रतथैव हि ।। ५० ।।
तद् राजेन्द्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम् ।
न तथा ममतालम्बिपुत्रवित्तगृहादिषु ।। ५१ ।।
देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम ।
यथा देहः प्रियतमस्तथा न हयनु ये च तम् ।। ५२ ।।
देहोऽपि ममता भाक् चेतर्हस्तौ नात्मवत् प्रियः ।
यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिञ्जीविताशा बलीयसी ।। ५३ ।।
तस्मात् प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ।
तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम् ।। ५४ ।।
कृष्णमेन मबेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ।
जगद्विताय सोऽप्यत्र दैहीयाभाति मायया ।। ५५ ।।
वस्तुतौ जानतामत्र कृष्णं स्थास्तु चरिष्णु च ।
भगवद्रूपमखिलं नान्यद् वस्तित्वह किञ्चन ।। ५६ ।।
सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः ।
तस्यापि भगवान् कृष्णः किमतद् वस्तु रूप्यताम् ।। ५७ ।।

---

(१) भाग०पु० १०/१४ अध्याय/५०+५१ ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७ श्लोक

अर्थात् आत्मा आनन्द रूप होने से परम प्रेमास्पद है, भगवान् श्रीकृष्ण सभी के आत्मा है । आनन्दमय है, अतः उनके स्वरूप से प्रकट गो–वत्सादि में प्रेम होना ही चाहिए । अस्तु, जिसमें सर्वाधिक प्रेम हो, वह आनन्दमय होता है । यह इस प्रसंग से सिद्ध हुआ । इस लक्षण से परीक्षा करें तो भी भगवान् श्रीकृष्ण की आनन्दमयता पूर्णरूप से सिद्ध होती है । जैसा प्रेम का प्रवाह उन्होने बहाया था, वैसा किसी ने नहीं बहाया । बाल्यकाल से ही सब उनके प्रेम मे बंध गये थे । ब्रज के खग–मृग–वृक्ष–लता भी बंसी–ध्वनि से प्रेमोन्मत्त हो जाते थे । गोप–गोपाङ्गनायें अपने कुटुम्बियों से प्रेम त्यागकर उनसे प्रेम करते थे । जो आसुर भाव से दबे हुए थे, उनके अतिरिक्त श्रीकृष्ण के प्रेम का प्रवाह भूमण्डल को प्लावित कर चुका था । शत्रु भी क्षणमात्र उनके प्रेम से आकृष्ट हो जाते थे । तत्तत् दिन ही नहीं अद्यापि सब श्रेणी, सब धर्मो के, सब जाति के मनुष्यों का जितना प्रेम भगवान् श्रीकृष्ण पर दृष्टिगोचर होता है, उतना किसी इतर देवता पर नहीं । एक गायक, यदि गान का अभ्यास करता है, तो पहले श्री कृष्ण ही उसकी जिह्वा पर आते हैं, किसी जाति का कोई ऐसा अभागा गायक न होगा, जिसने श्रीकृष्ण के पद न गाये हों । चित्रकला पर जिसने जरा भी हाथ चलाया, वह श्रीकृष्ण की मूर्ति एक–आध बार अवश्य ही बना चुका होगा । मूर्ति बनाने का शिल्प जानने वाला प्रायः ऐसा नहीं मिलेगा जिसने श्रीकृष्ण की मूर्ति कभी न बनायी हो । धार्मिक भक्त, विलासी रसिया, राजनैतिक सुधारक, आधुनिक सभ्यगण, दार्शनिक, निरपेक्ष, सबके कमरों में या मकान की दीवारों पर किसी–न–किसी रूप में वे दृष्टिगोचर हो जायेंगे । 'ताना–री–री' करने वाले, छोटे बच्चे, कुमार, किशोर, मार्ग में अलापते हुए तानसेन को मात देने की इच्छा रखने वाले रसिया, खेतों के किसान, ग्रामीण महिलायें, सबकी जिह्वा पर किसी–न–किसी रूप में उनका नाम विराजित सुन पड़ेगा और तो क्या, होली में उन्मत्त जनता भी आपके यश को अपनी वाणी पर ही नचाती है । भक्त लोग अपना सर्वस्व समझकर, धार्मिक लोग धर्मरक्षक, विलासी विलास के आचार्य समझकर, दार्शनिक गीता के प्रवक्ता समझकर, राजनीतिक–नीति के पारंगत समझकर, देश–हितैषी, देशोद्धारक समझकर और गो–सेवक गोपाल समय–समय पर उनका स्मरण करते हैं । साम्प्रदायिक भेद रहते हुए भी वैष्णव विष्णु का

पूर्णावतार मानकर, शाक्त आद्याशक्ति का अवतार कहकर और शैव शिव का अनन्य समझकर उनको भजते हैं । शिव, विष्णु और शक्ति की उपासना में चाहे मतभेद रहे हों, श्रीकृष्ण–मूर्ति की ओर सबका झुकाव है । भारत के ही नहीं, अन्यान्य देशों के लोग भी कृष्ण–प्रेम से प्रभावित हुए हैं, उनके उपदेशों एवं चरित्रों का रूपान्तर से आदर सब देशों में हुआ है । मुसलमानों में रसखानि, रहीम खानखाना, नवाब, ताज बेगम आदि की बात तो प्रसिद्ध ही है । वर्तमान युग के ईसाइयों में भी कई विद्वानों ने इस बात की चेष्टा की है कि क्राइस्ट को श्रीकृष्ण का ही रूपान्तर घोषित किया जाय । अद्यापि गाँधी जी के अनुयायी चित्र मे गाँधी जी के हाथ में – सुदर्शन देकर या गोवर्धन पर्वत उनकी भुजा पर रखकर उन्हें श्रीकृष्ण रूप में देखने को उत्सुक हैं । ये समस्त तथ्य श्रीकृष्ण के प्रेम के ही निदर्शन हैं वे आनन्द रूप हैं । सर्वात्मा हैं । परब्रह्म हैं । इसलिये प्राकृतिक रूप से सभी को विवश होकर उनसे ही प्रेम करना पड़ता है ।

अस्तु, अव्यय पुरुष की पांचों कलाओं का विकास भगवान् श्रीकृष्ण में परिपूर्ण है ।

श्रीराधा और श्रीकृष्ण

बहुतों के चित्त में यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि द्विजों का गौरवर्ण होना ही प्राकृतिक है, फिर भी ऐसे सुप्रतिष्ठित कुल के विशुद्ध क्षत्रिय 'राम और कृष्ण' – कृष्ण वर्ण क्यों है ? कदाचित् कहा जाय कि वे विष्णु के अवतार हैं । विष्णु भगवान् कृष्णवर्ण हैं, इसलिए वे भी कृष्णवर्ण हैं तो वहाँ भी प्रश्न होगा कि सत्वगुण के अधिष्ठाता भगवान् विष्णु भी कृष्णवर्ण क्यों हैं ? सत्व का रूप शास्त्रों में[1] तो श्वेत माना गया है, रज का लाल और तम का काला है । तमोगुण का अधिष्ठाता कृष्णवर्ण हो सकता है, किन्तु सत्व का अधिष्ठाता श्वेतवर्ण होना चाहिए ।[2] इसी समस्या पर विचार करने का प्रयास करते हैं । कृष्ण वर्ण तीन प्रकार का है[3] ––

१. **अनुपाख्य कृष्ण**

२. **अनिरुक्त कृष्ण**

३ निरुक्त कृष्ण

सृष्टि के पूर्व की अवस्था को कृष्ण कहा जाता है – "आसीदिद तमोभूतम्"[३]

यह अनुपाख्य कृष्ण है । जिसका हमे कुछ ज्ञान न हो सके, उसे कृष्ण और जो हमारे समझ में आ जाय वह शुक्ल कहलाता है । निगूढ को कृष्ण और प्रकाशित को शुक्ल कहते हैं । यह औपचारिक प्रयोग है । काला परदा पड़ने पर कुछ भी नहीं दीखता, इसलिये न दीखने वाली वस्तु काली कही जाती है । प्रकाश श्वेत प्रतीत होता है । इसीलिए प्रकाशमान वस्तु को श्वेत कहते है । कार्य जब तक उत्पन्न न हो, तब तक अपने कारण में निगूढ़ रहता है । उसका ज्ञान हमे नहीं होता इसलिए कार्य की अपेक्षा से कारणावस्था को कृष्ण और कार्योत्पत्ति–दशा को शुक्ल कहते हैं । सब जगत जहॉ निगूढ़ है, जहॉ आज दीखने वाले जगत का कोई ज्ञान नहीं, उस जगत की कारणावस्था–पूर्णावस्था को दृश्यमान जगत की अपेक्षा कृष्ण ही कहना पड़ेगा । इसलिये, सब जगत के कारण भगवान् विष्णु या आद्याशक्ति कृष्णवर्ण ही कहे जाते हैं । इस कृष्ण का हमें कभी भी बोध नहीं हो सकता, यह केवल शास्त्रवेद्य है । अतएव इसे अनुपाख्य कृष्ण कहते हैं ।

द्वितीय अनुरुक्त कृष्ण वह है, जिसका अनुभव तो हो किन्तु 'इदमित्थम्' रूप से एक केन्द्र में पड़कर निर्वचन न किया जा सके । जैसे– ऊपर 'आकाश' में, अंधकार में या आँख मींच लेने पर काले रूप का अनुभव होता है, किन्तु वह सर्वरूप का अभाव कालेपन से भासित है । किसी केन्द्र में पड़कर उस कालेरूप को निरुक्त नहीं किया जा सकता है ।

---

(१) वैष्ण विज्म, शैविज्म, एण्ड अदर माइनर रिलिजियस सिस्टम पृ० ४६

(२) सत्वं लघु प्रकाशकमिष्टम् सांख्य कारिका १३वां श्लोक

(३) अथर्व सं० १६/६/५३–५४;

(४) मनुस्मृतिवर्णन – वै०वि०भा०सं० पृ० २४२

तृतीय निरुक्त कृष्ण कोयला आदि पदार्थों में है । इनमें अनुपाख्य कृष्ण का अनिरुक्त कृष्ण में और अनिरुक्त कृष्ण का निरुक्त कृष्ण में अवतार होता है । या यों कहें कि पूर्व–पूर्व कृष्ण में से उत्तरोत्तर कृष्ण का विकास होता है । चन्द्रमा, पृथिवी और सूर्य ये त्रिविध मण्डल निरुक्त कृष्ण हैं । यह वैदिक सिद्धान्त है । पृथ्वी को वेद में कृष्णा कहा जाता है । अन्धकार पृथ्वी की काली किरणों का ही समूह है – यह भी वेद में ही प्राप्त होता है ।[१] ''चन्द्रमा वै ब्रह्मा कृष्णः''[२] अर्थात् चन्द्रमा को भी श्रुतियों में कृष्ण कहा है और ''आ कृष्णेन रजसा वर्त मानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।

हिरण्यमयेन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्चन् ।''(३)

इत्यादि ऋचाओं (मन्त्रों) में भी सूर्य मण्डल को भी कृष्ण कहा है और हिरण्य मय प्रकाश–भाग को सूर्य का रथ बताया है । तात्पर्य यह है कि प्रकाश मण्डल एवं योगज है । कई प्राणों के सम्बन्ध से बनता है, सूर्य मण्डल स्वभावतः कृष्ण ही है ।

आधुनिक वैज्ञानिक भी इसी सिद्धान्त के अनुकूल जा रहे हैं । अस्तु, इन तीनों से परे जो परमेष्ठी मण्डल है, वह अनिरुक्त कृष्ण है । रूपों के अधिष्ठाता सूर्य हैं, सूर्य किरणों के सब रूप बनते हैं । अतः सूर्य–मण्डल की उत्पत्ति के पूर्व परमेष्ठी–मण्डल में कोई रूप नहीं कहा जा सकता है । उसे 'आपोमय–मण्डल' या 'सोममय–मण्डल' कहा जा सकता है । सोम, वायु और आप् तीनों एक ही द्रव्य की अवस्थायें माने जाते हैं, वायु घनीभूत होने पर 'आप्' अवस्था में आ जाती है और तरल होने पर 'सोम' अवस्था में । इसी द्रव्य में अनिरुक्त–कृष्ण वर्ण प्रतीत हुआ करता है । यह द्रव्य परमेष्ठी की किरणों द्वारा बहुत बड़े आकाश–प्रदेश में व्याप्त है । सूर्य यद्यपि हमारे लिये बहुत बड़ा है, किन्तु इस सोम–मण्डल की अपेक्षा उसकी स्थिति ऐसी ही है, जैसी घोर अन्धकारमय जंगल में एक टिमटिमाते दीपक की होती है । एक सूर्य का प्रकाश जहाँ तक पहुँचता है, उसकी परिधि–कल्पना कर वहाँ तक ब्रह्माण्ड समझा जाता है, परिधि से बाहर अनन्त–आकाश में वह अनिरुक्त कृष्ण सोम या आप् भरा हुआ है । वही अनिरुक्त कृष्ण वाले आकाश के रूप में हमें प्रतीत हुआ करता है । वह कृष्ण है और सूर्य–प्रकाश की प्रतिमा – 'राधा' है ।

'राध' धातु का अर्थ – 'सिद्धि' होता है । सूर्य–प्रकाश में ही सब व्यावहारिक कार्य सिद्ध होते हैं, अतः 'राधा' नाम वहाँ अन्वर्थ (सार्थक) है । कृष्ण श्याम तेज हैं और राधा गौर–तेज । कृष्ण के अक (गोद) में, अर्थात् श्याम–तेजोमय मण्डल के बीच में राधा विराजित हैं । ब्रह्माण्ड की परिधि के भीतर भी यह सोम–मण्डल व्याप्त है । जैसे– व्यापक आकाश में कोई दीवार (भित्ति) बनायी जाय, तो हमें प्रतीत होता है कि यहाँ अब आकाश (अवकाश) नही रहा । किन्तु, यह भ्रम–मात्र है ।

उस दीवार के आधार रूप से आकाश वहीं विद्यमान है, उसी में दीवार है, दीवार हटते ही आकाश ही आकाश दृष्टिगोचर होता है । इसी प्रकार सूर्य प्रकाश लेने पर वह कृष्ण सोम मण्डल हमें प्रतीत नहीं होता । किन्तु प्रकाश उसी के आधार पर है, वह आकाश में अनुस्यूत है । सूर्यास्त होते ही वह फिर श्याम तेज प्रतीत होने लगता है । बिना प्रकाश के अन्धकार और बिना अन्धकार के प्रकाश कहीं नहीं रहता, दोनों परस्पर अनुस्यूत हैं । प्रकाश की बिना सहायता के नेत्र–रश्मि कोई कार्य नहीं कर सकती । अतः सिद्ध हुआ कि गौर–तेज और श्याम–तेज अर्थात् राधा और कृष्ण अन्योन्य–आलिंगत रूप में ही सदा रहते हैं । कभी कृष्ण के अंक में राधा छिपी हुई हैं, कभी राधा के अञ्चल में कृष्ण दुबक जाते हैं । एक ही ज्योति के दो विकास हैं और एक के बिना दूसरे की उपासना निन्दित मानी गयी हे ––

गौर तेजो बिना यस्तु श्याम तेजः समर्चयेत् ।
जयेद्वा ध्यायते वापि स भवेत् पातकी शिवे ।।
तस्माज्योतिरभूद् द्वेधा राधामाधवरूपकम् ।[१]

---

(१) वै०वि०भा० सं० पृ० २४२
(२) शतपथ ब्रा० १३/२/१/७
(३) ऋ० १/१३५/२

इस विष्णु रूप परमेष्ठि मण्डल का अवतार होने के कारण भगवान् श्रीकृष्ण का श्याम रूप था और गौरवर्ण भगवती श्रीराधा से उनका अन्योन्य तादात्म्य सम्बन्ध था, निरतिशय प्रेम था । वहाँ राधा (प्रकाश–भाग) परमेष्ठि–मण्डल की अपनी नही, प्रक्रिया हैं, इसलिये यहाँ भी राधा के साथ कृष्ण का विवाह[१]–सम्बन्ध नहीं है । परमेष्ठि मण्डल को वेद में 'गौसव' औरा पुराण में "गौलौक" कहा गया है । इसका कारण हे कि गौ – जिन्हें किरण कहा जाता है, उनकी उत्पत्ति परमेष्ठि मण्डल में होती है । आगे के मण्डलों में उन गौओं का विकास है, अतएव सूर्य और पृथ्वी के प्राणों में 'गौ'[२] नाम आया है । ये प्राण–विशेष हैं । हमारे 'गौ" नाम से प्रसिद्ध पशुओं में इस प्राण की प्रधानता रहती है । अतएव यह 'गौ' भी हमारी आराध्य है । अस्तु, गौ का उत्पादक और पालक होने से परमेष्ठी 'गोपाल' है । प्रथमतः गौ उसे प्राप्त हुई – इसलिए 'गोविन्द' है । अतएव, हमारे चरित नायक भगवान् श्रीकृष्ण भी परमेष्ठी का अवतार होने के कारण गौओं के सहचारी बने और गोपाल या गोविन्द कहलाये । इसी प्रकार परमेष्ठी का इन्द्र के साथ साहचर्य (सख्य) है (परमेष्ठी के आगे इन्द्र–मण्डल उत्पन्न होता है और इन्द्र परमेष्ठी से ही बद्ध है ।) इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण का भी इन्द्रांश–अर्जुन से साहचर्यपूर्ण सौहार्द रहा ।

चन्द्र मण्डल भी अवतारों–क्षर (जीव) की आधिभौतिक कलाओं में है । उसके प्राणों का प्रतिफल भी कृष्णचरितों में बहुत–कुछ दृष्टिगोचर होता है । चन्द्रमा समुद्र (आपोमय मण्डल) में रहता है ––

---

(१) सम्मोहन तन्त्र, गोपाल सहस्रनाम ।

---

(१) भाग० पु० (दशमस्कन्ध) और विष्णु पुराण द्रष्टव्य ।

(२) निरुक्त द्वितीय अध्याय ।

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो भावते दिवि ।
न वो हिरण्यमेनयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ।।[१]

इसलिये, भगवान् श्रीकृष्ण भी समुद्र के मध्य में द्वारका बनाकर रहे । चन्द्र मण्डल श्रद्धामय है, इस कारण भगवान् श्रीकृष्ण में भी श्रद्धा बहुत अधिक थी । सामान्य ब्राह्मणों के भी अपने हाथ से चरण धोना, स्वयं उनके चरण दबाना, देवयजन, शिवाराधन आदि श्रद्धा के बहुत–से निदर्शन हैं । रास–लीला का भी चन्द्रमा से बहुत अधिक सम्बन्ध है । चन्द्रमा राशिचक्र में राशिलीला करता है । प्राचीन काल में नक्षत्रों की गणना कृत्तिका से की जाती थी, उसके अनुसार– 'विशाखा' (नक्षत्र) सब नक्षत्रों की मध्यवर्तिनी होने से रासेश्वरी है, उसका दूसरा नाम 'राधा' भी है । अतएव, उसके आगे के नक्षत्र को 'अनुराधा' कहते हैं । विशाखा पर जिस पूर्णिमा को चन्द्रमा रहता है; उस दिन सूर्य कृत्तिका पर रहता है । सम्मुख स्थित सूर्य की सुषुम्णा–रश्मि से विशाखायुक्त चन्द्रमा प्रकाशित होता है । कृत्तिका का सूर्य 'वृष' राशि का है, अतएव यह राधा वृषभानुसुता कही जाती है । फिर, जब पूर्ण चन्द्रमा (पूर्णिमा का चन्द्रमा) राधा के ठीक सम्मुख भाग में कृत्तिका पर आता है, तब कार्तिकी पूर्णिमा रास का मुख्य दिन होता है इत्यादि । ये समस्त घटनायें भगवान् श्रीकृष्ण की 'रासलीला' में भी समन्वित होती हैं ।

इस प्रकार, भगवान् श्रीकृष्ण की और उनके मुख्य अवतार श्रीकृष्ण की उपासना का रहस्य विवेचित हुआ ।

गोपी शब्द की व्याख्या ––

गोभिः इन्द्रियैः पिवन्ति श्रीकृष्णनामामृतं रसं इति गोपी ।

अथवा

---

(१) ऋ० १/१०५/१

गोपायते अन्तर्हृदि श्रीकृष्णमिति इति गोपी अर्थात् गो इन्द्रियों के द्वारा 'श्रीकृष्णनामामृत' का पान करे वह गोपी पदवाच्य है अथवा अपने अन्तर्हृदि में जो 'श्रीकृष्ण' को छुपाले वह भी गोपी पदवाच्य है ।

श्रीकृष्ण शब्द की व्याख्या --

कृष् विलेखने धातुर्णश्च तन्निरोधकः ।
तयोरित्यभिधानेन कृष्णरित्यभिधीयते ।।

श्रीविष्णु शब्द की व्याख्या --

विश् प्रवेशने धातुर्णश्च तन्निरोधकः ।

श्रीकृष्ण जी का आयुध वंशी है और श्री विष्णु जी का कौमोदकी गदा और सुदर्शन चक्र तथा शंख है । श्री रामजी का आयुध धनुष और बाण हैं ।

मन्त्र --

"रां रामाय नमः ।"
"क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन बल्लभाय स्वाहा ।"
"विं विष्णवे नमः ।"
"ॐ नमो नारायणाय ।"
"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।"
"श्रीं श्रियै नमः ।"
"श्रीं महालक्ष्म्यै नमः ।"

ये इस कुल के प्रमुख मन्त्र हैं ।

अतः उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैष्णव धर्म का प्रसार भारत में भक्ति और ज्ञान के मार्ग को प्रशस्त करने के उद्देश्य से हुआ था; जिसमें विष्णु के विभिन्न अवतारों की उपासना और साधना आगमिक–नैगमिक,

पौराणिक तिाि स्मात सभी प्रणालियों मे प्रचलित है । पूर्ववर्ती काल में वासुदेव–कृष्ण के पूजन का अधिक विस्तार हुआ, किन्तु मध्य युग में 'रामोपासक' तथा 'कृष्णोपासक' सम्प्रदाय का समानान्तर गति से विकास एवं प्रसार हुआ । उत्तर भारत में इसका समस्त श्रेय रामोपासक – तुलसीदास और श्रीकृष्णोपासक सूरदास, मीराबाई आदि को है । बंगाल में चैतन्य एवं उनके अनुयायियों ने कृष्ण की लीलाओं का प्रचार तथा प्रेम का प्रतिपादन किया । महाराष्ट्र में नामदेव, तुकाराम के प्रयास से श्रीकृष्ण की उपासना गृह–गृह में फैल गयी । परवर्ती उपासकों एवं चिन्तकों ने ब्रज भाषा द्वारा अपने जन–जन तक पहुँचाकर आत्मा–परमात्मा तथा ब्रह्म–सम्बन्धी गूढ तत्वों का विश्लेषण किया ।

————————

अध्याय ४

सृष्टि के देवता श्री ब्रह्मा जी

देवता तत्व

भगवान् व्यासदेव ने वेदों का ऋक् यजुष् साम, अथर्व चार प्रमुख भागों में विभाजन कर अपने अनेक शिष्यों द्वारा उन्हें कठ कौथुम काण्व, कपष्ठिल शाकल, शौनकीय आदि अनेक शाखाओं में विभक्त किया, इसलिये वे 'वेदव्यास' कहलायें परन्तु जब उन्होने देखा कि अल्प मे धावी प्रजावर्ग गूढवेदार्थो को इतने पर भी नहीं समझ पा रहा है तब वेदार्थो से उपवृंहित अष्टादश महापुराणों, उपपुराणों के साथ साथ महाभारत नामक विशाल लक्ष श्लोकात्मक इतिहास ग्रन्थ की रचना की, इसके अतिरिक्त उन्होने शास्त्रीय आचार दर्शन हेतु–बृहतव्यास स्मृति लघुव्यास स्मृति दानव्यास स्नानव्यास आदि ग्रन्थो का भी प्रणयन किया तथा वैदिक एवं औपनिषदिक शंकाओ की निवृत्ति के लिये 'ब्रहमसूत्र' या वेदान्त देश का निर्माण किया। उन्ही का आधार लेकर परवर्ती भास, कालिदास,गोस्वामी,तुलसीदास आदि महाकवियों ने अनेक अद्भूत महाकाव्यों की रचना की। इस प्रकार वर्तमान कासम्पूर्ण विश्वज्ञान एवं साहित्यिक वाङमप भगवान् व्यास का हीउच्छिष्ट है अतः 'व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' की उक्ति सर्वथा सार्थक है।

भगवान् व्यासदेव के विषय में उनकी चतुर्थ पीढी की शिष्य परम्परा में प्राप्त आदिशंकाराचार्य का कथन है कि –

"भगवान व्यास की सामर्थ्य हमलोगों से सर्वथा विलक्षण और बहुत अधिक बढ़ी चढी थी। वे सभी देवताओं तथा ऋषियों के साथ साक्षात् व्यवहार करते थे उन्हें प्रतिस्मृति विद्या और अनेक ऐसी विद्याये प्राप्त थी,जिससे महाभारत युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए सभी योद्धा को जीवित कर उनके परिवारजनों के साथ सम्भाषण पूर्वक एक रात्रि का पुनः संयोग कराना उनके लिये अत्यन्त साधारण क्रिया थी।"[1]

महाभारत में अर्जुन द्वारा चित्र आदि ग्रन्धवों से युद्ध करने, इन्द्रलोक में जाकर बिहार करने और देवताओं के शत्रु राक्षसों का वध करने, इन्द्र सभा में सगीत नृत्य आदि कर्मो में सहयोग देने, देवताओं और गन्धर्वो से प्रत्यक्ष

सम्भाषण करने आदि का विवरण विस्तार से मिलता है अर्जुन आदि पाण्डव एक प्रकार से भगवान् वेदव्यास के ही अंशरूप मे उत्पन्न है युधिष्ठर आदि को उन्हो ने समय समय पर महत्वपूर्ण शिक्षा प्रदान की थी। इसी कारण से वे महाभारत के युद्ध में विजयी होकर कालान्तरः में महाभारत ग्रन्थ के भी आदर्श चरित्र नायक बन सके । वस्तुतः देवताओं के विषय मेंआज संसार यत्किञ्चित् जो भी जानता है वह भगवान् वेदव्यास की ही देन है देवत्व के विषय में विस्तृत जानकारी इतिहास पुराणों एस वेदों आदि से ही होती है ये सभी वेद व्यास जी के ही व्यंसन कार्य है।

व्यास जी ने देवताओं के विषय में सर्वाधिक लिखा है । अत एवं उनका सम्पूर्ण साहित्यव्यासजी ने देवताआं के विषय में सर्वाधिक लिखा है अत एवं उनका सम्पूर्ण साहित्य देव साहित्य कहा जा सकता है। वे देवताओं को मानवों से सर्वोपरि मानते थे , इसलिये ब्रहमसूत्र में वे –

' तदुपर्यापि बादरायण, सम्भवात् ' [1]

ऐसा कहते है। भाव यह है कि मनुष्यो से ऊपर जो देव योनि है उन्हें भी वेदान्त श्रवण मनन आदि द्वारा भगवत्साक्षात्कार का पूर्ण अधिकार है किन्तु मनुष्यों को श्रद्धा पूर्वक देवोपासना करनी चाहिए। उनके आचारणों की अनुकृति नहीं करनी चाहिए।–

न देवचरितं चरेत्।

रूद्रदेव ने विषपान किया, यह उन्ही की समार्थ्य थी। अग्निदेव सब को भस्मसात् कर देते है। सूर्यदेव सम्पूर्ण विश्व को क्षणभर में प्रकाशित आलोकित संदीपित और औठण्य प्रदान कर उसे अनुप्राणित करते रहते है, वासुदेव प्राणियो के शरीर में श्वास का संचालन कर उन्हें जीवित रखते है, इन्द्र वरूण जल वृष्टि द्वारा घन–धान्यरूप बनपतियो की उत्पति करते है और जल एव रस आदि के द्वारा समस्त प्रणिवर्ग को वायुदेव के समान ही आप्यपित संसिक्त और परितृप्त करते रहते है, ये समस्त शक्तियॉ देवताओं कह ही है ।

---

१. कल्याण देवता पु० ६ द्रष्ट पु०

मानव उन का अनुकरण कथमपि नही कर सकता है, देवताओं मे दूरश्रवण, दूरदर्शन त्रिकालज्ञान एवं आवागमन की मनोजवा ।

शक्ति होती है मनुष्य उनकी कृपा से उसका कुछ अंश ही प्राप्त कर सकता है। अतः वे मनुष्यों के उपास्य कहे गये है अनुकरणीय नहीं भगवान् व्यास देव ने इसीलिये विष्णु पुराण, शिव पुराण,गणेश पुराण,कालिका पुराण, देवी भागवत् पुराण, वामन पुराण,नृसिह पुराण,सौर पुराण, सूर्य पुराण,भविष्य पुराण,ब्रहम पुराण,पभ पुराण,अग्नि पुराण,कूर्मपुराण,और स्कन्दपुराण, आदि की रचना कर मनुष्यों को शिव,विष्णु, ब्रह्म,सूर्य गणेश,देवी तथा इन देवताओं के राम कृष्ण,नृसिंह वामन मत्स्य कूर्म वाराह आदि अवतारो तथा शक्तियों की उपासना की विधि बताकर उनकी प्राप्ति का उपाय अति सुगम कर दिया। उनके अकेले पभ पुराण में ही प्रायःसभी देवताओं के शतनाम, सहस्र नाम, चरित्र विस्तार से निरोपत है एव सूर्य पूजा विधि विष्णु पूजाविधि भी साङंगापाड़ वर्णित है।

महर्षि बाल्मीकि ने रामायण की रचना,की, पर व्यासदेव जी ने अध्यात्म रामायण आदि श्रीरामचरितात्मक ग्रन्थो मे जो ब्रह्ममाण्ड पुराण के अंश है भगवान् श्रीराम की सकल उपासना विधि पर प्रकाश डाला है। इससे मनुष्य सहज ही उन की प्रप्ति कर सकता हैं। दृष्ट उपासना में मुर्तिपूजा नाम जप स्तोत्रपाठ शतनाम सहस्र नाम स्तवराज आदि के पाठ चरित्रों का श्रवण मानन उनके रहस्य देवता के प्रति आत्मसमर्ण प्रणाम प्रदक्षिणा यजन उत्सवाभिषेक आदि आवश्यक होते है । भगवान व्यास ने वेदमन्त्रोंसहित पाञ्चरात्र ग्रन्थों का सारांश देकर इन समस्त विधियों को विस्तार से प्रतिपादित किया है।

---

१. ब्रहमसूत्र २/२/२४

महर्षि व्यास के शिष्यो की सख्या बहुत अधिक थी। वे सच्चे अर्थो में जगतगुरू और भगवान् के अवतार भी थे। जैमिनि, सुमन्तु, पैल, शौनक, लोम हर्षण आदि उनके अनेक शिष्य ऐसे थे जिन्होने अलग अलग अनेकों स्वतन्त्र ग्रन्थो की रचना की थी। उनमें भी देव सम्बन्धी विचार उन्हीं के उपदेशों पर आघृत है अयोध्या मथुरा विष्णुद्वार, हरिद्वार, वाराणसी (काशी) द्वारका, जगन्नाथपुरी आदि अनेक तीर्थ और चित्रकूट वृन्दावन, नैमिषारण्य, पुष्करारण्य धर्मारण्य आदि अनेक क्षेत्र देवताओ की और भगवदावतारों की बिहार भूमियॉ रही है। कैलासपर्वत भगवान शिव का निलय है वहॉ से देवशक्तियाँ विशेषतया तथा सन्निहित रहती है भगवान् वेदव्यास ने इनके तीर्थ महात्म्यों की रचना कर वहाँ जाने की विधि और उपासना द्वारा इनके सनिध्य का मार्ग प्रशस्त किया है।

देवमंदिरों को भगवल्लोक का अवतरण बताया गया है उदारणार्थ विष्णुमंदिर, विष्णुलोक का प्रतीक है वहाँ भगवान् विष्णु विशेषरूप से संनिहित रहते है तत्वत यह सम्पूर्ण जगत् देवशिरोमणि विष्णु के अति सूक्ष्म अश से निर्मित है व्यास देव ने –

'एकांशेनास्थितों जगत् '

"पादोऽस्य विश्वा भूतानि पादोऽस्येह द्वाभवत् पुनः" [१]

आदि ने इस भूयो–भूयः सूचित किया है तुलसीदास जी ने भी–

'लव निमेष महुँ भुवन निकाया।

रचै जासु अनुशासन माया।।"

अपिच–

ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रतिवेद का है। [२]

आदि बाते व्यासरचित ब्रह्मवैवर्त पुराण के 'विष्णु के एक लोम ककूप में अनन्त ब्रह्माण्ड संलग्न हैं इसी के आधार पर लिखी है अतः भगवान् केवल विश्वरूप ही नही है उनका लोक, उनके पार्षद, देवतागण अति दिव्य है। किन्तु मन शक्ति से अनके मंदिर में उनके लोक की भवना ओर उनकी प्राणप्रतिष्ठा द्वारा

प्रतिमा में उनकी परमात्मशक्ति को लेकर उपासना द्वारा उनकी पूर्ण कृपा उपलब्धि की अनुष्ठाविधि भगवान् विष्णु ने विष्णु धर्मोन्तर पुराण के तृतीय भाग में अति विस्तार से साडोंपाडं रूप मे निरूपति किया है इसके द्वारा उपासक भगवान् को यही प्राप्त कर पूर्ण कृतार्थ हो सकता है।

विष्णु धर्मान्तर पुराण में देवमंदिर देवप्रतिमा की सम्यक रचनाशैली एवं विधि पर प्रकाश डाला गया है देवता के लिये इष्ट वस्तु पुरण पत्र आदि और शक्ति शिव, विष्णु, आदि के विभिन्न गन्धाष्टक यक्षाकर्दम धूप दीप नैवेद्व शंख घंटा घड़ियाल आदिवाद्यों के दानमाहाल्म्य तथा विविध मुद्राओं एवं विभिन्न उपासना पद्धतियों पर भी प्रकाश डाला गया है। उसके साथ ही मंदिर निर्माण प्रतिष्ठा विधि उत्सव–विधान,भोज्यान्न दान आदि के फल माहात्म्यों पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गयाहै है इस प्रकार भगवान् व्यास ने भक्ति सहित तीव्र संवेग से उपासना कर अतिशीघ्र सभी देवताओं की मानवों के द्वारा प्राप्ति के सभी विधान बताये है। योगध्यान के द्वारा देवता मिलते है स्वाघ्याय से भी मिलते है –

'स्वाध्यायादि ष्टदेवतासम्प्रयोग ' [5]

लिडपुराण में सम्पूर्ण योग क्षेम उहृतकर कर व्यास जी ने योग द्वारा अणिमादि अष्टसिद्धियों तथा देवशक्तियों को प्राप्त कर देवता तुल्य बनकर निर्विकल्पसमशधिका धके द्वारा परमात्म प्राप्ति के उपाय का भी सम्पक् रूप से वर्णन किया है ।

पुराणों में देव देवियों विद्याधर यक्ष गुहयक अण्सरा आदि देव योनियों की अनेक कथायें है ऐसी और भरी देव योनिया से सम्बन्धित अनेको बातों पुराणों में रोचक विधि से निर्दिष्ट है इसके लिये हम भगवान् व्यास के प्रति जितना भी आभार प्रदर्शन करें सर्वथा, तुच्छ होगा। वस्तुतः सच्च देवसमहित्य और सम्पक् देव दर्शन व्यासदेव की वाणी में ही सनिनाहित हेइसके लिये सकल विश्व अनन्त काल पर्यान्त उनकार ऋषि रहेगा ।

सृष्टि के देवता श्री ब्रह्म जी

पुराण में जिस देव को हम ब्रह्म या ब्रह्मदेव के नाम से जानते है वह वेदों में 'प्रजापति'[१] के नाम से अभिहित किये गये है । प्रजाजन तथा जीवित प्राणियों के रक्षकरूप में प्रजापति का अथर्ववेद में प्रायशः आवाहन किया गया है। ऋग्वेद के एक सूक्त [२] में प्रजापति को प्रख्यात आकाश और पृथिवी जल तथा समस्त जीवित प्राणियों के स्रष्टा के रूप में चित्रित किया गया है। इसका प्रजापति नाम सार्थक है अर्थात् उत्पन्न होने वाले समग्रजीवों के वे पति माने गये है। वे सब गतिशील तथा शवास लेने वाले प्राणियों के राजा है। देवों में श्रेष्ठ है उनके विधानों का पालन समग्र प्राणी ही नही वरन् समस्त देवगण भी करते है इन्होनें ही आकाश और पृथिवी को स्थापित किया। ये ही अन्तरिक्ष के सब स्थानों में व्याप्त हैं। ये समस्त विश्व और समस्त प्राणियों को अपनी भुजाओं से आलिंगन करते है । ऋग्वेद के इस वर्णन से प्रजापति की देवों में प्रमुखता की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है। ऋग्वेद में प्रजापति का प्रामुख्याघोतक निर्देश एक ही बार हुआ है परन्तु अथवा और यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में साधरणतः और ब्रहमण में नियमतः से ही सर्वप्रमुख देव के रूप में स्वीकृत किये गये है,, यह देवों के पिता हे[३] इसी ब्रह्ममण के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में एक मात्र इन्हीं का अस्तित्व था।[४] प्रजापति का यही वेद प्रतिपाद्य स्वरूप है ।

---

१. श्री राम चरित मानस बालकाण्ड

---

१. ऋ० १०/६०/३

---

१. ऋ० प्रजापति हिरण्यगर्भ सूक्त ८/७/३३/१०/१२१

२. ऋ० ८/७/३३

३. शतपथ ब्रह्मण ११/१/६/१४

४. शतपथ ब्रह्मण २/२/४/१

मैत्रायणी संहिता [1] में प्रजापति को अपनी पुत्री उषस पर आसक्त होने की कथा मिलती है जो ब्राह्यमणो में अनेक स्थानों पर आवृत्ति की गयी है ।[2] इस कथा का सकेत तो ऋ० के मन्त्रो में भी माना जाता है । ऋग० के इस सूक्त के प्रथम समस्त मन्त्रों मे किसी अज्ञात देवता के विषय में प्रश्नवाचक 'क' शब्द का प्रयोग हुआ है

'कस्मै देवाय हविषा वधिम '[3]

दशम् मन्त्र में इन समस्त प्रश्नो का एक ही उत्तर दिया गया है कि प्रजापति ही इन सब निर्दिष्ट कार्यो का सम्पादन करताहै इस मन्त्र(ऋचा)का पश्चादवर्ती साहित्य पर इतना प्रभाव पडा कि 'प्रजापति की 'क' एक उपाधि ही हो गयी है और 'क' सर्वोच्च देवता का वाचक हो गया है 'हिरण्यगर्भ से भी यही संकेतित होता है

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे

भूतस्यजातःपतिरेक आसीत ।

स दाधार पृथिवी द्यामुतेमां,

कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

'प्रजापति को ही पुराणों में ब्रह्य के रूप मे स्वीकार किया गया है प्रजापति के सम्बन्ध की समस्त गाथाये ब्रह्या के ऊपर आरोपित की गयी हे फलत प्रजापति और उनकी दुहिता की कथा पुराणों मे ब्रह्या के विषय में उल्लिखित की गयी है । क्षीरसागर में शेषशायी नारायण के नाभिकमल के ऊपर ब्रह्यमा का जन्म स्वतः होता है। इसलिये वे 'स्वयम्भू' की संज्ञा से अभिहित किये जाते है। आकाशवाणी के द्वारा प्रेरित किये जाने पर वे उग्र तपस्या सहस्रों वर्षो पर्यन्त की जिसके फलस्वरूप उन्होने इस ब्रह्यण्ड की सृष्टि की सृजन का कार्य ब्रह्यदेव का अपना विशिष्ट कार्य है ।

'सरस्वती उन की पत्नी है और हंस उनका वाहन है हिरण्य कशिपु ने अपने वरदासन के बवसर पर ब्रह्या जी की प्रशस्त स्तुति की है उसमे ब्रह्या जी का स्वरूप श्री नारायण के सदृश ही चित्रित किया गया है वे ज्ञान स्वरूप अजन्मा महान और सम्पूर्ण जीवों के जीवन का दाता अन्तरात्मा माने गये है।

कल्पान्ते काल सृष्टेन योऽन्धेन तमसाऽवृतम्

अभिव्यनग् जगदिदं स्वयं ज्योति स्वरोचिषा।।२६

आत्मना त्रिवृता चेदं सृजत्यवति लुम्पति।

रजःसत्वतमोधाम्ने पराय महते नामः।।२७

नमः आद्याय बीजाय ज्ञान विज्ञान मूर्तये।

प्राणेन्द्रियमनों बुद्धिविकारैर्व्यक्ति मीयुषे।।२८

त्वमीशषे जगतस्तस्थुषश्च,

प्राणेन मुख्येन पतिःप्रजानाम्

चिन्तस्य चिन्तर्मनइन्द्रिद्रयाणं,

पतिर्महान भूतगुणः शयेषः।।२६

त्वं सप्ततन्तून वितनोषि तन्या

त्रय्या चातुर्होत्रकविद्यया च

त्वमेक आत्माऽऽत्मवतामनादि

रनन्तपारःकविरान्तरात्मा।। ३०

त्वमेव का लोऽनिमिषों जनानाम,

आयुर्लयाद्यायवयैः क्षिणेषि।

कूटस्थ आत्मा परमेष्टयओ

महांस्त्वं जीवलोकस्य च जीव आत्मा।। ३१

त्क्तः परं नापरमप्यनेजद्

ऐजच्च किञ्चत् व्यतिरिक्तमस्ति।

विद्या कलास्ते तनवश्च सर्वा

हिरण्यगर्भोऽसि बृहत् त्रिपृष्टः।। ३२

---

१. मैत्रायजी संहिता ४/२/१२

२. ऐतरेय ब्रा० ३/३३, शतपथ ब्रा० १/७/४/१ पचविंशव ब्रा० ४/२/१०

३. ऋ० प्रजापति हिण्यगर्भसूक्त ८/७/३३

४. ऋ० ८/७/३३/१

व्यक्त विभो स्थूल मिदं शरीरं
येनेन्द्रिय प्राणमनो गुणांस्त्वम्
भुडते स्थितों धामनि पारमेष्ठय
अव्यक्त आत्मा पुरूषः पुराणः।। ३३
अनन्ताव्यक्त रूपेण येने दमखिलं ततम्
चिदचिच्छाक्तियुक्ताय तस्मै भगवते नम।। ३४

कार्यकारण चल और अचल ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो ब्रह्मा से भिन्न हो समस्त विद्या और कलायें आप के रूप है। आप त्रिगुणमपी माया से अतीत स्वयं ब्रहमा है। यह स्वर्णमय ब्रह्माण्ड आप के गर्भ में स्थित रहता है। आप इसे अपने में से प्रकट करते है।

त्वत परं नामपरमप्यनेजद
ऐजच्च किञ्चित् व्यतिरिक्तमस्ति।
विद्यां कलास्ते तनवश्च सर्वा.
हिरण्यगभोंडसि बृहत् त्रिपृष्ठः।। (२)

इस पद्य से ब्रह्मा का यत् किञ्चित परिचय प्राप्त होता है।

सृष्टि-विभाग

मत्स्य पुराण के अनुसार आरम्भ में सर्व प्रथम नारायण ही प्रकट हुए और विविध रूपी विश्व के निर्माण की कामना रखने के कारण उन्हों ने अपने शरीर से जालों की उत्पत्ति की, उनमें बीज डाला और एक सोने की अण्डा प्रकट हुआ, उस अण्डे के भीतर सूर्य प्रकट हुआ जो सूर्य एवं ब्रह्मा कहलाया। उसने उस अण्डे के दो भागों को स्वर्ग एवं पृथिवी के रूपों में परिणत किया और उन

---

१. श्रीमद् भागवत पुराण ७/३/२६ – ३४ श्लोक
२. श्रीमद् भागवत् पुराण ७/३/३१

दोनों के मध्य सभी दिशाये निर्मित की तथा आकाश बनाया। उसके उपरान्त मेरू एव अन्य पर्वतो तथा सात समुद्रो (लवण, इक्षु रस आदि वाले समुद्रो) का निर्माण हुआ। नारायण प्रजापति बन गये जिन्हों ने देवो तथा असुरो सहित यह विश्व निर्मित किया। (२)

मत्स्य तृतीय अध्याय में वेदों, पुराणो एव विद्याओ को उन के अधरों से निष्पन्न वर्णित है और आगे वर्ण है कि दस ऋषि उत्पन्न किये। तदनन्तर संख्या सम्बन्धी विश्व रचना का उल्लेख किया है। इसमे वर्णन हैकि गुण तीन प्रकार के है।

१ सत्

२. रज

३. तम

इन के सन्तुलन की स्थिति 'प्रकृति' कहलाती है , जिसे कुछ लोग 'प्रधान कहते है। अन्य लोगों अव्यक्त कहते है यह प्रधान सृष्ठि करता है इन्ही तीनों गुणो से ब्रह्मा विष्णु महेश प्रकट हुए। प्रधान से महान का महान से अहंकार की उत्पति हुई तदनन्तर पञ्च कमेन्द्रियॉ, पञ्चज्ञानेन्द्रियॉ, और एक मन तथा पञ्चतन्त्रायें उत्पन्न हुई। आकाश से वायु, वायु से तेज (अग्नि) तथा तेज से जल की उत्पत्ति हुई। जल से पृथिवी बनी और पुरूष से युक्त होकर पचीस तत्वो से सृष्टि 'पूर्ण हुई।

---

१. मत्स्य पुराण २/२७

२. मत्स्य पुराण ३ अध्याय

३. मत्स्य पुराण ३/५–८ श्लोक

४. मत्स्य पुराण ३/१४–२६

इसके अन्तर मत्स्य पु० एक विलक्षण गाथा [1] कहता है कि ब्रह्मा ने अपने मे एक स्त्री (शतरूपा, सवित्री, सरस्वती ,गायत्री या ब्रह्मा संज्ञा से अभिहित की जाने वाली) की रचना की और उसके सौन्दर्य पर मोहित हो गये और एक लम्बे अन्तराल के उपरान्त उससे एक पुत्र प्राप्त किया जिसका नाम करण हुआ मनु स्वायम्भुव दूसरे पुत्र के होने पर उसका नाम विराट रक्षा उसके अनन्तर ब्रह्मा ने अपने पुत्रों से सृष्टि करने को आदेशित किया। [2]

वायु पुराण ने सृष्टि विषयक बातो पर ५ अध्याय लिखें है जिनमे ६०० से अधिक श्लोक है।[13] ब्रहमाण्ड पुराण में हिरण्य गर्भ के प्रकट होने तथा विभिन्न प्रकार की सृष्टियों का वर्णन है ब्रह्मा पुराण के प्रथम तीन अध्याय (जिनमें लगभग २४० श्लोक) सृष्टि का उल्लेख करते है। प्रथम अध्याय (श्लोक ३४ तथा आगे के श्लोक) में ब्रह्मा को भूतों का स्रष्टा एव नारायण का

भक्त कहा गया है। अग्रिम पंक्तियो मे वर्णन है कि महत् से अंहकार का उदय हुआ तथा पाँच तत्वों की उत्पत्ति हुई। मत्स्य पु० के समान ब्रह्म पु० (१/३७–४१)है इसमें मरीचि अत्रि आदि सप्तर्षियो की जो सात (सप्त) ब्राहमण थे उत्पति का उल्लेख है तथा साध्यों देवो, वेदो, पक्षियों, एवं समस्त जीवों की सृष्टि की भी चर्चा है । इसमें वर्णन है कि विष्णु ने विराज की सृष्टि की जिसने पुरूष की रचना की। तथा पुरूष ने लोगों को उत्पन्न किया। द्वितीय अध्याय में वर्णन है कि पुरूष ने शतरूपा से ववाह किया। इस पुरूष को स्वायम्भुव मनु कहा जाता है। पुरूष स्वायम्भुव मनु और शतरूपा को 'वीर नाम के पुत्र हुआ जिससे प्रियव्रत और उत्तान पाद नामक दो पुत्र हुए। इसके उपरान्त इनके वंशजों का उल्लेख है जिनमें दक्ष की ५० पुत्रियॉ थी जिनमें से १० धर्म को १३ कश्यप को एवं २७ (नक्षत्र) राजा सोम को व्याही गयी । तृतीय अध्याय में देवों एवं असुरों की वर्णन है।

---

१. मत्स्य पु० ३/३०–४४

२. वायु पु० ४–६ वा अधयाय

३. ब्रह्म पु० १/३५

विषणु पुराण के प्रथम अंश के अध्याय २,४,६ एवं ७ में सृष्टि के कई प्रकारो को वर्णन है ।

अध्याय २ विष्णु से ही प्रारम्भ होता है उसमें वर्णन है कि प्रधान एवं पुरूष उसके रूप है श्लोक ३४–५० मे [२] संख्या सिद्धान्त की विस्तार से चर्चा है और श्लोक ५४ में महत् एवं अन्य तत्वों द्वारा हिण्यगर्भ (स्वर्णाण्ड) की रचना का उल्लेख है। अध्याय में वर्णन है कि किस प्रकार ब्रह्मा ने, जो गुणरहित है बोध गम्प नही है, शुद्ध है निष्कलं है, सृष्टि की और इसका उत्तर दिया है कि सभी पदार्थो में कुछ स्वाभाविक शक्तियाँ है जो बोधगम्य नही है अतः ब्रह्म में सृजन शक्ति है।

अध्याय ५ में ६ प्रकार की सृष्टियों का उल्लेखा है जैसे–

१. महत्

२–५ तन्मात्रा

३–५. महाभूत

४. वैचारिक –१० इन्द्रिय १ मन

५. मुख्य (अचल पदार्थ)

६. निम्न श्रेणी के पशुओं

७. ऊर्ध्व रेतों (देवी जीवों)

८. मानवों और

६. कुमारों (सनत् सनन्दन,सनातन और सनत् कुमार)

मार्कण्डेय पु० के अध्याय ४२ में प्रधान, महत् अहंकार तन्मात्रओं की सृष्टि का उल्लेख है, किन्तु ब्रह्मा द्वारा ही इनकी सृष्टि कही गयी है ।

---

१. ब्रह्मा पु० १/५३ – यह ऋ १०/९०/५ पुरूष सूक्त पर आधारित है।

२. विष्णु पु० २/३४–५०

ब्रह्मा जी की प्रतिमा

त्रिदेव में ब्रह्मा प्रथम है। किन्तु 'पञ्चदेव' की कल्पना में ब्रह्मा का महत्व और स्थान विष्णु, सूर्य, शिव और गणेश की अपेक्षा गौण है। इनकी महत्ता गणेश से भी कम है। इस प्रकार के दृष्टि कोण का प्रभाव इनकी उपासना पर भी पडा । इस देव के आधार पर भारतवर्ष में कोई भी सम्प्रदाय खडा नहीं हो सका । वैसे पौराणिक मान्यता में भी ब्रह्मा सृष्टि के स्रष्टा बने रहे। ब्रह्मा के मंदिर भी कम ही बने और अकेले ब्रह्मा की पूजा भी केवल वैदिक ब्रह्मणों –

विप्रान् विदुर ब्राहमणैः।[१]

के द्वारा ही विधि सम्मत् कही गयी है। ब्रहमा की यह दुर्दशा पुराणेंा के अनुसार (जिनमें लिंगोद्रभव प्रसंग आया है)[२] इन की विष्णु की प्रतिद्वन्द्रिता के कारण हुई। विविध पुराणों में ब्रह्मा को गौण पद दिया गया है तथा विष्णु की महत्ता प्रदर्शित करने के लिये उन्हें विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल पर आसीन वर्णन किया गया है।[३] इस कथानक से यह मान्यता प्रामाणित होती है कि ब्रह्मा स्वयं विष्णु से ही उत्पन्न है मार्कण्डेय पुराण मे मधु–कैटभ का जो प्रसंग है[४] वह मुख्यत या विष्णु की महत्ता और ब्रह्म की विपन्नता सिद्ध करने के लिये ही है।

ब्रह्मा के स्वरूप पर सम्पक् विचार बृहत्सहिति[५] में किया गया है। पुराणों में ब्रह्मा के प्रतिभा स्वरूप की चर्चा हैं। मत्स्य पुराण के विवरण निम्न है –

ब्रह्मा कमण्ड लुधरः कर्तव्यः स चतुर्मुख :।
हंसारूढाः क्वचित्कार्य : क्वचिच्च कमलासनः।

---

१. पुराण विमर्श, दशम् परिच्छेद पु० ४६७ द्रष्टव्य

२. लिड पुराण द्रष्टव्य लिंग

३. लिंग पुराण प्रादुर्भाव प्रकाण द्रष्टव्य लिग

४. मार्कण्डेय पुराण ८१ वाँ अध्याय

५. बृत्संहिता ५७/४१

वर्णत· पभगर्भाभश्चतुर्वाहुः शुभेक्षणः।।
कमण्डलुं वाम करे स्रुवं हस्ते तु दक्षिणे।।
वामें दण्डधरं तद्वत स्तुञ्चापि प्रदर्शयेत्।
मुनिभिर्देव गन्ध्वे स्तूयमानं समन्ततः।
कुर्वाणमिव लोकास्त्रीन् शुक्लाम्बरधरं विभुर्म्
मृगचर्म धस्ञ्चपि दिव्यय ज्ञोपवीतिनम्।।
आज्यस्थालीं न्यसेत्पार्श्वे वेदांश्च चतुरः पुन·।।
वाम पाञ्वेडस्य सावित्री दक्षिणे च सरस्वतीम्।
अग्रे च त्रपयस्त द्वत्कार्याः पैतामहेपदे।।[1]

ब्रह्मा की सबसे प्राचीन मूर्ति गान्धार की बौद्धकला में मिलती है। यहाँ ब्रह्मा का अंकन बुद्ध के जन्मप्रसंग में है। जैन मुर्ति विधान में ब्रह्मा का प्रदर्शन जैन तीर्थाकार शीतलनाथ के रूप में या दिक्पाल के रूप में होता है। प्रारम्भ में ब्रहमा की द्विमुख और द्विबाहु प्रतिमा बनती थी। श्मश्रु भी नही प्रदर्शित किया जाता था। चतुर्मुख और चतुर्वाहु की परम्परा मुर्ति विधान में कालान्तर में प्रचलित हुई। मथुरा में मिली चतुर्मुख ब्रह्मा की एक प्रतिमा विचित्र है। इस प्रतिमा में ब्रह्मा के तीन मुख्क पंक्ति में और चतुर्थ मुखवाले, मध्यवाले मुख के ऊपर है [2] यह प्रतिमा कुषाण कालीन है। यही से गुप्त कालीन ब्रहा की एक और मूर्ति प्राप्त है जो स्थानक है इस प्रतिमा मे केवल तीन ही मुख और दो भुजाये है मध्यमुख में श्मश्रुभी प्रदर्शित है मध्यकाल में ब्रहाा की प्रतिमाये सामान्यतया मत्स्य पुराण की मूर्ति विधानीय परम्परा का पालन करती है। आवरण देवता के रूप में बहूशः प्रचलित रहीं। मध्यकालीन ब्रह्मा की प्रतिमाओं में ब्रह्मा या तो ललितासन में चित्रित है या विश्वपभ पर ललिताक्षेप शैली में आसीन चित्रित है।

---

१. मत्स्य पुराण २५६/४०/४५ श्लोक
२. पुराण विमर्श १० प० पृ० ४६८ द्रष्टव्य

भगवान् स्वयम्भू प्रजापति ब्रह्मा ही इस चराचर सृष्टि के स्रष्टा हैं । सर्वजेष्ठ एवं सर्वश्रेष्ठ होने से वे पितामह कहे जाते है। पृथिवी देवी जब भी असुरों के अधर्म भार से परिपीड़ित होती हैं। तो वे देवताओं के साथ स्रष्टा ब्रह्मा के पास जाकर अपना दुःख निवेदन करती हैं भगवान् ब्रह्म देवताओं के साथ उन जगदाधार परम प्रभु की स्तुति करते हैं और जैसा भी भगवान् का आदेश होता है वैसा कार्य करने का आदेश वे देवताओं को देते है। इस प्रकार भगवान के अधिसंरव्य अवतार ब्रहमा जी की प्रार्थना से ही होते हैं और इन अवतारों के समय ब्रह्मा जी समय–समय पर भगवान् की लीलाओं के दर्शन करने पधारते हैं। अपनी आराधना करने वालो को वे अलभ्य वर प्रदान करते है। ब्रह्मा की आराधना से अनेकों ने वर प्राप्त किये है। सृष्टि के आदि मे दीर्ध तपस्या के अनन्तर साक्षात् नारायण ने दर्शन देकर जो तत्वज्ञान ब्रह्मा जी को दिया और उनके हृदय में भगवान् के अनन्त दिव्यरूप गुण तथा लीलाओं का जो प्रकाश हुआ था, उसी भगवत् तत्व का उपदेश ब्रह्मा जी ने नारद जी को दिया और वही उपदेश व्यासादि की परम्परा से श्रीमद्भागवत् के रूप में लोक विस्तृत हुआ। परम् भागवत् ब्रह्मा जी का जीवों पर बड़ा अनुग्रह है यद्यापि उनके मंदिर उपर्युक्त विवेचनानुसार अधिक उपलब्ध नही हैं तथापि कुछ मंदिरों का यहाँ विवरण प्रस्तुत किया गया है जिनमें प्रायः उनकी चतुर्भज दिव्य प्रतिमा और कही–कही सावित्री तथा गायत्री माता के साथ उनका श्री विग्रह प्रतिष्ठित है और भक्तगण उनका दर्शन पूजन करते हैं।

१. राजस्थान प्रान्त के अजमेर जनपद के अजमेर शहर से ७ मीलदूर प्रसिद्ध पुष्कर तीर्थ है यह तीर्थ पुरोहित के नाम से भी प्रसिद्ध है। यहॉ ब्रहमा जी ने यज्ञ किया था। यहाँ का मुख्य मंन्दिर ब्रहमा जी का ही है। यह पुष्कर सरोवर से थोड़ी दूरी पर है। मंदिर में ब्रहमा और गायत्री देवी का मंन्दिर है। पास में एक ओर सनकादि मुनियों की मूतियों है। एक छोटे मंन्दिर में नारद जी तथा हाथी पर आसीन कुबेर की मूर्तिया हैं। पुष्कर में सरस्वती नदी में स्नान का विशेष महत्व है।

कथा-- पद्म पुराण के अनुसार सृष्टि के आदि में पुष्कर तीर्थ के स्थान में 'वज्रनाभ' नामक राक्षस रहता था, जो बालहन्ता था। ब्रहमा जी के मन में यज्ञ

करने की इच्छा उत्पन्न हुई। वे भगवान् विष्णु की नाभिकमल से जहाँ प्रकट हुए थे , उस स्थान पर आये और जहॉ अपने हाथ के कमल को फेंक कर उन्होंने उससे वज्रनाभ राक्षस को मार दिया। ब्रहमा जी के हाथ का कमल जहाँ गिरा था, वह सरोवर बन गया है जिससे पुष्कर कहते है।

चन्द्रनदी के उत्तर सरस्वती नदी के पश्चिम, नन्दनस्थन के पूर्व तथा कनिष्ट पुष्कर के दक्षिण के मध्यवर्ती क्षेत्र को यज्ञवेदी बनाया या इस यज्ञवेदी में उन्होने ज्येष्ठ पुश्कर मध्यमपुष्कर कनिठ पुश्कर ये तीन पुष्कर तीर्थ बनाये । यज्ञ मे सभी देवगण तथा ऋषिगण पधारे । ऋषियों ने आस पास अपने आश्रम बना लिये । भगवान् शंकर भी कपाल धारी बनकर पधारे । यज्ञारम्भ में सावित्री देवी के आने में विलम्ब होने से यज्ञ का मुहूर्त गत हो रहा था। इससे ब्रहमा जी ने गायत्री नाम की गोप कुमारी से विवाह कर के उन्हें यज्ञ में साथ बिठाया। जब सावित्री देवी पधारी तब गायत्री को देखकर रूष्ट हो वहाँ से पर्वत पर चली गयी और वहाँ उन्होने दूसरा यज्ञ किया कहा जाता है कि यहीं पर ब्रहमा जी के नासाछिद्र से वाराह भगवान् का प्राकटय हुआ था। अतः तीनों पुष्कर तीर्थ के अतिरिक्त ब्रहमा जी, वाराह भगवान, कपालेक्ष्वर शिव, पर्वत पर सावित्री देवी और ब्रहमा जी के यज्ञ के प्रधान महर्षि अग्रस्त्य इस क्षेत्र के मुख्य देवता हैं।

२. गुजरात प्रान्त में अहमदाबाद से आगे खेड ब्रहमा नाम का स्थान है यहाँ हिरण्याक्षी नदी बहती है। नदी के पास ब्रहमा जी का एक मंदिर है, जिसमें चतुर्मुख ब्रहमा जी की प्रतिमा प्रतिष्ठित है पास में एक कुण्ड तथा ' जाम्बादेवी का मंदिर है। पास ही भृगु आश्रम है कहा जाता है कि यहाँ ब्रहमा जी ने यज्ञ तथा महर्षि भृमुने तप किया था इसीलिये इसे भृगुक्षेत्र कहते है।

३. नर्मदा नदी के दक्षिण तट पर करोटा से ४ मील दूर जीगोर नामक स्थान है। कहते हैं कि यहाँ ब्रहमा जी ने तपस्या की और 'ब्रहमेश्वर नाम के मंदिर की स्थपना कर ब्रहमेश्वर मूर्ति प्रतिष्ठित की ।

४. गया से कुछ उदूर ब्रह्मयोनि पर्वत पर ब्रहमा जी का एक मंदिर है इस पर्वत पर दो पत्थर गुफा के ढंग से पडे है। इन्हें ब्रहमयोनि और मातृयोनि

कहते है। पर्वत शिवर से कुछ नीचे ब्रहम कुण्ड नामक एक सरोवर है

ब्रह्मा स्वर्दुहितुः पतिः विवेचन

ब्रह्मा अपनी पुत्री (वाग् या सरस्वती)के पति थे, जिसका उन्होने धर्षण किया । यह एक वैदिक प्रतीक है। वेद में जिस प्रकार से यह उपन्यस्त है, पुराणो ने भी उसी रूप मे बिना किसी परिवर्तन के ही ग्रहण किया है पुराणों पर इस वर्णन के लिये तीव्र दोष आरोपित किया जाता है कि यह एक समाज विरोधी तथ्यों का वर्णन कर धर्मविरूद्ध आचारण को प्रोतसाहन देता है। इस कथा के पीछे विद्यमान प्रतीक को यथार्थ रूप से समझनकी आवश्यकता है।

पुराण ने वैदिक गाथा का कई अंशो की पूर्तिकार उचित परिवृंहण किया है। वैदिक गाथा का स्वरूप संक्षेप मे इस प्रकार है–
प्रजापति ने अपनी दुहिता का धर्षण किया 'प्रजापति : स्वां दुहितुरमधिढकन् ' [1]

---

१. ऋ० वाचं दुहितंर तन्वी स्वापम्भूहरती मनः अकामा
चक्रमें प्रान्तः सकाम इति नः श्रुतम् १०/६१/७।

तमधर्मे कृतमतिं विलोक्य पितरं सुता.।
मरीचिर्मुख्या मुनयों विश्वम्भात्प्रत्यवोधयन्।।
नैतत्पूवै कृतं त्वद्ये न करष्यिन्ति चापरे।
यत्वं दुहितरं गच्छेरनिगृहयाडं०जं प्रभुः।।
तेजी यसामपि हयेतन्न सुपलोक्यं जगदुरो।
यदवृत्तमनुतिष्ठन वै लोकः क्षेमाय कल्पते।।
तस्मै नमो भगवते य इदं स्वेन रोचिषा।
आत्मंस्थं व्यञ्जयामास स धर्म पातुर्हति।।
स इदं गृणतः पुत्रान् पुरो दृष्टवा प्रजापतीन्।
प्रजापति पतिस्तन्वं विस्तनवं तत्याज ब्रीडितस्तदा ।। [५]
श्रीमद् भगवतत पुराण ३/१२/२८–३३ श्लोक

'प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायत्

दिवमित्यन्ये आहुः उषसमित्पन्ये।।'[२]

अर्थात् प्रजापति ने अपनी दुहिता का अनुगमन किया इसका समर्थन शतयथ ब्रहा भी करता है।

'प्रजापतिः स्वां दुहितवरभिदध्यौ'[३]

अर्थर्ववेद एक कदम और आगे बढ़कर कहता है कि

' पिता दुहितुर्गर्भमा धत्'[४]

अर्थात् पिता ने पुत्री में गर्भ स्थापित किया ।

इसी की पुष्टि ताण्डय ब्राण करता है कि

'प्रजापतिर्वा इदमासीत तस्य वाक द्वितीयासीत्

तां मिथुनं समभवत् सा गर्भमाधन्त।[४]

अर्थात् प्रजापति आरम्भ में अकेला था वाक् (सरस्वती दूसरी थी। ये दोनों मिथुन बने। तब वह वाक् गर्भवती हुई।

इन उपर्युक्त समस्त उदकरणों से कथानक का संक्षिप्त रूप स्पष्ट हो जाता है।

---

१. ऐतरेय आरण्यक ३/३३,

२. शतपथ ब्रा० १/७/४/१

३. अथर्ववेद ६/१०/१२,

४. ताण्डय ब्रा० २०/१४/१,

५. श्रीमद् भा० पु० ३/१२/२८–३३

श्रीमद्‌भागवत् पु० में ब्रह्मा–सरस्वती का यह प्रसंग इसी रूप मे वर्णित है 'काम' के वशीभूत हो स्वयम्भू ने कामनाहीन 'वाक्' नाम्नी अपनी पुत्री को चाहा ऐसा हमने सुन रखा है अपने पिता को इस अधर्म कार्य मे कृत मति देखकर मारीचि आदि पुत्रों ने उन्हें समझाया ' आज तक किसी ने भी ऐसा जघन्य कार्य नहीं किया है और आगे भी कोई ऐसा कार्य न करेगा। अतः आप को भी ऐसे कार्य में आसक्ति रखना नितान्त अनुचित और अधार्मिक है। पुत्रों को इस प्रकार कहते हुए देखकर प्रजापति ने लज्जित हो कर अपने शरीर का त्याग कर दिया।

दोनों कथाओं का एक ही आकार है भागवत् ने एक बात और भी जोड दी है कि अधर्म के प्रति अपनी अभिरूचि देखकर तथा अपने ही पुत्रो द्वारा अपमानित किये जाने पर प्रजापति ने अपना वह शरीर त्याग दिया। यह उचित प्रायश्चित है इस का निर्देश मूलगंन्थ मे नही ही है। इस कथा के भीतर एक गम्भीर आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक तथ्य है जिसके न जानने से ही कथा में अश्लीलता तथा अनाचार की अभिव्यक्ति हो रही है जिसका निराकारण इस प्रकार किया जा सकता है ।

क-- वैज्ञानिक तथ्य का निरूपण

प्रजाओं के पालन करने के कारण सूर्य ही प्रजापति है यह दैनिन्दन कृत्य है एवं दृश्य है कि प्राची क्षितिज पर जो प्रभा फैलती है वह 'उषा' कहलाती है । वह उषा सूर्य से ही उत्पन्न होती है। इसलिये वह सूर्य पुत्री कहलाती है, फिर सूर्य ही उसमें अपनी अरूण किरणों को प्रकाश रूप बीज का सन्निवेश कर दिवस रूपी पुत्र को उत्पन्न करता है। अरूण किरण रूपी बीज के निक्षेप के कारण ही दोनों मे स्त्री पुरूष का उपचार किया गया है । इस प्रकार सूर्य और उषा का दैनन्दिन व्यवहार यहाँ ब्रह्मदुहितृ रूप में वर्णित है उषा का सूर्य द्वारा अनुगमन पुत्री का पिता के द्वारा अनुगमन माना गया है और अरूण किरणों को विशेष कर दिन की उत्पति वीर्याधान की व्याख्या है। यही वैज्ञनिक तथ्य इस कथा के द्वारा

अभिव्यक्त किया गाया है। 'परोक्षप्रिय .हि देव'प्रत्यक्ष द्विष·' की शैली के आधार पर प्रत्यक्ष दृश्य घटना का यह परोक्षा संकेत है[१] श्रीमद्भागवत् ने इस कथानक के वर्णन मे इस संकेत की संक्षेप में अभिव्यक्ति की है ।

---

१. इस व्याख्या का बीज ब्राह्मण ग्रन्थों में भी है–
"प्रजापति रूप समर्ध्यति स्वां दुहितरम।"
ताण्डय ब्रा० ८/२/१०
जिसका पल्लवन कुमारिल भटट् ने अपने तन्त्रवार्ता मे किया है।
प्रजापति स्तावत् प्रजापालना धिकात्
आदित्य एवोच्यते। सच अरूणोदय वेलायामुषसमु
द्यन्नभ्यैत्। सा च तदागमना देवोपजार्यति इति तद्
दुहितत्वेन व्यपदिश्यते । तस्यां चारूणकिरणारव्य
बीज निक्षेपात् स्त्री पुरूषयोगवदुप चारः।।
तन्त्रवार्तिक १/३/७

'वाचं दुहिवरं तन्वीम् में तन्वी शब्द के प्रयोग व्यञ्जना से प्रकट करता है कि यह दुहिता कोई स्थूल शरीर वाली न हो कर सूक्ष्म शरीरिणी है तथा निषेद्धा मानस पुत्रों में 'मरीचि' ऋषि का उल्लेख प्रकारान्तर से किरण का भी बोधन करता है इस प्रकार भागवत पुराण सूर्य उषा परक तात्पर्य को संकेत द्वारा प्रकट करता है ऐतरेय आरण्यक की तरह इसी तथ्य को ऐतरेय ब्राहमण भी निम्न वाक्य में अभिव्यक्त करता है ––

"प्रजापति स्वां दुहितरमभ्यध्यायत् दिवमित्यन्ये उषसमित्यनयेके"[१]
अर्थात "सूर्यादय से कुछ पूर्व जो प्रकाश आता है उसे उषा कहते है यह उषा सूर्य से ही उत्पन्न होती है इसलिये यह सूर्य की दुहिता मानी गयी है "अत्रापि उषा में सूर्य द्वारा प्रकाश निक्षेप के कारण उसे वीर्यदान माना गया है एवं सर्वत्र उषा आगे आगे चलती है और सूर्य उसके पीछे लगा रहता है यही स्त्री का अनुगमन करना माना गया है।

उपर्युक्त अर्थ उषा पक्ष के है घुपक्ष का विस्तार से अर्थ ऐतरेय ब्रह्ममण में प्राप्त होता है जिसकी आख्यणिका में कहा गया है कि जब प्रजापति ने दुहिता का अनुध्यान किया तो देवताओ ने प्रजापति को अस अनर्थ से विरत करने का विचार किया किन्तु जब किसी एक देवता में रोकने का सामर्थ्य न देखा गया तब समस्त देवताओं ने मिल कर अपना अपना घोर स्वरूप एकत्र किया।

उस एकत्र हुए घोर रूप से 'रूद्र नामक देवता उत्पन्न हुआ। रूद्र को प्रकट देखकर उससे सभी देवताओं ने निवेदन किया कि प्रजापति यह अनर्थ कर रहा है इसका तुम सिर काट डालो ।

इस पर रूद्र ने कहा कि मुझको इसका क्या पारिश्रमिक मिलेगा। देवताओं ने कहा कि तुम सब पशुओं के पति बना दिये जाओगे इस आश्वासन के पश्चात् रूद्र ने प्रजापति का शिखूछेद कर दिया। विद्ध प्रजापति ऊपर उठा,जिसको 'मृग' कहा जाता है उस समय प्रजापति को जो ऐतस्पात हुआ वह सरोवर बन गया। इस घटना को देखकर देवताओ ने विचार कर निश्चय किया कि यह सरोवर प्रजापति का रेत है इस दूषित न किया जाय। यहाँ उन्होने इसके लिये "ऋमा दुषत्" शब्द का प्रयोग किया। यही 'मा दुषत्' शब्द आपभ्रश में 'मानुष' बन गया है। इस तरह वहॉ कई रूपों में दिव का वर्णन किया गया है, जिन में रोहिणी का भी एक आख्यान हे जिसके विवरण में आता है कि 'ब्रहमहृदय' नामक जो तारा आकाश में दृष्टि गोचर होता है वही 'रोहिणी' तारा है उसका नाम आधुनिक काल में भी 'रोहिणी ' ही प्रचलित है, उसके ठीक सामने १४ वॉ नक्षत्र 'ज्येष्ठ ' पद वाच्य है। 'रोहिणी को लक्ष्मी और 'ज्येष्ठा ' को 'दरिद्रा' कहते है। इसके माने हुआ कि 'रोहिणी' से 'ज्येष्ठा' तक जब 'चन्द्रमा ' गमन करता है तब वह समृद्धि की ओर बढ़ता है और ज्येष्ठा की ओर से जब आगे बढ़ता है तब यह मानों दरिद्र भाव का सूचक होता है ' शिव महिम्नः ' स्तोत्र में इसका एक श्लोक आता है जिसमें भी इन ताराओं का सनिवेश वर्णित है प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं गतं रोहिद्भृतं रिरमयिषुमृप्यस्य वपुषा।

---

१. ऐतरेय ब्रह्मा १३/६ ,

धनुष्पाणेर्यान्तर्न्दिवर्मापि सपत्रा कृतममुन्त्र सन्त तेऽद्यापि त्यजति न मृग व्याधर भस.।।[1]

वहाँ एक मृग का सा तारा दिखलाई पडता है उसके पास ही कटे सिर का सा एक तारा दिखलाई पडता है इन्ही ताराओं का वर्णन इस आख्यापिका में चित्रित किया गयाहै

ख-- आध्यात्मिक रहस्य का विवेचन

वेदों में 'मन' की ही संज्ञा ' प्रजापति' है – यत्प्रजापतिस्तन्मनः । [2]

तथा

'वाक्' की संज्ञा 'सरस्वती' – वाग् वै सरस्वती। [3]

मन की सन्ता वाणी से पूर्ववर्तिनी होती है, मनुष्य जो भी प्रथमतः संकल्प लेता है उसे ही वह वाणी द्वारा प्रकट करता है मन की सन्ता प्रथम हे तदननतर वाणी की स्थिति होती है।

इस पारस्परिक सम्बन्ध के कारण मन पिता (ब्रह्मा या प्रजापति) कहलाता है और वाकृ(सरस्वती) उसकी दुहिता बनती है। जब मन रूपी पिता वाणी रूपी अपनी पुत्री में प्रेरणा रूपी वीर्य का अधिष्ठान करता है, तब शब्द रूपी पुत्र का जन्म होता है। इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य का आविष्कारण कर इस कथा के मूल में वर्तमान है इस अर्थ की सूचना ब्रह्म वैवर्त पुराण में भी वर्णित है।

---

१. शिव महिम्न स्वोत्र २२ वाँ श्लोक

२. जैमिनि उप० १/३३/२

३. कौषीत कि ब्रा० ५/१,

ग-- आधिदैविक पक्ष का विवेचन

आधिदैविक स्तर पर भी इसकी व्याख्या की जा सकती है। वैदिक मन्त्रों के समान ही पौराणिक कथाओ की भी व्याख्या तीनों स्तरों को दृष्टि में रखकर की जा सकती है। वैदिक मन्त्रों की इस त्रिविध व्याख्या का माग्र यास्क ने अपने निरूक्त में पूर्व में ही प्रशस्त कर दिया है। आधिदैविक रूप में भी यह कथानक एक सारगर्भित तथ्य की अभिव्यञ्जना करता है ।

सृष्टि के अवसर पर ब्रह्मा जी ने अपने शरीर को द्विविध विभक्त कर वाम भाग से स्त्री तथ दक्षिण भाग से पुरूष की रचना की [१] और इन दोनों के सयोग से ही समस्त सृष्टि मनुष्य पशु गाय अश्व आदि की उत्पत्ति हुई। शतपथ ब्राह्मण [२] में इसका विवरण

अतिविस्तृत प्राप्त होताहै तथा मानव पशु सृष्टि की प्रक्रिया इसी आदिम सृष्टि रहस्य की प्रतिपादिका है।[१]

व्यावहारिक दृष्टि से भी इसकी पर्यालोच न करने पर इसमे अधर्म की बात कही नही खटकती। इस अधार्मिक कृत्य की निन्दा तब उचित होती जब इसका कर्ता बिना दण्ड प्राप्त किये रह जाता है प्रायश्चिन्त किये बिना जीवित बच जाता। वह तो हुआ नहीं। लोक के सृष्टा होने पर भी ब्रह्मा को इसका दण्ड भोगना पड़ा और वह उग्र दण्ड था। अपने प्रिय प्राणों का भी धर्मवेदी पर समर्पण अर्थात् उनका त्याग –

स इत्थं गृणतः पुत्रान् पुरो दृष्टवा प्रजापतीन्।
प्रजापतिपतिस्तन्वं तत्याज व्रीडित स्तदा।।[२]

---

१. द्विधाकृत्वाऽत्मनों देहमर्धेन पुरूषोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां तु विरा जमसृजत् प्रभुः।।

२. शतपथ ब्रह्मा १४/३/४१३ मनुस्मृति १/३२

इस प्रकार नाना दृष्टियों से विचार करने से इस बहुशः चर्चित तथ अनेकश· निन्दितः कथा का मूल रहस्य सातिशय गम्भीर तथा गौरव शाली है। उसी रहस्य की पीष्किा पर आश्रित होने से यह कथा सारवती तथा महिमान्वित है। इस प्रकार पुराणों ने वैदिक प्रतीकों का सरल सुबोध तथा सहेतुक व्याख्यान प्रस्तुत कर उन्हे जनसाधारणार्थ ग्राहय तथा आदरणीय प्रतिष्ठा प्रदान किया है।

---

१. पुराण दिम्दर्शन (तृतीय संस्करण) ले० पं० शास्त्री
माधवाचार्य प्र० माधव पुस्तकालय, देहली पृ० ४१०–७२० द्रष्टव्य

२. श्रीमद् भागवत पु० ३/१२/३३

अध्याय ५

संहार या प्रलय के अधिपति श्री शिवजी

संहार या प्रलय के अधिपति श्री शिवजी
वैदिक रूप

शिव की महत्ता के उदय होने का इतिहास अतिरमणीक एवं मनोरम है । पौराणिक काल से अनवरत आधुनिक काल पर्णन्त रूद्र को जितना महत्व तथा प्राधन्य प्राप्त है शायद वैदिक काल मे उतना नही रहा होगा। आधुनिक काल में भगवान् विष्णु के साथ साथ शिवजी हम हिन्दुओं के प्रधान देवता हैं परन्तु इस प्रध ाानता का क्रमिक विकास शनैः शमैः शताब्दियों में सम्पन्न हुआ है। ऋग्वेद,यजुर्वेद, अथर्ववेद, शतपथ ब्रा० आदि ग्रन्थो के अध्ययन करने से रूद्र के विषय में अनेक तथ्यों का अनुसंधान किया जा सकता है। ऋग्वेद में केवल तीन सूक्त–

प्रथम मण्डल का ११४ वॉ सूक्त

द्वितीय मण्डल का ३३ वाँ सूक्त

सप्तम् मण्डल का ४६ वॉ सूक्त

रूद्र देवता के सन्दर्भ में उपलब्ध होते है। इनके अतिरिक्त अन्य देवताओ के साथ इनका नाम लगीगग ५० बार आवृन्त हुआ है। ऋग्वेद में रूद्र का स्थान अग्नि,वरूण इन्द्र आदि देवताओं की अपेक्षा बहुत ही कम महत्व का है परन्तु यजुर्वेद तथा अथर्वेद में रूद्र का स्थान बहुत कुछ महत्व संर्वलित है यजुर्वेद का एक पूरा अध्याय ही इनकी स्तुति में प्रयुक्त हुआ है। यह 'रूद्राध्याय' यजुर्वेद की अनेक संहिताओं में न्यनधिक् अन्तर से उपलब्ध होता है तैन्तिरीय सद्रिता की १६ वाँ अध्याय ' रूद्राध्याय ' के नाम से विख्यात है अथर्वेद के ११ वें काण्ड के द्वितीय सूक्त में रूद्रदेव की स्तुति की गयी है।

ऋ० में रूद्र का स्वरूप निम्नरूपेण वर्णित है–

रूद्र० के हाथ तथा बाहु है।[१]

१ इनका शरीर अति, बलिष्ठ है उनके ओष्ठ अत्यन्त सुन्दर है 'सुशिप्रः'

---

१. ऋ० २/३३

उनके मस्तक पर बालों का जटाजूट है। जिसके कारण वे 'कापर्दी' कहलाते है।[१] उनका रंग भूरा है 'वभु' तथा आकृति देदीप्यमान है। वे नाना रूप धारण करने वाले है ' पुरूरूपः' तथा उनके स्थिर अड० चमकने वाले सोने के गहनों से विभूषित है वे रथ पर सवार होते है।

यजुर्वेद के रूद्राध्याय में तथा अथर्वेद के रूद्रसूक्त में उनके स्वरूप का इससे कहीं अधिक विशद वर्णिन प्राप्त होता है। रूद्र के मुख, चक्षु, त्वक,अंग उदर जिहवा तथा दांतों का बहुत ही रोचक वर्णन किया गया है। उनके सहस्रनेत्र हैं' सहस्राक्ष': उनकी गर्दन का रंग नीला है 'नीलग्रीव' परन्तु उनका कण्ठ उज्जवल रंग का है।–

"शितिकण्ठः"

" ॐ नमों नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च।"[३]

उनके माथे पर जटाजूट का वर्णन है किन्तु कभी कभी वे मुण्डित केश "व्युप्त केश"[४] भी हो जाते है उनके केश लाल रंग या नीले रंग के है। "हरिकेश"[५] वे माथे पर पगडी पहनने वाले है। "उठणीषी"[६] रग उनके शरीर का कपिल हैं "बभ्युशः"।[७]

रूद्राध्याय के अनुसार रूद्र एक बलवान् सुसज्जित योद्धा के रूप में हमारे समक्ष आते है। उनके हाथ में धनुष तथा बाण है उनके धनुष का नाम " पिनाक है।[८] उनका धनुष स्वर्ण निर्मित सहसो को मारने वाला सैकड़ो वाणों से सुशोभित तथा मयूर पिच्छ से विभूषित बतलाया गया है।

---

१. ऋ० १/४१/१
२. अथर्ववेद ११/२/५–६ मन्त्र
३. यजुर्वेद (शु० माध्यन्दिन शाखा) १६/२८
४. यजुर्वेद (शु० माध्यन्दिन शाखा) १६/२६
५. शु० या० मा० शाखा १६/२८
६. शु० या० मा० शाखा १६/२२
७. शु० या० मा० शाखा १६/१८
८. शु० यजु० माध्यन्दिन शाखा १६/५१ .

" धनुर्विभर्षि हरितं हिरण्यं सहस्राणि शतवधं शिखण्डिनम्।।"[१]

वाणों को रखने के लिये वे तरकश ' इषुधि' धारण करते है जो संख्या मे सौ है उनके हाथ में तलवार भी चमकती रहती है 'निषडगो तथा इस तलवार के रखने के लिये उनके पास म्यान " निषड०धि " है। वे वज्र भी धारण करते है।। बज्र का संज्ञा सृक" है।[२] शरीर की रक्षा करने के लिये वे अनेक साधनों को पहने हुए है। माथे की रक्षा करने के लिये वे शिरस्त्राण धरण करते है " विल्मी "[३] और शरीर रक्षार्थ कवच तथा वर्म पहने हुए है।

" ऊॅ कवचिने च नमों व्वर्म्मिणे च। "[४]

महीधर की टीकानुसारेण वर्म कवच से भिन्न होता था।[५] कवच कपडों का सिला हुआ ' अंगरखा' के ढग का कोई पहनावा था। वर्म खासा लोहे का बना हुआ ' जिरह बख्तर था। कवच के ऊपर वर्म पहना जाता था। रूद्र शरीर पर चर्म का कपड़ा धारण करते हैं। 'कृत्तिवसानः[६]

इस से स्पष्ट प्रतीत होता हैं। कि जिस तरह रथ पर चढ़कर धनुर्वाण से सुसज्जित योद्धा स्थाङण में शत्रुओं के सहार के लिये जाता है उसी भांति रूद्र शिर पर बिल्म तथ देह पर कवच और वर्म पहनकर रथ पर आसन मार धनुष पर बाण चढाकर अपने भकतों के बैरियो को मारने के लिये मैदान में उतरते है धनुष पर बाण हमेशाा चढ़ाये रहते हैं, एतदर्थ उनका नाम ' आततायी ' भी है। इनके अस्त्र शस्त्र इतने भयानक है कि ऋषि इनसे बचने के लिये सदा प्रार्थना किया करते है–

---

१. अथर्व० १/२/१२
२. शु० य० १६/२१
३. शु० य० १६/३५
४. शु० य० १६/३४
५. पटस्यूतं कपासगर्भ देहरक्षकं कवचम् लोहमयं शरीर रक्ष कं वर्मा 'शु० य० १६/३५ पर मही धर भाष्यं।
६. शु० य० १६/५१

विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यों बाणवॉ उत।
अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषडधिः।

रूद्र का शरीर नितान्तः बलशाली है। ऋ० में वे क्रूर वर्णित हैं। वे स्वर्ग लोक के 'अरूष' (वराह) हैं[२] वे सबसे श्रेष्ठ वृषभ है, वे तरूण है, उनका तारूण्य सार्वकालिक है। वेशूरो के अधिपति हैं, और अपने सामर्थ्य से वे पर्वतस्थ नदियों में जल का प्रवाह उत्पन्न कर देते है। उन्हें न मानने वाले मनुष्यों को वे अवश्य अपने वाणो से छिन्न भिन्न कर देते है परन्तु अपने उपासक मनुष्यों के लिये वे अत्यन्त उपकारी है इसलिये वे 'शिव' नाम से पुकारे जाते है। उनके सम्बन्धियों का परिचय मन्त्रों के अध्ययन से चलता हैं। रूद्र मरूतों के पित० हैं।[१]यही कारण है कि अनेक मन्त्रों में मरूत् तथा रूद्र की स्तुति एक साथ की गयी मिलती है। मरूतो के ' रूद्रिय' संज्ञा प्राप्त होने के विषय में षडगुरू शिण्य ने ' सर्वानुक्रमणी की ' वेदार्थ दीपिका ' में एक रोचक आख्यान प्रस्तुत किया है। उसी प्रसंग को लेकर ' नीतिमञ्जरी' कार ने यह उपदेश दिया है।

दृष्टवा परव्यथां सन्त उपकुर्वन्ति लीलया।
दितेर्गर्भव्यथां हृत्वा रूद्रद्रभन्मरूतां पिता।।[२]

रूद्र के लिए 'त्र्यम्बक' शब्द का प्रयोग (व्यवहार) प्रचुर मात्रा में पाया जाता हैं। इस 'त्र्यम्बक का प्रयोग ऋ० के केवल एक ही मन्त्र में किया गया है जो शु० य० में भी उदृत है। रूद्र स्तुति परक यह मन्त्र नितान्त प्रसिद्ध है–

" ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारूकमिव बन्धान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात।।

---

१. शु० प० १६/१०

२. ऋ० १/११४/५

'त्र्यम्बक' शब्द का अर्थ समस्त भष्य कारो ने 'तीन नेत्र वाला ' किया है। परन्तु पाश्चार्हय विद्धानों की आस्था इस अर्थ में नही हैं। वे यहाँ 'अम्बक' शब्द को जननी वाचक मानकर रूद्र को तीन माता वाला बतलाते हैं। परन्तु यह स्पष्टत प्रतीत नहीं होता कि रूद्र की ये तीन मातायें कौन सी थी। वैदिक काल के अनन्तर रूद्र पत्नी के लिये' अम्बिका ' शब्द का प्रयोग प्रथम बार वाजसनेयी संहिता । [१] (यजुर्वेद) में आता है परन्तु इतना अन्तरं अवश्य है कि यह उनकी पत्नी का नाम न होकर उनकी ' भगिनी' का नाम निरूपित है–

एष ते रूद्र भागः सह स्वस्राऽम्बिकया।

त जुषस्व स्वाहैष ते रूद्र भाग आखुस्ते पशु.।[२]

इनकी पत्नी के अन्य नाम वैदिक ग्रन्थों मे मिलते है। "पार्वती शब्द तैन्तिरीय आरण्यक में और " उमा हैमवती" शब्द केन्नोपनिषद् में प्रयुक्त है।

ॐ स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम

बहुशोभमाना भगवान मुमां हैमवती ताँ होवाच किमेतद् यक्षमिति ।।[३]

इस प्रकार ऋ०वेदीय देवमण्डली मे रूद्रका स्थान नितान्त नगण्य सा प्रतीत होता है। परन्तु अन्य संहिताओं में इनका महत्व बढ़ता सा दृष्टिगोचर होता है। रूद्रध्याय में रूद्र के लिये 'भव, शर्व, पशुपति, उग्र भीमं आदि शब्दों का प्रयोग ही नहीं मिलता, वरन् प्रत्येक दशा मे प्रत्येक प्राणियों के ऊपर इनका अधिकार नियत रहता है। विश्व में ऐसा कोई भी स्थान अवशिष्ट नहीं हैं। चाहे वह स्वर्लोक में, अन्तरिक्ष में भूतल के ऊपर या भूतल के नीचे हो जहाँ भगवान् रूद्र देव का आधिपत्य न हो। यह समस्त विश्व सहस्रों रूद्रों की सत्ता से ओत प्रति प्रोत हे। रूद्र जगत् के समग्र पदार्थों के स्वामी है। वे अन्न पति, क्षेत्रपति, वनाधिपति हैं साथ ही चोर, डाकू ठग आदि जघन्य जीवों के भी वे अधिपति हैं।

---

१. ऋ० १/११४/५

२. नीति मञ्जरी (पुराण विमर्श १० परिच्छेद पृ० ४७०)

३. ऋ० ७/५३/१४

अथर्ववेद में रूद्र के नामों में भव,शर्व,पशुपति,और भूतपति उल्लिखित हैं।[2] अपशुपति का तात्पर्य इतना ही नही है कि गाय आदि पशुओं के ऊपर उनका अधिकार चलता है परन्तु पशु के अन्तर्गत मनुष्यों की गणना अथर्ववेद को मान्य है।

ॐ तवे में पञ्च पशवो विभक्ता

गावों अशवाः पुरूषा अजावयः।[3]

इस प्रकार 'पशु'के तान्त्रिक अर्थ का आभास हमें अथर्ववेद के इस मन्त्र में सर्वप्रथम प्राप्त होता है। जिसमें समग्र भुवन निवास करते हैं वह नाना वस्तुओं को धारण करने वाले विस्तृत ब्रहमाण्ड रूपी कोश रूद्र की अपनी वस्तु है। रूद्र का निवास अग्नि में, जल मे, ओषधियों एवं लताओं में ही नहीं है बल्कि उन्होने इन समस्त भुवनों की रचना कर उन्हें सम्पन्न बनाया है।

ॐ अग्नौ रूद्रो य अप्स्वन्त

र्य ओषधीवीरूध आविवेश

य इमा विश्वा भुवनानि चाकलृपे

तस्मै रूद्राय नमों अस्त्वग्नये।।[1]

उपर्युक्त शोभन मन्त्र रूद्र की महत्ता स्पष्ट शब्दों में उद्‌घोषित कर रहा है। सहिता काल के पश्चात् ब्रह्यमण काल में तो रूद्र का महत्व और भी बढ़ता ही चला जाता है। ऐतरेय ब्राह्मण के कतिपय उल्लेखों से ही रूद्र की महनीयता की पर्याप्त सूचना मिलती है। ऐत० ब्रा० में प्रजापति की कन्या के साथ उन के सहगमन का प्रसग उठाकर रूद्र की उत्पति का प्रसंग वर्णित हैं। यहॉ गौरव को ध्यान में रखकर उनके नाम का उल्लेख नहीं किया गया है। प्रत्युत 'एष देवोड भवत्' कहकर सम्मान नीय शब्द ही व्यवहृत किया गया है। ऋ० के एक विनियोग वाक्य में रूद्र का नाम प्रयुक्त किया गया है यहाँ ऐतरेय ब्राहमण की यह व्यवस्था है। कि इस नाम को गौरव की दृष्टि से छोड़ देना चाहिए।

---

१. यजु० वाजनेयी सं० ३/५७

२. शु० यजु० ३/५७

३. केनोपनिषद खण्ड ३/१२ वाँ मन्त्र

उपनिषदों मे रूद्र की प्रधानता का परिचय हमें भला–भॉति प्राप्त होता है।

१. छान्दोग्य उपः [१]

२. बृहदारण्यक उप०[२]

३. मैत्री उप० [३]

४. महानारायण उप०[४]

५. नृतसिंह तापिनी उप०[५]

६. श्वेताश्वतर उप० आदि[६]

प्राचीन उपनिषदों में रूद्र के वैभव तथा प्रभाव का वर्णन उपलब्ध होता हैं । श्वेता श्वतरोप० में रूद्र की एकता, जगन्निर्माण मं निरपेक्षता, विश्व के आधिपत्य, में महर्षित्व तथा देवताओ के उत्पादक और ऐश्ववर्य सम्पन्न बनाने के सिद्धानतो का प्रतिपादन स्पष्ट रूप में किया गया है।

ॐ एको हि रूद्रो न द्वितीयाय तस्थु

र्य इमाँल्लोकानी शत ईशनीभिः।

प्रत्यङ० जनाँस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले

संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः।।२।।

ॐ यो देवानां प्रभवश्रचोदवश्व

विश्वाधिपो रूद्रो महर्षिः।

हिरण्यगर्भ जनयामास पूर्व।[७]

स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु।।४।।

इत्यादि श्वेताश्वतर श्रुति के प्रसिद्ध मन्त्र इस सन्दर्भ में प्रमाणरूप से उदधृत किये जा सकते है। परवर्ती कालीन उप० में अनेक का विषय रूद्र शिव की प्रभुता महनीयता अद्वितीयता का ही प्रतिपादन करना है। अतः अथर्थशिरास कठ, रूद्र, रूद्रहृदय पाशुपति ब्रह्म आदि शिवपरक उपनिषदों के नामोल्लेख मात्र से ही उनकी सर्वोच्चता सिद्ध हो जाती है।

---

१. रू०द्राष्टा ध्यायी ५ वाँ अध्याय

२. अथर्व० ११/२/१

३. अथर्व० ११/२/६

रूद का प्राकृतिक आधार

एक विचारणीय बात है कि जिस रूद्र को ऋग्वेद तथा अन्य संहितायें 'उग्र' (रूद्रइति) संज्ञा से उब्दोधित करती है उन रूद्र देव का प्राकृतिक आधार क्या था प्रकृति के किस व्यक्त तथा दृश्य पदार्थ का निरीक्षण कर उसे 'रूद्र' की संज्ञा प्रदान की गयी हैं। 'रूद्र' की शब्द व्युत्पति से इस समस्या के हल होने की लेश मात्र भी आशा नही बनती है। प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में सर्वत्र ' रूद्र' की व्युत्पति रूद्र रोना पातु से निष्पन्न होना बतलायी गयी है। शतपथ ब्रा० में रूद्रोत्पति की मनोहारी कथा का वर्णन प्राप्त होता है कि –

प्रजापति ने जब सृष्टि करना प्रारम्भ किया तब एक कुमार का जन्म हुआ जो जन्म लेते ही अपने नामकरण के हेतु रोने लगा। उसका नाम करण अवश्य किया गया परन्तु जन्म–काल मे ही रोदन क्रिया से सम्बद्ध होने के कारण उस कुमार का नामकरण 'रूद्र' रखा गया–

" यदरोदीत् तस्मात् रूद्र।"

---

१. अथर्व० ७/८/३
२. ऐता० ब्रा० ३/३/३३

---

१. छान्दोग्य उप० ३/७/४
२. बृहदारण्यक उप० ३/६/४
३. मैत्री उप० ६/५
४. महानारायणोप० १३/२
५. नृसिंह तापिनी उप० १२
६. श्वेताश्तर उप० ३/२,४
७. श्वेताश्तर उप० ३२ एवं ४

बृहदारण्यक [१] में इसी प्रकार दशो इन्द्रियो– ५ कर्मेन्द्रियों ५ ज्ञानेन्द्रियों तथा एक मन को मिलाकर एकादशरूद्र के रूप में ग्रहण किया गया है। इन्हें रूद्र [2] कहने का आश्य यह है कि जब ये शरीर त्याग कर बाहर निकल जाते हैं तो मृतक के आत्मीय जनों को रूलाते है।–

" ते यदस्माच्दरीरान्मर्त्यादुत्क्राम न्ति अथ

रोदयन्ति तदृयद् रोद यन्ति तस्मादुदा इति।।

पाश्चात्य वेदानुशीली विद्वन्मण्ली ने रूद्र के प्राकृतिक आधार का अन्वेषण करने का महत् प्रयत्न किया है[3] डॉ बेवर रूद्र को तूफान का देवता मानते है। डॉ हिलब्राष्ट के अनुसार ये ग्रीष्म कालीन देवता है। तथा किसी विशिष्ट नक्षत्र से भी इनका सम्बन्ध है। दॉ श्रादेर के विचार में मृतात्माओ के प्रधान व्यक्ति को देवत्व को रूप प्रदान कर रूद्र कल्पित कर लिया गया है। कारण यह वर्णन अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है कि मृताल्माये ऑधी के साथ उड़कर ऊर्ध्व गमन करती है। डॉ ओल्डेनवर्ग इसी मत में आस्था व्यक्त करते हुए रूद्र का सम्बन्ध पर्वत तथा जंगल के साथ स्थापति करना श्री श्रेपस्कर मानते है । रूद्र का सम्बन्ध पर्वत के साथ अवश्य है। उनकी पत्नी हैमवती[४] कही जाती है अतस्मात् कारणात् इसे मत के लिये भी आाधार है। तथापि उपर्युक्त मतों में कल्पना का अंश अधिकतम है। रूद्र के पुर्वस्थापति स्वरूप का पूरा सामञ्जस्य इन कथनों से कथमपि साम्य नहीं रखता है। हमारे प्राचीनतम ग्रन्थ एदतर्थ प्रमाण हैं।

---

१. शतपथ ब्रा० ६/१/३/८,

---

१. बृहमदारण्यक ३/६/४
२. रूद्र की अन्य व्युत्पत्तियों के लिये ऋ० १/११४/१ का सायण भाष्य द्रष्टव्य
३. रिलिजन खण्ड फिलासफी ऑफ वेद पृ० १४६–४७ ए० वी० की
४. केनोपनिषद् ३ खण्ड १२ वो मन्त्र

वस्ततुः रूद्र अग्नि के ही प्रतीक है। अग्नि के दृश्य भौतिक आधार पर रूद्र की कल्पना की गयी है। अग्नि की शिखा ऊर्ध्वगमना होती है। एतदर्थ रूद्र के ऊर्ध्व लिंग की कल्पना की गयी है अग्नि वेदी पर जलते है। इसी कारण शिव जल धरी (अर्धा) के मध्य स्थापित किये जाते है। अग्नि में घृताहुति पड़ती है। इसीलिये शिव के ऊपर जलाभिषेक किया जाता है। शिव भक्तो के लिये भस्म ध ाारण करने की प्रथा का भी स्वारस्य इसी सिद्धान्त के मानने से भली भॉति स्पष्ट हो जाता है। इस सिद्धान्त के पोषक वैदिक सिद्धान्तो का श्विलेषण करते है।

ऋ०ग्वेद ने "ऊँ त्वमग्ने रूद्रो"[1] कहकर इस एकीकरण का संकेत मात्र किया है। अर्थात

"ऊँ तस्मै रूद्राय नमो अस्त्वग्नये[2] "मन्त्र मे इसी ओर संकेत किया है। शतषथ ब्रा० का प्रमाण

ऊँ अग्निर्वैरूद्र"[3] और सुस्पष्ट है–

अत्यन्त स्पष्ट मात्रा में दोनों की एकता का प्रतिपादन कर रहा है रूद्र की अष्ट मूर्तियां अष्ट भौतिक पदार्थो की प्रतिनिधि है ।[4]

रूद्र अग्नि है, शर्व जल रूप, पशुपति ओषधिरूप उग्र वायुरूप, अशनिक विद्युतरूप भव पर्जन्यरूप, महानदेव (महादेव) चन्द्रमा रूप, ईशान आदित्य है, शतपथ ब्रा० से ज्ञात होता है कि रूद्र को प्राच्य लोग ' शर्व' के नाम से तथा बाहीक लोग (पाश्चात्य) 'भव' नाम से पुकारते थे, परन्तु वे सब वस्तुत अग्नि के ही नाम है।

"अग्निर्वै सः देवःतस्यैतानि नामानि शर्व इति।

यथा प्राच्या आचक्षते भव् इतियथा बाहीका.।।

पशूनांपती रूद्रोडग्निरिति तान्यस्याशान्ताग्नये बेतराणि नामानि अग्निरित्येव शान्ततम्।।" [1]

शु० यजु०[2] में अग्नि, अशनि, पशुपति, भव, शर्व, ईशान, महादेव, उग्र– ये समस्तपद एक ही देवता के पृथक पृथक नाम कहे गये है। शतपथ ब्रा० की व्याख्यानुसार ' अशनि' का अर्थ विद्युत होता है। एतदर्थ यजुर्वेद की व्याख्या के प्रमाण से स्पष्ट है कि पृथ्वीतल पर जो रूददेवता अग्निरूप से निवास करते हैं

आकाश में काले मेद्यों के मध्य में चमकने वाली विद्युत के रूप में वे ही प्रकट होते है। अतः रूद्र को विद्युत का अधिष्ठातृ देव मानना सर्वथा प्रासंग्कि है। अथर्वेद के एक स्थल[3] पर रूद्र के ससार को निगलने के लिये जीभ लपलपाने का वर्णन प्राप्त होता है। प्रतीत होता है कि

" जिह्वया ईयमानम्"

के द्वारा काले बलाहकों के मध्य में कौधने वाली, क्षण–२ में चमकने वाली, विद्युत की ओर स्पष्ट संकेत है। इसी को पुष्ट करने वाली अथर्ववेदीय प्रार्थना है कि हे रूद्र दिव्य अग्नि हमे ससक्त न कीजिये यह जो विद्युत दृष्टिगोचर हो रही है उसे मेरे शिर पर न गिर कर कही अन्यत्र गिराइये

ॐ मा नः सं स्त्रा दिव्येनाग्निना।

अन्यत्रा स्मद् विद्युतं पातयैताम्।। [1]

इस विवेचन की सहायता से हम रूद्र के ' शिवत्व को भलीभाँति ज्ञात किया जा सकता है। यह भपानक उग्र पशु की भॉति उग्र एवं भयद अवश्य है परन्तु साथ ही वह अपने भक्तों को विपत्तियो से सुरक्षित भी करता है। तथा उनका मगल साधन करता है। उसके रोग निवारण की शक्ति का बहुशः उल्लेख प्राप्त होता है। उनके पास मे अनेक औघधियॉ है, जिनके द्वारा वह ज्वर तथा विष का निवारण करता है। वेद्यों मे वह तैद्यराज है–

" भिषक्तमं त्वां भिष्जां श्रृणोमि " [2]

इस प्रसंग में रूद्र के दो विशिष्ट विशेषण उपलब्ध होते हैं–

१. जलाप– शीतलता प्रापक

२. जलाजभेषज –शीतल औषधियों का संग्रहक

ॐ क्व स्य ते मृडया कुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलापः।। [3]

---

१. ऋ० २/१/६

२. अथर्ववेद ७/८३

३. शतपथ ब्रा० ३/१/३

४. अभिज्ञान शाकुन्तल अंक १/१ श्लोक

वस्तुत अग्नि के दो रूप है

१. घोरातनु।

२. अघोरातनु।

अपने भयंकर घोर रूप से वह संसार के सहार करने में क्षम हैं, परन्तु अघोर रूप मे वही संसार के पालन मे भी शक्तिमान हैं। यदि अग्नि का निवास इस महीतल पर न हो तो क्षण मात्र भी प्राणियों का प्राण संचार न स्थिर रह सके। विद्युत में संहार कारिणी शक्ति का वास अवश्य है, परन्तु वही विद्युत भूतल पर प्रभूत जलवृष्टि का भी कारण बनती है ओर जीवों के जीवित रहने में मुख्य हेतु का रूप धारण करती है। सूक्ष्म दृष्टया विचार करने से प्रलय में भी सृष्टि के बीज निहित रहते हैं और संहार में भी उत्पत्ति का निदान अर्न्तर्हित रहता है। महाकवि कालिदास को अग्नि की संहार कारिणी शक्ति में भही उपादेयता दृष्टिगोचर होती हे।

कृष्या दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो।
बीज–प्ररोह जननीं ज्वलनः करोति।[1]

अतः उग्र रूप के हेतु जो देव ' रूद्र' है वे ही जगत् के मंगलसाधन करने के कारण 'शिव' है। जो रूद्र है वही शिव है रूद्र और शिव की अभिन्नता परवर्ती वैदिक ग्रन्थों में सुस्पष्ट रूप से प्रतिपादित है।[2]

ऋग्वदीय ऋषि गृत्समद के साथ साथ रूद्रदेव से हम भी प्रार्थना करते है कि रूद्र के बाण हम लोगों को स्पर्श न कर दूर से ही हट भी जाय तथा हमारे पुत्र और सगे सम्बन्धियों के ऊपर उस दानशील की दया सतत् बनी रहे–

ॐ परिणो हे तो रूद्रस्य वृज्याः
परित्वेषस्य दुर्मतिर्महो गात्।
अब स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व
मीढवस्तोकाय तनयाष मृड।।[1]

---

१. शष्तपथ ब्रा० १/७/३/८

२. शु० यजु० ३६/८

३. अथर्ववेद ११/२/१७

शिव का पौराणिक रूप

शिव के दोरूप निर्धारित किये जा सकते है

१ निर्गुण (अगुण)

२ सगुण

इनमें से अगुण रूप तो निर्विकारी सच्चिदा नन्दस्वरूप तथा पर ब्रहम कहलाता है। और सगुण रूप जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का कर्ता है और इस कार्य में शिव एक होते हुए भी क्रिया भिन्न माने जा सकते है। विष्णुरूप मे वह विश्व के रक्षक हे, ब्रह्मा रूप से उत्पादक (स्रष्टा) और हर रूप में वे सहार कर्ता हैं। शिवपुराण का कथन है कि शिव तथा विष्णु में किसी प्रकार का अन्तर तथा पार्थक्य नही है। शिव तथा रूद्र भी इसी प्रकार एक ही भिन्नता रहित रूप के द्योतक है उदाहरण स्वरूप शिवपुराण ने प्रसिद्ध वेदान्त सम्मत दृष्टान्तो के माध्यम से इस तत्व की युक्तिमत्ता प्रतिपादित की है। सुवर्ण तो नाना अलंकारों के लिये प्रयुज्यमान होकर भी एक ही होता है। आकार भिन्नता होने पर भी वस्तु तत्व की भिन्नता नही होती। मृत्तिका की भी यही दशा है। पार्थिव द्रव्यों की भिन्नता होने पर भी मृत्तिका में एकता ही सर्वदा विद्यमान रहती है। शिवतत्व का एकत्व भी इस प्रकार का है

सुवर्णस्य तथैकस्य वस्तुत्वं नैव गच्छति
अलंकृति कृते देव नाम भेदो न वस्तुतः।।
यथैकस्या मृदो भेदो नानापात्रे न वस्तुत ।
कारणस्यैव कार्यस्य सन्निधानं निदर्शनम्।। [1]

---

१. अथर्व० ११/२/२६

२. ऋ० २/३३/४

३. ऋ० २/३३/७

---

१. रघुवंश ६/८० वाँ श्लोक

२. ऋ० २/३३/७

समस्त दृश्य शिवरूप ही है अर्थात् यह दृश्य मान जगत् शिव से कथमपि भिन्न नही है। शिव ही सत्य, ज्ञान तथा अनन्तरूप है और सब का मूल कारण है। शिव जब सत् रजतम आदि गुणो से युक्त होकर सृष्टयादि कार्यो का निष्पादक होता है तभी वह ब्रहमादिक नामों के द्वारा अभिहित किया जाता है। शिव के वाम अंग से हरि की उत्पत्ति होती है। और दक्षिणाडं से ब्रह्मा की तथा हृदय से रूद्र की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार तीनों के उदय का मूल आधार शिव ही है।

ब्रह्मा अर्थात् शिव अद्वय, नित्य, अनन्त, पूर्ण, तथा निरञ्जन होता है। विष्णु में तमोगुण की सन्ता भीतर रहती है और सत्व की बाहर, परन्तु इसके पूर्ण विपरीत हर की स्थिति है जो अन्त. सन्त्व किन्तु तमोबाहय होता है। ब्रह्मा अन्तः तथा बाहय उभयत्र रजो विशिष्ट होता हैं। इस प्रकार गुणों के साथ सम्बद्ध होने पर ब्रहमा, विष्णु तथा हर की स्थिति है परन्तु शिव तो गुणों से सर्वथा भिन्न ही रहता है।

उन के साथ इस का लेशमात्र भी सम्बन्ध नही होता है।

"एवं गुणास्त्रि देवेषु गुणभिन्नः शिवः स्मृत :।[१]

शिव-विष्णु में अभिन्नत का निरूपण पुराण

निन्दक यह आरोप लगाते है कि शिव पुराण शिव महिमा का निरूपण करता है, किन्तु साथ ही विष्णु की निन्दा करता है। परन्तु वस्तु स्थिति ऐसी नही है शिव की उक्ति कितनी तात्विक है

ममैव हृदये विष्णुर्विष्णेश्च हृदयेहयहम्।
उभयोरन्तरं यो वे न जानाति मनो मम्।
हरिहरयोः प्रकृतिरेका प्रत्यय भेदेन रूपभेदोडयम्।
एकस्यैव नटस्याने कविधा भूमिका भेदात्।।[२]

---

१. ऋ० २/३३/१४

पुराण ब्रह्मा विष्णु तथा रूद्र मे अभिन्नता मानता है। हरि और हर की प्रकृति तो एक है प्रत्यय भेद से ही रूपादिभेद दोनो में प्राप्त होता है। यही गम्भीर तत्व है। यह द्विविध रूपेण आध्यात्मिक दृष्टया तथा व्युत्पत्ति दृष्टया सिद्धान्त सिद्ध है। हरि तथा हर दोनो शब्द एक ही 'हृ' धातु से निष्पन्न है, केवल प्रत्ययों की भिन्नता के कारण दोनो का रूप भिन्न–भिन्न है। अध्यात्म दृष्टि से दोनो देव एक ही ब्रहमस्वरूप शिव के विभिन्न कायो के निष्ढपादन के कारण भिन्न रूप में दृष्टि गोचर होते है ।

पद्म पुराण में भी यह ऐक्य वर्णित है।

ममास्ति ह्रदये शर्वो भवतो ह्रदये त्वहम्।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढः पश्यन्ति दुर्धिय :।।[1]

नट दृष्टान्त से यह तत्व भली–भॉति बोध हो जाता है।
शिव तथा विष्णु के ऐक्य का पतिपादक विष्णु पुराण भी है

स एवाहं महादेव स एवां हं जनार्दनः।
उभयोरन्तरं नास्ति घटस्थजलयोरिव।।[2]

शिव-शक्ति की अभेदता

परात्पर ब्रह्मा ही सब देव देवियो का मुल उद्गम स्थल है। जिस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, शिव उससे उत्पन्न होते है तदवत् शक्ति की भी उत्पत्ति वहीं से ही होती है।

तस्मान्महेश्वरश्चैव प्रकृतिः पुरूषस्तथा।
सदाशिवों भवो विष्णुर्वहमासर्व शिवात्मकम्।।[3]

शिव तथा शक्ति में भी अभिन्नता हे शक्ति–शिव में अन्तर्निहित रहकर कभी निष्क्रिय रहती है। और कभी सक्रिय होती है। ओर दोनो का ही अविनाशी सम्बन्ध है–

एवं परस्परापेक्षा शक्ति शक्तितोः स्थिता।
न शिवेन बिनाशक्तिर्न च शक्त्या बिना शिवः।।[4]

---

१. शिवपुराण रूद्रसंहिता ६/३५–३६

शिव अनेकत्व से विरहित है तथा सांसरिक रूपों से भिन्न है। वे पूर्ण आनन्द, परम आनन्द के निधान तथा सर्वश्रेष्ठ आत्मा है। वह भोक्ता अनुभवकर्ता, जीव, भोग्य अनुभूयमान पदार्थ, तथा भोगअनुभव इन तीनो से पृथक होता है। सत्ता की दृष्टि से वही एकात्मक सन्तात्मक रूप है। तथापि माया के कारण भिन्न–भिन्न प्रतिसित होता है।

नीललोहित रूप रूद्र का पुराणो में जो वण्रित है वह वेदानुकूल ही शिवकी अष्टमूर्तियों का तथा अनेक विभिन्न अभिधानो का पूर्ण विवरण वायुपुराण[१] मे विस्तार से प्राप्त होता है। विष्णु ने शिवजी की एक विशिष्ट स्तुति की है जो प्रायशः वैदिक मन्त्रों में दिये गये नामो द्वारा ही सम्पन्न है।[२] इस शिवस्तव का तात्पर्य शिव की व्यपकता प्रतिपादित करना है । रूद्राष्टाध्या थी की भाँति ही शिव अत्रापि सब पदार्थो के पति बतलाये गये है।–

" पितृणां पतये चैव पशूनां पतये नमः।

वागृ वृषाय नमस्तुभयं पुराण वृषभाय च।।

सुचारू चारूकेशाय ऊर्ध्व चक्षुः शिराय च ।

नमः पशूनां पतये गोवृषेन्द्र ध्वजाय च।[३]

सांख्य मतानुया थी शिव को प्रकृति से परे मानते हे

योग मतानुयापी ध्यान योग के द्वारा शिव को प्राप्त कर मृत्यु मुख गमन प्रपञ्च से मुक्त हो जाते है।

---

१. शिव पुराण रूद्र संहिता ६/६१ वां श्लोक

२. शिव पुराण रूद्र संहिता ६/५५–५६ वां श्लोक

---

१. पभ पु० पाताल खण्ड २८/२१ में राम शिव का ऐक्य वर्णित है।

२. विष्णु पु०

३. शिवपु० वायणीय सं० पूर्व भाग १०/६

४. शिव पु० वायणीय सं० उत्तर खण्ड

शिव तथा विष्णु में किसी भी प्रकार का द्वैविघ्य नही है।[१] इस प्रकार शैव पु० शिव महिमा तथा व्यापकता का विशद वर्णन करते है।

शिव की अष्ट मूर्तियॉ

पुराणों में शिव की अष्ट मूर्तियों का विशद उल्लेख अनेकत्र प्राप्त होता है। लिडं पुराण[२] में इन मूर्तियों के अधिकारी देवों के नाम अधः वर्णित है। यद्यपि ये सभी नाम वैदिक है, शिव के नाम मो वास्तव में वेदों के लिये ही है, परन्तु उनका भिन्न–भिन्न मूतियों के साथ अभिधानरूप से सम्ब्द्ध बतलाना पुराण का काम है। प्रत्येक मूर्ति की भार्या और एक पुत्र की कल्पना उस मुर्ति के साथ सम्बद्ध मानी जाती है –

	मूर्ति	**नाम**
१.	पृथ्व्यात्मक शिव	शर्व
२.	जलात्मक शिव	भव
३.	अग्न्यात्मक शिव	पशुपति
४.	वायु शिव	ईशान
५.	आकाश शिव	भीम
६.	सूर्यात्मक शिव	रूद्र
७.	सोमात्मक शिव	महोदव
८.	यजमान मूर्ति	उग्र

---

१. वायुपुराण २७ वां अध्याय द्रष्टव्य

२. नामभिश्छन्द शैश्चैव इदं स्तोत्र मुदीरयत्।
इस स्तोत्र का नाम छन्दस (वैदिक) ही है वायु पु० २४/६०

३. शिवस्तव वायु पु० २४/१०५–१०६।

पत्नी का नाम		पुत्र का नाम	
१.	विकेशी	१.	अडवरक
२.	उमा	२	शुक्र
३.	स्वाहा	३	षण्मुख
४.	शिवा	४.	मनोजव
५.	दिशाये	५.	सर्ग
६.	सुवर्चलता	६.	शनैश्चर
७.	रोहिणी	७.	बुध
८.	दीक्षा	८.	सन्तान

शिव भक्ति

शिव भक्ति के अनेक प्रकार पुराणों में वर्णित है। मुख्यतया यह त्रिविध प्रकार की है

१. कायिक
२. वाचिक
३ मानसिक

इसी प्रकार

१. लौकिकी
२. वैदिकी
३. आध्यात्मिकी

---

१. वायु पु० २५ वॉ अध्याय
२. लिंग पु० उत्तरार्द्ध १२ वाँ १३ वॉ अध्याय
इसी प्रकार इन मूतियों के विशेष वर्णन के लिये वायु पु० २७ वाँ अध्याय द्रष्टव्य अन्य पुराणो में भी शिव की इन मूर्तियों के नाम का वर्णन मिलता हैं। लिंग पुराण अध्याय ५३/५१–५६

ये भी भेद पतिपादित है।

१. लौकिकी भक्ति-

नाना प्रकार के लौकिक साधनों से सिद्ध होती है जो गोघृत रत्नादिकों के उपहार तथा नृत्यादि के प्रयोग से सम्पन्न होती है।

२. वैदिकी भक्ति -

वैदिक मन्त्रों द्वारा, हविष्य आदि की आहूति से जो क्रिया सम्पन्न की जाती है वह वैदिकी भक्ति के नाम से पुकारी जाती है।

३. आध्याम्मिकी भक्ति -

इसमें ज्ञान की भी प्रमुख सहयोग लिया जाता है।

यह दो प्रकार की होती है

१. सांख्या
२. यौगिकी

संख्या भक्ति में रूद्र के स्वरूप का चिन्तन किया जाता है। योगिकी भक्ति में भगवान रूद्र का ध्यान ही पराभक्ति कहलता है।

शिवोपासना में तन्त्र–साधना के प्रयोग भी प्रचलित है। कीलक कवच, अर्गला, शतनाम, सहस्रनाम आदि की विशिष्टता से समन्वित तान्त्रि की पूजा का विधान अग्नि पुराणादि प्रभृति पुराणों का अपना वैशिष्ट्य है।

अध्याय ६

शक्ति प्रकरण

शक्ति प्रकरण

वेदों के प्रागैतिहासिक काल से लेकर अद्यावधि पर्यन्त हिन्दू धर्म सगुण परमात्मा की माता–पिता के रूप में उपासना करता चला आ रहा हैं। हिन्दू ध
ार्म हमे यह भी शिक्षा प्रदान करता है कि हम दो भावों में से किसी एक का आश्रय ग्रहणकर धर्म के परमोच्च आदर्श तक गमन कर सकते है। ऋग्वेद में ईश्वर कापितृरूप 'प्रजापति कहलाया जिसका अर्थ है समस्त जीवों के प्रभु और पिता ऋग्वेद के दशम् मण्डल [१] में हमे प्रजापति का बहुत ही सुन्दर वर्णन प्राप्त होता हैं। इस सूक्त में सगुण परमात्मा का जैसा निरूपण किया गया है उससे अधिक सुन्दर निरूपण किसी भी इतर धर्म ग्रन्थों में उपलब्ध नही हो सका है। प्राचीन वैदिक युग के किसी मन्त्र द्रष्टा ऋषि से यह पूछा गया कि हमें कौन से देवता की स्तुति एवं पूजा करनी चाहिए–

"कस्मै देवाय ह विषा विधेम।" [२]

उन्होने इस ऋचाओं में इस प्रश्न का उत्तर दिया जिनमें से दो ऋचाये उदृत की जा रही है

ॐ हिरण्यगर्भ : समवर्त ताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेकआसीत्।
सदाधार पृथिवीं द्यामुते मां
कस्मै (तस्मै) देंवाय ह विषा विधेम।।
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व
उपासते प्रशिवं यस्य देवः।
यस्य च्छायाडमृतं यस्य मृत्यु
स्तस्मै (कस्मै)देवाय ह विषा विधेम।। [१]

अर्थात् आरम्भ में प्रजापति हुए जो समस्त भूतों के पूर्वज एसं स्वामी थे। वे अपनी शक्तियों से पृथिवी ओर आकाश को धारण करते है। हमें चाहिए कि उन्हीं की स्तुति ओर पूजा करें ।

जो सकल भूतों को जीवन तथा शक्ति प्रदान करता है जिनके शरीर से अग्नि के स्फुलिग के समान जीव प्रकट होते है जो समस्त जीवों को पावन करने वाले है। जिनकी आज्ञा का सभी प्राणी आदर पूर्वक पालन करते हैं मृत्यु तथा अमृततत्व जिनकी छाया हैं– उन्हीं प्रजापति की हम लोग स्तुति एवं पूजा करते है।

इन्हीं प्रजापति को जो विश्व के सच्चे एवं धर्म परायण न्याय शील प्रभु है जो देव विशेष है। ऋ० में एक स्थल पर 'द्यौः पिता' कहा गया है जिसका अर्थ है स्वर्ग में रहने वाला पिता और सबका रक्षक ॐ द्यौर्मे पिता जनिता नाभिश्च। बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्। [२]
अर्थात् वह ज्योतिर्मय स्व प्रकाश आत्मा जिसका निवास स्वर्ग में है,मेरा पिता और रक्षक मेरा जन्मदाता है और वही सबका कारण है।

आगे चलकर वही द्यौः पिता' यूनान के प्राचीन ग्रन्थों में ज्यूपितर अथवा जुपिटर' कहलाये। वही यहूदियों के 'जेहोवा' और ईसाईयों के 'ये वेह' (स्वर्ग में रहने वाला पिता) हो गये।

ईश्वर का मातृरुप

ईश्वर के मातृरूप को ऋ० में 'अदिति' कहा गया है जो विश्व का अटल अचल आधार है। ऋ० के विश्वेदवताः सूक्त में अदिति के सन्दर्भ में निम्न वर्णन प्राप्त होता हैं–

ॐ अदिति द्यौरदितिरन्तरिक्ष–
मदितिर्माता स पिता स पुत्रः।

---

१. ऋ० १०/१२१/१
२. ऋ० १०/१२१

विश्वेदवा अदिति पञ्चपजनाः अदितिजात मदि ति जैनित्वम्। [१]

अदिति स्वर्ग में हैं तथा स्वर्ग ओर भूलोक के मध्य का जो द्युलोक–अन्तरिक्ष है तत्रापि विद्यमान हैं। वह समस्त देवताओं की जननी है और चराचर भूतों की स्रष्टा हैं। सभी की पिता एवं रक्षक भी वही है। वही स्रष्टा एवं सृष्टि भी है। अपने उपास को की आत्माओं को वह अपनी अनुकप्पा द्वारा पापों से मुक्त कर देती है वह अपनी सन्तानों को देने लायक सब कुछ प्रदान कर डालती है। वह सभी देवताओं अथवा दिव्य आत्माओं के विग्रह में निवास करती है। भूत एवं भव्य सभी उसी का रूप है वही सब कुछ है। [१]

इस प्रकार हम देखते है कि भारतवर्ष में प्राचीन काल में ईश्वर की भावना विश्व के माता एवं पिता उभय रूपों में हुई हैं। सगुण परमात्मा का जगत् के माता पिता तथा निर्मित्त एवं उपादान कारण उभय रूपों में वर्णन वेद के अतिरिक्त किसी अन्य ग्रन्थ में और हिन्दुओं के अतिरिक्त किसी अन्य धर्म में नहीं है।

जब तक ईश्वर को विश्वातीत एवं निष्क्रिय प्रकृति से भिन्न एवं बाहर मानते है तब तक उसकी जगत् के पिता अथवा निमित्त कारण के रूप में प्रतीति होती है और प्रकृति की उसके उपादान कारण के रूप में प्रतीत होती हैं परन्तु ज्यों–ज्यों हमारी समझ में यह आने लगता है कि ईश्वर प्रकृति में ओत–प्रेत एवं प्रकृति से अभिन्न है उतना ही स्पष्ट रूप में हमें बोध हो जायेगा कि ईश्वर हमारी माता भी हैं। और पिता भी है। जब हमें इस बात का भान हो जाता है कि जगत् की उपादान भूता प्रकृति अथवा ईश्वर का नारी रूप ईश्वर के व्यक्त स्वरूप का ही एक अंश है और विराट पुरूष अथवा परमात्मा के पुरूष रूप से सर्वथा अभिन्न है तब यह तथ्य स्पष्ट हो जायेगा कि रचना बढ़ई या कुम्भकार की भाँति ऐसे उपादानों से नही करता जो उसके शरीर से बाहर हैं अपितु वह एक मकड़ी की भाँति सब कुछ अपने ही शरीर से निकालता है और संसार के सभी पदार्थ ओर शक्तियां उसके ही शरीर में विद्यमान रहती है।

---

१. ऋ० १०/१२१/१–२

२. ऋ० २/३३

उपर्युक्त सिद्धान्त विश्वव्यापिनी शक्ति के वैज्ञानिक स्वरूप के साथ भी पूर्णरूपेण मेल खाता हैं।

आधुनिक विज्ञान सनातन शक्ति को ही समाप्त बाहय प्रपञ्च का कारण मानता हैं। विकासवाद का सिद्धान्त तथा शक्तियें के परस्पर सम्बन्ध एवं शक्ति की नित्यता आदि सिद्धान्तों से यह तथ्य स्पष्ट तया प्रमाणित होता है कि अखिल विश्व की स्थूल घटनायें तथा बाहय एवं आन्तरिक्ष जगत् की भिन्न भिन्न शक्त्यिाँ एक सनातन शक्ति की अभिव्यक्ति मात्र हैं। विकासवाद का सिद्धान्त तो केवल उस प्रक्रिया का निदर्शनमात्र करता हैं जिसके अनुसार वह सनातन शक्ति इस बाह्रय प्रपञ्च को रचती हैं। विज्ञान ने इस प्राचीन मतवाद का खण्डन कर दिया है कि, एक विश्वातीत परमात्मा की आज्ञाा से शून्य से जगत की उत्पत्ति हुई है और इस बात को प्रमाणित कर दिया है कि अभाव से भाव की उत्पत्ति नही हो सकती है । विज्ञान हमें सिखलाता है कि विश्व उस आदिशे क्ति के आभ्यन्तर अव्यक्त रूप में विद्यमान था ओर शनैः शनैः विकास क्रम से जो कुछ अव्यक्त था वह व्यक्त हो गया प्रकट हो गया ।

वह सनातन शक्ति जड़ अथवा अचेतन नहीं है वरन् चेतन हैं बाह्रय अथवा आभ्यन्तर जगत् में यत्र तत्र सर्वत्र हमारी दृष्टि जाती हैं वहीं हम स्थूल पदार्थो तथा जड़ शक्तियो के आकरिमक संयोग का ही विलास नहीं पाते,अपितु एक निश्चित उददेश्य के अनुकूल नियमों की क्रिया को देखते है, यह जगत् अव्यवस्थित नही है अपितु एक सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित संस्था हैं। यह परिवर्तनों की एक निरूद्देश्य श्रृंखलामात्र नही है जिसे हम विकास कहते है प्रत्युत विकास के पग पग पर एक सुनियमित उददेश्य छिपा हुआ हैं। अतस्मात् कारणत् वह शकित ज्ञानसम्पन्न कही जाती है। हम इस स्वतन्त्र, ज्ञान सम्पन्न, विराट शक्ति को विश्व 'जननी' कह सकते है। वह अनन्त शक्तियों ओर अनन्त प्राकृतिक घटनाओं का मूलस्रोत है। इस सनातन शक्ति को संस्कृत में'प्रकृति' और लैटिन भाषा में प्रोक्रियेटिक्स.PROCREATRIX कहते हैं जिसका अर्थ विश्व की उत्पादिका शक्ति है।

हिन्दू शर्मशास्त्रो मे उसका वर्णन इस प्रकार किया गया है–

"त्वं परा प्रकृतिः साक्षाद् ब्रहमणः परमात्मनः ।

त्क्तो जात जगत्सर्व त्वं जगज्जननी शिवे। [१]

अर्थात् हे शिवे तुम्हीं परब्रहम परमात्मा की परा प्रकृति हो, तुम्हारी से सारे जगत् की उत्पत्ति हुई, तुहीं विश्व की जननी हो। प्रकृति की जितनी भी शक्तिं है वे सब ईश्वरीय शक्ति की ही अभिव्यक्तियां हैं। इसी से उस मूल शक्ति को सर्वसामर्थ्य युक्त संज्ञा प्राप्त है। विश्व में जहाँ कही ' भी शकित का स्फुरण दृष्टि गोचर होता हैं, वहाँ सना तन प्रकृति अथवा जगदम्बा की ही सत्ता हैं।

उस शक्ति को पिता न कहकर माता कहना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। क्योंकि जननी की भांति वह सृष्टि को विकास के पूर्व अपने उदर में संजोये रखती हैं। उसकी वृद्धि एवं पोषण करती हैं उसकी प्रसार करती हैं तथा उत्पन्न हो जाने पर उसकी रक्षा करती है। वह ब्रहमा विष्णु और महेश की जननी है। वह समस्त क्रिया की मूल है और वही क्रिया शील 'शक्ति' है। सृष्टि कर्ता अपनी सृजनकारिणी शक्ति से हीन होने पर सृष्टा नहीं रह जाता हैं। उत्पादिका शक्ति भी उस परम पावन सनातन शक्ति की अभिव्यक्ति मात्र है। इसीलिये हिन्दू धर्मशास्त्र सृष्टिकर्ता ब्रहमा सृष्टिपालक विष्णु एवं सृष्टि संहारक रूद्र को इस जगज्जननी से उत्पन्न हुए मानते है। [१]

ऋ० के दशम् मण्डल में वर्णित 'वाक सूक्त'[२] में आदिशक्ति जगदम्बा का वचन है कि ' मैं ब्रहमाण्उ की अधीश्वरी हूॅ। मै ही सकल कर्मो काफल भुगताने वाली अैार ऐश्वर्य देने वाली हूॅ। मै चेतन एवं सर्वज्ञ हूॅ। मैं एक होते हूए भी अपनी शक्ति से नाना रूप से भासती हूँ। मैं मानव जाति की रक्षा हेतु युद्ध करती हूँ और शत्रु का संहार कर पृथ्वी पर शान्ति की स्थापना करती हूँ।

---

१. ऋ० विश्वेदेव सूक्त १/८६,

२. वाजसनेपी सं० २५/१४–२३

मै ही भूर्लोक और स्वर्गलोक का विस्तार करती हूँ। मै जनक की भी जननी हूँ जैसे वायु अपने आप चलती है वैसे ही मै भी अपनी इच्च्छा से समस्त विश्व की स्वयं रचना करती हूँ। मै सर्वथा स्वतन्त्र हूँ मुझ पर किसी का प्रभुत्व नही है मै आकाश ओर पृथिवी से परे हूँ। अखिल विश्व मेरी विभूति हैं मै अपनी शक्ति से यह सब कुछ हूँ।

इस प्रकार जगदम्बा को सब कुछ कहा गया है। इस जगज्जननी के आभ्यन्तर ही हम जीवन धारण करते है भ्रमण करते है और अस्तित्व संजोये हुए है। ईश्वरीय शक्ति अपनी लीला का संवरण कर ले तो कोई भी क्षण मात्र भी नहीं जीवित रह सकता हैं ।

जब वह सर्वव्यापिनी ईश्वरीय शक्ति अपने को अभिव्यक्त करती है तब वह दो परस्पर विरोधी शक्तियों के रूप में प्रकट होती है। जिसे संस्कृत में 'विद्या' कहते है। दूसरी शक्ति संसार प्रवण होती हैं। और 'अविद्या' कहलाती है। प्रथम मोक्ष और आनन्द प्रद और दूसरी बन्धन और दुःख का कारण होती है।

विद्या शक्ति को ही हम हिन्दू लोग जगज्जननी मानते हुए दुर्गा, काली, भवानी, गायत्री, आदि विभिन्न रूपों में और विभिन्न नामों से पूजते हैं। अविद्याशक्ति उस विद्याशक्ति की अनुचरी एवं अधीनवर्तिनी मानी जाती है।

सर्वप्रथम हम वेदमातागायत्री का विवेचन करते है—

---

१. ऋ० २/६/१७

---

१. शक्त्य पृ० ४८

वस्तुतः दुःख का सर्वथा नाश होकर नित्यमहान सुख–प्राप्ति किस प्रकार से होती हैं यह विज्ञान जीव की कामादि दोष दूषित बुद्धि से नही होता । जो कर्म सुख प्राप्ति और दुःखाभाव का साधन नहीं है उसी में पच पच कर जीव अपनी आयु क्षीण कर लेता हैं केवल वेदो से ही यह अलौकिक विज्ञान होता है।

यद्यपि वेदों में अनेकों कर्म और उपासनाओं का वर्णन हैं तथापि द्विजातियों के लिये नित्य सुख की प्राप्ति और सर्वथा दुःख की निवृस्ति मोक्ष का साधन ' गायत्री मन्त्र' माना गया हैं। गायत्री मन्त्र सब वेदों का सार है–

"तत्र गायत्री प्रणवादिसप्त व्याहत्युपेतां
शिराः समेंतां सर्ववेदसारमिति वदन्ति।।" [२]

यह गायत्री का शंकर भाष्य है। इस गायत्री मन्त्र मे प्रत्येक पद तथा अक्षर अत्यन्त महत्व पूर्ण हैं। गायत्री मन्त्र निम्न है–

"ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि हे धियो यो नः प्रचोदात्"। [२]

वेद और वेद की समस्त विद्यायें ईश्वर द्वारा सृष्टि के प्रारम्भ में प्रकाशित की गयी । लोक में चतुर्दश विद्यायें –४ वेद, छन्द, व्याकरण, निरूक्त, ज्योतिष, शिक्षा, और कल्प षडडंवेद ,न्याय, मीमासा, पुराण और ध ार्मशास्त्र की सत्ता दृष्टि गोचर होती है।

वेदों की कोई सीमा नहीं हैं जिनकों वेदों की सारभूता गायत्री धारण किये हुए है अथवा जिनके प्राणतत्व गायत्री में ही सन्निविष्ट है–

---

१. श्री दुर्गासप्त शती रहस्यत्रय प्राकृतिक वैकृतिक रहस्य
२. ऋ० १०/१२५

तत्ज्ञानार्थमुपायाविद्यालोके चतुर्दशप्रोक्ताः।

तेष्वपि च सारभूता वेदास्तत्रापि गायत्री।।[1]

गायत्री स्वरूप परिचय

गायत्री जगै धातु से स्तुति कर्म अर्थ में प्रयुक्त होती है।

" गायत्रं गायतेः स्तुति कर्मणः।"[2]

निरुक्ताकार यास्क ने–

"त्रिगमना या विपरीता"।

अर्थात् तीन बार गमन करने वाली कहा है । तथा "गायतो मुखत् उतपतत्"

४. अर्थात् स्तुति करते हुए ब्रह्मा के मुख से नीचे गिर पड़ी वर्णन किया है।।

गाायत्री के दो रूप है।–

१. लौकिक

२. अलौकिक

१. लौकिक रुप चतुर्विंशति अक्षरा ओर त्रिपादा होने के कारण सर्वजनीन है।

२. अलौकिकरुपा गायत्री तत्व 'श्री विद्या षोडशी' की संज्ञा धरण करती है। (पञ्चदशाक्षरी भी संज्ञा धारण करती है)। तथा अतिगुहय शास्त्रों में वर्णित है और गुरुगम्य है। यह विद्या साधक को स्वतः ही भोग और मोक्ष दोनों प्रदान करती है।

यत्रास्ति भोगों न हि तत्र मोक्षः।

यत्रास्ति मोक्षो न हि तत्र भोगः।

श्रीमत्सुन्दरी सेवन तत्पराणाः,

भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एवं ।।[1]

---

१. गायत्री पर शंकर भष्प द्रष्टव्य

२. ऋ० ३/६२/६,

गायत्री पद निर्वचन

"गायन प्राणान् त्रायते या सा गायत्री"

अर्थात् जो गय (प्राणों) की रक्षा करे, वह गायत्री कहलाती है।

"तैजों वै ब्रहवर्चसं गायत्री।[२]

तद्यत्प्राणं त्रायते तस्मात् गायत्री। [३]

अर्थात् वह जो प्राणों की रक्षा करती है। इस लिये गायत्री कहलाती है।

भगवान् शंकराचार्य ने भी अपने भाष्य में गयान् त्रायते इति गायत्री ऐतरेय ब्राह्मण के कथन को स्वीकार किया है । यास्क का तर्क पूर्व ही प्रतिपादित किया जा चुका हैं।

त्रिकाल सन्ध्याओं का ध्यान

संध्या करते समय साधक अलग अलग काल में अलग अलग ध्यान किया करते हैं । प्रातः सन्ध्या में ब्रह्म की शक्ति सरस्वती, मध्याह्न में विष्णु की शक्ति वैष्णवी और सांय संध्या के समय रूद्र की शक्ति रौद्री गायत्री का ध्यान किया जाता है ।

१. **प्रातध्यान--** ॐ प्रातर्गायत्रीं रविमण्डलमध्यस्था रक्तवर्णां द्विभुजां अक्षसूत्रकमण्डलु ध्रा ।

हंसासनमारूढ़ा ब्रह्माणी ब्रह्मदैवत्या कुमारी ऋग्वेददाहूता ध्येया ।

---

१. वरिवस्या रहस्य ४३ श्लोक

२. निरूक्त १ अध्याय

३. निरुक्त ७ वाँअध्याय

४. निरुक्त ७ वाँ अध्याय

२. **मध्याहध्यान**--ऊँ मध्यान्हे सावित्री रविमण्डल मध्यास्था कृष्णवर्णा चतुर्भुजा त्रिनेत्रा शंकखचक्रगदा पद्महस्ता युवती गरुड़ारूढ़ा वैष्णवी विष्णु दैवत्या यजुर्वेदो हृता ध्येया ।

३. **सायान्हध्यान**--ऊँ सायान्हे सरस्वती रविमण्डलमध्यस्था शुक्लवर्णा चतुर्भुजा त्रिशूलडमरू पाशपात्र करा वृषाभासनमारूढ़ा बृद्धा रूद्राणी रूद्रदैवत्या सामवेदोदाहृता ध्येया ।

'गायत्री हृदय' में भगवती गायत्री का सावित्री सरस्वती, ब्रह्मरूपिणी और तुरीयावस्था कहकर सम्बोधित किया गया है --

ऊँ नमो नमस्ते गायत्रि सावित्रि त्वां नमाम्यहम ।
सरस्वति नमस्तुभ्यं तुरीये बहमरूपिणी। [१]

समस्त लोकों में परमात्मस्वरूपिणी जो ब्रहशक्ति विराज रही है वही सूक्ष्म सत् प्रकृति के रूप में 'गायत्री के नाम से ही पूर्ण रूपेण अभिहित होती हैं ।

परमात्मा तु या लोके बहमशक्ति र्विराजते।
सूक्ष्मा च सात्विका चैव गायत्री साभिधीयते।। [२]

वेदमाता गायत्री ज्ञान की जननी तथा भारतीय एवं आर्य संस्कृति का प्राण है। गायत्री मन्त्र वैदिक काल से ही सर्वविदित एवं प्रतिष्ठित है। जिसकी वेद उपनिषद ब्राहमण पुराण एंव अन्य शास्त्र एक स्वर से ही महिमा गाते रहे है। गायत्री हमारी भारतीय एवं सनातन धर्म की पुण्यतमा स्मृति एवं बहुमूल्य धरोध ार है। प्रत्येक सनातन धर्मावलम्बी को इस बात का गौरव होना चाहिए कि गायत्री जैसा महान् अमोध मन्त्र हमारा अनादि काल से परम्परागत ज्ञान एवं जीवन का प्रेरणा स्रोत रहा हैं।

---

१. आनन्द स्तोत्र, १५ वाँ श्लोक
२. ऐतरेय ब्रा० प्रथम अध्याय पृ० ४०
३. बृहदारण्यक

गायत्री हृदय की चैतन्य ज्योति ब्रहमरूपा है जहॉ पहुचने के लिये प्राण, अपान, व्यान,समान और उदान इन पञ्चप्राण रूपी द्वारपालो को वश में करना होता है।

गायत्री की प्राण प्रक्रिया एक सनातन नैसर्गिक पद्धति है जिसकी साधना से साधक का शारीरिक मानसिक एवं आत्मिक बाल विकसित होता हैं। गायत्री की साधना से हृदय स्थित ब्रहरूप गायत्री का साक्षात्कार होने के साथ साथ साधक को लोकिक एवं पारलौकिक सुख तो प्राप्त होता ही है। उसकी कुल परम्परा में पराक्रमी एवं वीर पुरूष उत्पन्न होते हैं। यही नही वरन् गायत्री इस संसार के समस्त क्रिया कलाप को शक्तिरूपेण परिचालित करती है।

इतिहास पुराणों के आलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि देवी भागवत् श्रीमद् भागवत आदि कई पुराणों और योगिया ज्ञ वल्क्य, बहमयोगिया ज्ञ वल्कय, बृहदयोगिया ज्ञ वल्क्य, तथा विश्वामित्र काण्व आदि स्मृतियो को निर्माण गायत्री माहात्म्य एवं उसके जप विधान के निर्देश के लिये ही हुआ है। इस सम्बन्ध में मत्स्यपुराण का प्रमाण है।

यत्राधिकृत्य गायत्री वर्ण्यते धर्मविस्तरः।
हयग्रीवं ब्रहविद्यां तं वैभागवतं विदुः।। [१]

अर्थात् भागवत् उसी कानाम है जिसमें गायत्री सम्बन्धी धर्मो का विस्तार से वर्णन हो यह तथ्य श्रीमद्. भागवत् तथा देवी भागवत् पुराण में स्पष्ट परिलक्षित होती है। श्रीमद्भागवत्पुराण के आदि अन्त में

"सत्यं परं धीमहि"।

पद इसी तथ्य का सूचक है। कालान्तर में इन्ही स्मृति, पुराण और कल्पसूत्रों का आश्रय लेकर गायत्री पञ्चाग पटल, पद्धति, कवच, शतनाम, सहग्रनाम, गायत्री पुरश्चरण पद्धति गायत्री दशाङ गायत्री उपासना प्रभृत कई निबन्ध ग्रन्थ सृजित हुए।

---

१. गायत्री हृदय

२. कल्याण देवतांक पृ० २६८ द्रष्टव्य

सन्ध्या भाष्य गायत्री भाष्य ओर सन्ध्या भाष्य समुच्चय में भी इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया हैं । मोर प्राच्य संस्थान से प्रकाशित ७०० पृष्ठों के 'सन्ध्या गायत्री माहात्म्य संग्रह में पुराण एवं स्मृतियों के श्लोक संग्रहीत हैं । 'गायत्री सहस्रनाम' के भी विभिन्न स्वरूप प्राप्त होते हैं।

गायत्री स्वरुप निरुपण

गायत्री यद्यपि एक वैदिक छन्द है तथापि इसकी एक देवी के रूप में मान्यता है। तीनों कालों और विविध गृहयसूत्रों के अनुसार इनके ध्यान के अनेक भेद है। 'शारदा तिलक' नामक तन्त्र ग्रन्थ में भी विस्तरेण गायत्री प्रकरण वर्णित है। पौराणिक परिचय के अनुसार गायत्री ब्रहमा की मानस पुत्री है[१] किन्तु पभ पुराण में ब्रहमा की शक्ति के रूप में वर्णित है। इनका अपर नाम ' सावित्री' भी है पभ पुराण के सृष्टि खण्ड में इनका विस्तृत चरित्र वर्णित हैं इनकी महिमा में वर्णित है कि –
तस्माद् ब्रह्म स्वरूपा त्वं किञ्चितृ सदसदात्मिका परात्परेशी गायत्री नमस्ते मातरम्बिके [१] अर्थात् इस संसार में जो कुछ सत् असत् है वह समस्त ब्रह्म स्वरुप गायत्री ही है। अम्बिके मातः तुम्ही पर से भी पर हो तुम्हें नमस्कार है ।

जगत् की प्राण स्वरुप सूर्य मण्डलस्थित इस दिव्य चितिशक्ति की हिन्दू धर्मशास्त्र में बिलक्षण महिमा है–

एकाक्षंर पर ब्रह्म प्राणायामः परंतपः।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात् सत्यं विशिष्यते।। [२]

एकाक्षर प्रणव (ऊँ) ही परम ब्रहम है और प्राणायाम ही परमतप है और मौन से सत्य ही विशिष्ट तर है गायत्री से उत्तम कोई मन्त्र नहीं है–

व्यास जी का कथन है कि–

---

१. मत्स्य पुराण अध्याय ५३,

यथा मधु च पुष्पेभ्यों घृतं दुग्धाद्रसात पयः।
एवं हि सर्ववेदानां गायत्री पापनाशिनी।। [3]
गायत्र्यास्तु परं नास्ति दिवि चैव च पावनम्।।

अर्थात् जिस प्रकार पुष्पों का सारभूत मधु, दुग्ध का घृत रसों का सार पय है उसी प्रकार गायत्री मन्त्र समस्त वेदों का सार है। गायत्री वेदो की जननी और पाप विनाशिनी है तथा उससे अन्य कोई पवित्र मन्त्र पृथिवी पर और स्वर्ग में भी नहीं है।

गायत्री मन्त्र का स्वरुप

गायत्री मन्त्र ऋक, यजुः साम, काण्व, कपिष्ठल, मैत्रायणी,तैतिरीय काठक आदि सभी वेदिक संहिताओ में प्राप्त होता है। यह मन्त्र एक एक संहिता में तीन तीन या चार चार बार प्रयुक्त हुआ है किन्त सर्वत्र ही उसका स्वरुप एक ही मिलता है इसमे २४ अक्षर है। मन्त्र का मूल स्वरूप पुनः अत्रापि दिया जा रहा है।

"तत्सवि तुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात्"। [1]

सृष्टि कर्ता प्रकाशमान परमात्मा के प्रसिद्ध वरणीय तेज का (हम) ध्यान करते है। जो परमात्मा हमारी बुद्धि को (सत् की ओर) प्रेरित करें।

---

१. ब्रह्माण्ड पुराण ४/४८/८६

---

१. पभ पुराण० सृष्टि खण्ड स्थ गायत्री हृदय,
२. कल्याण देवता ङ०क पृ० २६६
३. कल्याण देवताङ० २६६।

याज्ञवल्क्य आदि ऋषियों ने जिस गायत्री भाष्य की रचना की है वह भी इन २४ अक्षरों की ही विस्तृत व्याख्या है महाव्याहृतियाँ इससे भिन्न हैं और जप प्राणायाम आदि में प्रयोगानुसार व्यवहृत होती है–

इस दिव्य महामन्त्र के द्रष्टा महर्षि वशिष्ठ और जगविदितं महर्षि विश्वामित्र है। गायत्री मन्त्र के २४ अक्षर तीन पदों में विभक्त है अस्तु, यह त्रिपदागायत्री कहलाती है। गायत्री दैहिक दैविक एंव भौतिक त्रिविधताप हन्त्री त्रिगुणात्मिका एवं पराविद्या का स्वरूप है।–

गायत्री के त्रिविध रुप

गायत्री के तीन रूप है–

१. सरस्वती

२. लक्ष्मी

३. काली

इन तीनों रूपों से पालन करने वाली गायत्री त्रिगुणत्मिका सत् रज तमा होती हुई निरन्तर प्रकाशित होती रहती है

'ह्रीं श्रीं क्लीं चेति रूपेभ्यस्त्रिभ्यो हि लोकपालिका। [१]

भासते सततं लोके गायत्री त्रिगुणात्मिका।

गायत्री ही वेदों की माता तथा समस्त शास्त्रों का सार कही गयी हैं। निः सन्देह चारों वेदो को गायत्री इस ने ही प्रकट किया है।

गायत्र्येव मता माता वेदानां शास्त्रसम्पदाम।

चत्वारोऽपि समत्पन्न वेदास्त था असशंयम्।। [२]

गायत्री का एक विलक्षण ध्यान निम्न हैं

---

१. ऋ०व ३ /६२/६, वाज सनेयी सं० ३/३५

मुक्ताविद्रुमहेमनील धवलच्छायै मुखैस्त्रीक्ष्णै।
युक्तामिन्दुनिबद्धरत्न मुकुटा तत्वात्म वर्णाम्त्मिकाम्।
सावित्री वरदाभया उशकशा : शुभ्र कपालं गुण
शंख चक्रमथा रविन्दुयुगल हस्तैबहन्ती भेजै।। [३]

गायत्री के पञ्चमुख (पंचप्राण– प्राण अपानव्यान, समान, उदान तथा पञ्चततव – पृथिवी जल, वायु, तेज ओर आकाश के धारक प्रेरक है। ये कमल पर विराजमान होकर रत्न, हार, आभूषण आदि धारण करती है। इनके दशहाथ है जिनमे क्रमशः दशआयुध । शंख चक्र, कमल युग, वरद, अभय, कशा, अडकुश उज्जलपात्र एवं रूद्राक्ष की माला सुशोभित होते है।

देवी भागवत पुराण का द्वादश स्कन्ध विशेष रूप से सन्ध्या एवं गायत्री की महिमा का वर्णन करते हुए ही पूर्णत्व को प्राप्त करता है। इस प्रकार गायत्री की महिमा बहुत ही व्यापक और अवर्णनीय है।

शक्ति तत्व एवं त्रिशक्तियां -- श्री महाकाली श्री लक्ष्मी श्री महासरस्वती

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निः शेषदेवगण शक्ति समूह मूर्त्या।
तामम्बिकामखिल दैवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्मविदधातु शुभानिसा नः।। [१]

दर्शन शब्द का अर्थ आँख भी है और देखना भी है। वेदान्त प्रधान षडदर्शन भी है।

इन छः दर्शनों का नाम दर्शन प्रायः इसी हेतु से यही होगा कि ये संसार के स्वरूप को तथ्य को छः स्थान से छःदृष्टि से छः प्रकार से देखते है–

---

१. गायत्री संहिता
२. गायत्री संहिता
३. शारदातिलक २१/१५

" प्रस्थान भेदादर्शन भेदः।

और इनके बल से, विशेषकर वेदान्त के अध्यत्मशास्त्र के बल से, अन्य सब शास्त्रों के हृदय को, मर्म को जान लेना पहचान लेना हो जाता है। मानो मनुष्य को नयी आँख हो जाती है जिससे यह सब शास्त्रों सम्प्रदायों, मार्गों, पन्थों, धर्मो के सार, को सत्य अंश को , तात्विक अंश को देखने लग जाता है।

मेधासि देवि विदिता खिलशास्त्र सारा। (२)

इसी दृष्टि से देखने से ऐसा जान पड़ता है कि द्वन्द्रमय संसार के, जीवन के जैसे दो ही कारण कहा जाय रूप कहा जाय वैसे दो ही उपासना के प्रकार है एक रस एक रूप सदा परमात्मा की उपासना और अनन्तरसवती, अनन्तरूपिणी सतत परिणामिनी माया की उपासना।

शक्ति शक्ति मदुम्मं हि शाक्तं शैवमिदं जगत्
स्त्री पुस प्रभवं विश्वं स्त्री पुंसात्माकमैव च।
परमात्मा शिवः प्रोक्तः शिवा माये ति कथ्यते।
पुरूषः परमेशानः प्रकृतिः परमेश्वरी। (१)

'शैते शवशरीरेष इति शिवः। मामा, या नास्ति किन्तु प्रतिभसते सा माया। मा अविद्या, भोगदा। 'मा' न इति न इति सर्वमुर्तरूप निषेधिनी विद्या मोक्षदा।(२)

या मुक्ति हेतुरारविचि न्त्यमहाव्रता
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियत त्व सारैः।।
मोक्षार्थि भि र्मुनिभिरस्तसमस्त दोषै–
र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि।। (३)

---

१. श्री दुर्गा सप्शती मध्यम चारित ४/१२ श्लोक

२. श्री दुगासप्तशती मध्यमचरित ४/१२ श्लोक

नींद में सोकर सुस्ताया हुआ मनुष्य जागना चाहता है जागते जागते विविध ा प्रकार के कर्म करते करते ओर भोग भोगते भोगते थका मनुष्य सोना चाहता है। भोग मोक्ष अभ्युदय निःश्रेयस काम निर्वाण शक्ति शिव यही पुरूषार्थ का जोड़ा द्वन्द्व है। आत्मज्ञानरूपी पराविद्या की उपासना शिव की उपासना है।भोगसाधक ज्ञानस्वरूप वाली विद्या कहें या अविद्या कहें—

"द्वैविद्ये वेदितव्ये परा चैवापरा च "

की उपासना शक्त्युपासना है। बुभुक्षु प्रबृत्युन्मुख संसार प्रागभार व्युत्थानचित्त की इसमें रूचि होती है।

निवृत्युन्मुख कैवल्य प्राभारं निरोध चिन्त की दूसरे में रूचि होती है।,

"इहैव च निजं राज्यमविभ्रश्यन्य जन्मनि। (१)

सुरथराजा ने देवी से याचना किया ।

"ममेत्यहमिति ज्ञानं सगविच्युति कारकम्। (२)

समाधि वैश्य ने माँगा यह कथा श्रीदुर्गासप्त शती में वर्णित है।

यह द्वन्द्वता हाँ भी, नही भी, हँसना भी, रोना भी, जागना भी, सोना भी, सटना भी, हटना भी, चाहना भी, डाहना भी, शरीर ओढना भी, छोडन भी, पुरूष की प्रकृति है। पुरूष से भिन्न प्रकृति नहीं पुरूष की प्रकृति परमात्मा का स्वभोव। ब्रहम की माया, शिव की शक्ति ईश्वर भूत जीव और जीवभूत ईश्वर की इच्छा—

तस्य चेच्छाभ्यहं दैत्य सृजामि सकलं जगत्।
स मां पश्यति विश्वात्मा तस्याहं प्रकृति शिवः (३)
सगुण निर्गुण सातु द्विधां प्रोक्ता मनीषिभिः।
सगुण रागिभिः सेव्या निगुण तु विरागिभिः। (४)
केचित्तां तप इत्याहुस्तमः केचिन्जयं परे।
ज्ञानं मायां प्रधानन्च प्रकुति शकितमध्यमाम्।।
विमर्श इति तां प्राहु शैवशास्त्र विशारदः
अविद्यामितरें प्राहुर्वेद तत्वार्थ चिन्तकः।। (५)

'इच्छा शक्तिरूमा कुमारी' अर्थात् इच्छा ही शक्ति है जब अन्य बलवन्तर इच्छा से आहतन हो। जब व्याहत हो जाय तब वही अशक्ति है। पर व्याघत से क्रोध का रूप धारण करके वह अशक्ति ही काल प्राप्त कर नूतन शक्ति में परिणत हो जाती है।

पीडयन्ते दुर्बला यत्र तत्र रूद्र : प्रजायतें।
प्रहलादः सहतां क्लेशान् नृसिंह केन मार्यते।।

सुखानुशयी रागः दुःखानुशयी द्वेषः। ग्रहणेच्छा आकर्षणेच्छा उपासनेच्छा का नाम राग या काम ओर त्यागेच्छा अपकर्षणेच्छा अपासनेच्छा का नाम द्वेष या क्रोध है। इन दोनो ही प्रतिद्वन्दियों के सुन्दो पसुन्दवत् परस्पर संहार से परस्पर निषेध ा प्रतिषेध से न इति न इति करके जीवन तुला के दोनो सुख दुःख रूपी पल्लो के नाम होते रहने से सार्थिक परमार्थक दृष्टि से सर्वकाल या काला भाव में सदा बराबर रहने से ही ब्रहम परमात्मा की निष्क्रियता अपरिणमिता एक रसता अखण्डता निरञ्जनता निर्विशेषता शिव की शिवता, शान्तता शापिता सुषुप्तता तुरीयता सिद्ध होती है । इसी रागद्वेषरूपिणी महाशक्ति इच्छा शक्ति नामक अमूर्त आध्यात्मिक तत्व के पौराणिक, तान्त्रिक, साम्प्रदायिक, मूर्तरूप गौरी, काली, भवानी, भैरवी, अन्नपूर्ण दुर्गा, उमा, चण्डी आदि है। इन्ही के पुरूषाकार शिव रूद्र भव हर शंकर उग्र ईशान भीम आदि है –

१. शिव पुराण कल्याण शक्त्य ङक पृ० १२१
२. कल्याण शक्त्य पु० १२१।
३. श्री दुर्गा सप्त शती मध्यम चरित ४/६ श्लोक

---

१. श्री दुर्गा सप्तशती उत्तम चरित १३/१७
२. श्री दुर्गा सप्तशती उत्तम चरित १३/१८
३. श्री दुर्गा सप्तशती मध्यम चरित ३/३४ –३५
४. श्री मद्देवी भागवत पु० १/१८/४०,
५. श्री मद्देवी भागवत पु० ७/१२/६–१०

जिनकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।

अपनी अभिलाषा और अपने अभीष्ट के अनुसार मननात् त्रायते इति मन्त्र,मन्त्रमूर्ति देवता देवता की मूर्तिभक्त गण संकल्पकर लेते है और उनसे उनके अभीष्ट सुख और दुःख भी मिलते है, तैतीस कोटि ही नही अनन्त कोटि मनुष्यों की तैतीस क्या अनन्त कोटि इच्छा के अनुसार तैतीस ही नही अनन्त कोटि देवता हो जाते है। सब जीव, सब देह, सब उपासक सब उपास्य सभी भकत सभी इष्ट एक ही परम देवता सर्वव्यापक प्रेरक परमात्मा की संकल्प शक्ति, भावना शक्ति, इच्छाशक्ति से कल्पित भाक्ति प्राणित हो रहे है सभी तो उन्हीं के रूप है।

'रूपं रूपं प्रतिरूपों बभूव।'

यह परमात्मा की ' मा या' रूपिक्षी इच्छा शक्ति ही उस मूल पुरूष की मूल प्रकृति है। पर इसके तीन अंग है। हृदय स्थानी तो स्वयं इच्छा शक्ति है, शिरः स्थानी ज्ञान शक्ति है, इस्तपादस्थानी क्रियाशक्ति है

मूल प्रकृति रूपियाः संविदो जगदुदभावे
प्रादुर्भूतं शक्तियुग्मं प्राणबुद्ध्याधिदैवतम्
दुर्गा तु बुदध्याधिष्ठात्री राधा प्राणेश्वरी मता।
राप्नोति संकलान् कामास्तस्माद्राधेति कीर्तिता।।
सर्वबुंद्धा यधिदेवीय मन्त्रार्थभिस्वरूपिणी
दुर्गासकंटहन्त्रीति दुग्रेति प्रथिता भुवि।

इच्छा को पूरा करने का उपाय बुद्धि, ज्ञानशक्ति, ज्ञानेन्द्रिय, व्यापिनी बताती है और क्रिया शक्ति प्राणशक्ति, कमेन्द्रियव्यापिनी, उस उपाय को निष्पन्न करती है एक ही संवित्शक्ति चेतना शक्ति चित्शक्ति की तीन कला तीन मुख तीन रूप व्यव्हार में व्यावहारिक दृष्टि से प्रतीत होते है। पारमर्थिक दृष्टि से निष्क्रिय, निश्चल निस्पन्द हो कर तीनो एकाकार संवित् के आकार में अव्यक्त ब्रहम परमात्मा परम पुरूष से सदा प्रलीन निर्वाण है—

" या देवी सर्वभूतेषू चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नामो नमः।
चितिरूपेण या कृत्स्न मेहा द्वयाप्त स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नामो नमः। [१]

उसी परमप्रकृति की तीन आदिमा विकृति यां यह तीन है जिनके न्याय शास्त्रोक्त आध्यात्मिक नाम ज्ञान शक्ति (महासरस्वती)इच्छा शक्ति(महाकाली)क्रिया शक्ति(महालक्ष्मी) है। इन्हीं के मूर्तिकारों प्रतिमाओं के पौराणिक नाम महासरस्वती, महाकाली और महालक्ष्मी की संज्ञा से ज्ञेय है। तान्त्रिक ऐ क्लीं हीं (श्री)रूप हैं। इन्हीं के पुरूषाकारों के पौराणिक नाम विष्णु, महेश, और ब्रहमा हैं आधिदैविक सांख्ययोगोक्त नाम सत्व तमस् रजस् हैं पारमार्थिक वेदान्तोक्त नाम चित आनन्द सत् है।

जैसे इच्छा के दो प्रतिद्वन्दी रूप काम क्रोध वैसे ज्ञान के तथ्य मिथ्य और क्रिया के –

परोपकारः पुण्ययाय पापाय पर पीडनम्।

"ज्ञानेच्छा क्रियाणां त्रिसृणां व्यष्टीनां–
महासरस्वती महाकाली महालक्ष्मीरिति
प्रकृतिनिमित्र वैलक्षणण्येयन नाम रूपान्तराणि सचिदानन्दत्मकपरब्रहमधर्मत्वादेव शक्तैरपि त्रिरूपत्वम्।[१]

"महासरस्वति चिन्ते महालक्ष्मी सदात्मिके।
महाकाल्यानन्द रूपे वृतदज्ञान सिद्धये।
अनुसंदमहे चण्डि वयं त्वां ह्रदयाम्बुजे।
महालक्ष्मी ब्रहमत्वं महाकाली रूद्रत्व महासरस्वती विष्णुस्त्वं प्रपेदे। [२]

---

१. देवी भागवत पु० ६/५०

"रजोगुणाधिकों ब्रहमा विष्णुः सत्वाधिको भवेत्

तमोगुणाधिको रूद्रः सर्वकारणरूप धृक्।।

स्थूलदे हो भवेत् ब्रहमा लिंग देहो हरिः स्मृतः।

रूद्रस्तु कारणो देहन्तुरीयत्व हमेव हि। (३)

" यस्य प्रथमा रेखा सा– क्रियाशक्तिः।

यस्य द्वितीया रेखा सा– इच्छाशक्तिः।

यस्य तृतीया रेखा सा– ज्ञानशक्ति।। (४)

" शक्ति स्वाभाविकी तस्य विद्या विश्व विलक्षणा।

एकानेकस्य रूपेण भाति भानोरिव प्रभा।।

अनन्ताः शक्तयस्तरस्य इच्छाज्ञान क्रियादयः।

इच्छाशक्ति र्महेशस्य नित्या कार्यनियभ मिका।।

ज्ञानशक्तिस्तु तम्कार्यकारणं कारण तथा,।

प्रयोजन च तत्वेन बुद्धिरूपाभ्यवस्यति ।।

मयेप्सितं क्रियाशकितर्य थाभ्य वसितं जगत्।

कल्पयत्यखिलं कार्य क्षणात् सकंल्प रूपिणा।" (५)

अनन्ता शक्तयस्तस्य श्री देवी भागवत् पुराण में श्री दुर्गासप्तशती में अन्य पुराणो ओर तन्त्रों में श्रीललिता सहस्रनाम' प्रभृति स्तोत्रों में इनकी सूचना प्रस्तुत की है मूर्त्तरूपों की और अमूर्त आध्यात्मिक भावों के रूपों में भी –

" सात्विकस्य ज्ञानशक्ती राजसस्य क्रियात्मिका।

द्रव्यशक्तिस्तामस्य त्रिसस्च कथिता स्तव। (१)

परमात्मार की इच्छा शक्तियों का हा रूपान्तर अनन्त द्रव्यशक्तियों है। इनको अर्थ शक्ति भी कहा गया है–

"ऋषिरेव हि जानाति द्रव्यसंयोग जात गुणान्।" (२)

---

१. श्री दुर्गा सप्त शती उत्तम चरित ५ वाँ अध्याय देवी सूक्तम्।

यह इच्छाशक्ति अनन्त पदार्थो द्रव्यों देहों योनियो भूतग्रमो के रूप का धारण और मारण करती रहती है

"मन्वानि श्रृणवानि पश्यानि जिघ्राणि अभिव्याह–राणि..इति आत्मा ....मनः श्रोत्र चक्षु घ्राणं वाक् अभवन्। [३]

"एको ऽहं बहु स्यांप्रजायेव।" [४]

इस इच्छा से असंख्य ब्रहमाण्डो मे से एक पृथ्वी नामक ब्रहमाण्ड ब्रहम के गोलअण्ड भूगोल पर चौरासी लक्षस्थावर जडंम चतुर्विध भूतग्राम कें राशी कृत द्रव्यात्मक रूप धरण कर लिये। प्रत्येक में विशेष शक्ति दूसरो के पोषण या शोषण की रज्जन या द्वेषण की है। बहिर्मुखवृत्ति पाश्चात्य विज्ञानचार्य अधिकतर इन्ही का अन्वेषण करने में और उनसे काम लेने में, इन्द्रिय सुख बर्धन में, ज्ञान शक्ति और क्रियाशक्ति का उपयोग करते है।

औषधिजा सिद्धियो के साधन में व्यस्त है वहाँ शक्ति देवी की पूजा वर्शिप आफ पावर आफ मैट माइट बहुत जोरो पर है पूर्व देश मं भारतवर्ष में अपने को ऋषि सन्तान मानने कहने वाले पञ्चविध सिद्धियों की –

"जन्मैमधिमन्त्रतपः समाधिजा· सिद्धयः। [१]

चर्चा तो अवश्य करते हैं, पर उनके साधन में पुण्यक्षय ओर पापोदय के पापसारभूत पाप की एक मात्रजननी भेदबुद्धि, स्वार्थबुद्धि, दुर्बुद्धि, के कारण नितराम अशक्त हो रहे है। इसी से वे चतुर्दिक तिरस्कृत होते रहते है। उनका कथन है कि हम ' शिव देव की पूजा ' वर्शिप आफ पीस' शान्ति की प्रशम की पूजा करते है परन्तु न तो सच्ची शिव की न सच्ची शक्ति की उपासना करते है। सच्ची उपासना यदि शक्ति मान् शिव की की जाय तो उत्तमा शक्ति पृथग् नही रह सकती है।

---

१. कल्याण शक्त्यक पृ०१२२

२. श्रीदुर्गा सप्तशती की गुप्तावती टीका

३. देवी भागवत् पु० १२/८/७२–७३ श्लोक

४. शिवपुराण वायुसहिता उत्तरखण्ड अध्याय ७ और अध्याय ८

"रुद्रहीनं विष्णु हीनं न वदन्ति जनाः किल।

शक्तिहीनं यथा सर्वे प्रवदिन्तिनराधमम्

रूद्रहीन विष्णुहीनं कहकर किसी का तिरस्कार नही किया जा सकता शकितहीन अशक्त क्रोधे न पुसक निकम्मा किसी काम कानही कि तेन जनस्य जन्तुस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषदिरः। [3]

ऐसा कहकर अनादर अपमान किया जाता है

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः। [1]

यह आत्मा आत्माराज्य बलहीन निर्बल दुर्बल को नही मिलता हैं। बल तपस्या से होता है। तप बलेन बहमा ने सृष्टि रची। तपस्या का अर्थ शरीर सुख का त्याग ही नही अपितु किसी ऊँचे अच्छे परार्थी उददेश्य से दृढ़ सकल्प से सदा भीतर तप से भी रहना उसके के भी साधन मं दत्तचित्त रहना ।

उत्थातब्य जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु।

भविष्य तीत्येव मनः कृत्वासततमव्ययैः।। [2]

'सर्वभूतहिते रताः' ये शब्द दो बार श्रीमद्भागवत गीता में आये है।

"तैर्दत्तान प्रदायैभ्योयो भुडक्ते स्तेन एवं सः [3]

यह भी प्रयुक्त है

दीन दुर्बलो का अनुचित उत्पीडन ताड़न देखता हुआ जो ब्रहमण समदृष्टि और शान्त अपने को मान ओर कहकर वास्तविक रूप से अपना आराम सुरक्षित रखने हेतु उपेक्षा कर जाता हैउसका अर्जित ब्रहमज्ञान फटे वर्तन में से पानी के समान चू कर बह जाता है–

---

१. देवी भाग० पु० ३/७/२६

२. कल्याण शक्त्यक पृ० १२३

३. छान्दोग्य उप०

४. ऋ० सृष्टि सूंकत (नासदीय सूक्तम्)

ब्रहमणः समदृक शान्तौ दीनानां समुपेक्षकः।
स्रवेते बहम तस्यापि भिन्नभाण्डात पयौ यथा। [४]

विद्यारूपिणी शक्ति के और ऐसी शक्तिवाले शक्तिमान् शिष्य के सच्चे उपासक वे ही है–
जो मनसा वाचा कर्मणा सर्वभूतेरत है
"ते एव मां प्रप्नुवन्ति ये सर्वभूतहिते रताः। [१]

क्योकि मै तो सर्वभूत से पृथक् नही हूँ सभी में अनुस्यूत हूँ
" अहममात्मा गुडा केश सर्वभताशयास्थितः। [२]

सव्रभूतहिते रत महर्षियो ने वेन राजा का नाश करके उसका सर्व प्रकारेण हित ही साधन किया ऐसा नही हुआ कि मात्र 'राजा वैन' का वास्तविक हित नही किया अन्यथा वह अधिकाधिक पाप परायण होता जाता परिणमस्वरूप महानरकगामी हो जाता। [३]

लोकन प्रयान्तु रिपवोडपि हि शस्त्रभूता।
इत्थं मतिर्भवति तेस्वपि तेडतिसाध्वी।।
चिन्ते कृपा समर निष्ठुरता च दृष्टा।
त्वव्येव देवि वर दे भुवनत्रयेडस्मिन्।।
दुर्वृन्त वृतशमन तव देविशीलं रूपं तथै तदविचिन्त्यमतुल्य मन्यैः
वीर्ण च हृन्तु हतदेव पराक्रमाणां।
वैरिष्वपि प्रकटितैप दया त्ववेत्थम्।। [४]

---

१. योग शास्त्र
२. देवी भागवतपु ३/६/१६
३. किराताज्रनीयम प्रथमसर्ग

देव देवियो के अवतार ही इसीलिये होते ही है इत्थं यदा यदा बाधा दानवो त्था भविष्यति

तंदा तदावतीर्याहं करिष्यास्यरिसंक्षयम्

परित्राणाय साधूनां बिना शाय च दुष्कृताम ।

धर्मसंस्थापनार्थाप समीवामि युगे युगे।।

तन्त्रशास्त्र के सकेत में 'इ' से शक्ति का बोधन होता है 'शिव में से 'इ' निकाल दी जाय तो 'शिव' 'शव' रह जाता है। इसलिये शंकराचार्य जी ने सौन्दर्यलहरी में कहा है कि–

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभावितुं

न चे देवं देवो न खलु कुशल स्पन्दि तुमपि ।

अतस्त्वा माराध्यां हरिहर विरिञ्चादिभिरपि

प्रणन्तु स्तोतु वा कथम कृतपुण्यः प्रभवति।। (१)

शिव शक्ति से उत्पन्न यह सारा ससार है शिव परमात्मा तो एक है पर एकाकी नारमत, स आत्मानं द्वे धाडपातयत पतिश्च पत्नी चाभवत। (२)

द्वेधा भी बहुधा भी असंख्य धा भी एकोउहं बहुस्यां प्रजायेव एक पुरूष की नाना प्रकृति होते हुए भी एक ही पुरूष सर्वव्यापी होना चाहिए पर अन्योन्यास से एक के अनेक पुरूष अनेक की एक प्रकृति दृष्टिगोचर(३) होती है। आदिम द्वन्द्व प्रथमयुगल–प्रकृति ओर पुरूष का है संसार के असंख्य अगण्य अनन्त समस्त युगल इसी के अनुकारण है, फल है, कार्य है।

---

१. गीता कठोपनिषद्

२. गीता

३. गीता ३/१२

४. श्रीमद्भागवत् पुरा वेन राज के प्रसंग में

गिरामाहुर्देवी द्रुहिणगृहिणीमागम विदो
हरेः पत्नी पदमां हरसंचरीमद्रितनयाम्।
तुरीया कापित्वं दुरधिगम निःसीमा माहिमाः,
महामाये ! विश्वं भ्रमयसि पर ब्रहममहिषी।। (४)

और भी द्रष्टव्य

(अ) शंकरः पुरूषाः सर्वे स्त्रियांः सर्वाः महेश्वरी।
विषयी भगवानी शोविषयः परमेश्वरी।।
मन्ता स एव विश्वात्मा मन्तव्यं तु महेश्वरी।।
आकशः शकंरो देवः पृथिवी शंकरप्रिया।।
समुदो भगवानी शो वेला शैलेन्द्र कन्यका।
वृक्षो वृषध्वजौ दैवो लता विश्वेश्वरप्रिय
शब्दजालमशेषं तु धतेशर्वस्य बल्लभा।
अर्थस्य रूपमखिल धतेमुगधेन्दुशेषरः।।
यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्ति रूद्राहृता।
सा सा विश्वेश्वरी देवी स स देवो महेश्वरः।।
पुल्लिडमखिलं धते भगवान् पुरशासनः।
स्त्रीलिग चाखिं लधते देवी देव मनोरमा।।
ये य मुक्ता विभूतिवै प्राकृती साऽपरा मता
नाम्प्रकृती परामन्या गुहयां गुहयविदोविदुः।।
चतौ वाचौ निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
अप्राकृती परा सैषा विभूतिः परमेष्ठिनः।।

---

१. गीता १२/४
२. गीता १०/२०
३. श्रीमद भा० पु० में राजा वेन का प्रसंग द्रष्टव्य
४. श्री दुर्गा सप्त शती ४ अध्याय १६/२२,२१
५. श्री दुर्गा सप्त शती ११/५४–५५७
६. गीता ४/१८

इयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा माया शक्ति दुरत्यया।
तस्या अधीश्वर साक्षात् रथमैव पुरूष परः
त्वं सर्वयज्ञ इज्यैयं क्रियेयं फलभुग्र भवान्।
गुणव्यक्तिरियं दैवी व्यज्जको गुणभुग भवान्।
त्वं हि सर्वशरीरार्थात्मा श्री शरीरैन्द्रियाशया।
नामरूपे भगवती प्रत्यय मण्डपाश्रयः।।

(स) अर्थौ विष्णुरियं वाणी नीतिरेषा तयोहरिः।
बोधे विष्णुरियं बुद्धिर्धमौडसो सत्क्रिया त्वियम्
स्रष्टा विष्णुरियं सृष्टि श्री र्भूमि भूधरौ हरिः।
सन्तोषौ भगवानल्लक्ष्मीस्तुष्टि मैत्रेय शाश्वती।।
इच्छा श्री र्भगवान कामौ यशौडसो दक्षिणा त्वियम्।
आज्या हुतिरसो दैवी पुरोडासौ जनार्दनः।।

* * * * * * * * * * * * *

काष्ठा लक्ष्मीनिमेषौडसौ मुहूतौडसौ कला त्वियम।
ज्यौत्स्नाः लक्ष्मीः प्रदीपौडसो सर्वः सवैश्वरौ हरिः।

* * * * * * * * * * * * *

विभावरी श्रीर्दिवसौ दैवश्चक्रगदा धराः।

* * * * * * * * * * * * *

ध्वजश्च पुण्डरी काक्षः पताका कमलालया।
गुणालक्ष्मीर्जगन्नाथो लोभो नारायणः परः।
रतौ रागश्च मैत्रेय लक्ष्मी गोविन्द एवं च।
किञ्चाति बहुनाक्तेन संक्षेपेणेदमुच्यते।।
दैवतिर्य डा० मनुष्या दौ पुन्नामा भगवान् हरिः।
स्त्रीनृम्नी जीव विज्ञेया नानयोविद्यते परम् ।।

---

१. सौन्दर्यलहरी १ श्लोक श्रीलक्ष्मी धरी टीका
२. कल्याण शक्त्यंक पृ० १२४
३. श्री दुर्गा सप्तशतीस्थ प्राकृतिक /वैकृतिक रहस्य
४. सौन्दर्य लहरी १०० वाँ श्लोक।

वायुपुराण में इसी तथ्य को दूसरे रूपक के रूप में वर्णन किया गया है। जिसमे पुरूष तत्व का नाम ' शिव' स्त्री तत्व का नाम 'विष्णु' सन्तान तत्व का नाम ' ब्रहमा' उल्लिखित है। विष्णु का ब्रहमा से कथन द्रष्टव्य है–।

हेतुरस्यात्र जगतः पुराणः पुरूषोऽव्ययः।
प्रधानम्रव्ययं ज्योति ख्यक्तं प्रकृतिसमः।।
अस्यै चैतानि नामानि नित्यं प्रसवधर्मिणः
सः सः इति दुःखान्तै मृग्यते येगिभिर्शिवः।।
एष बीजी भवानबीजमहें योनिः सनातनः।
अस्मान्महत्तरं गुहयं भूतमन्यन्न विद्यते।। (१)

शिव का कथन विष्णु के प्रति भी द्रष्टव्य

प्रकाशं चा प्रकाशञ्च जगमंस्थावरञ्च यत्।
विश्वरूपमिदं सवरूद्रनारायणात्मकम्।
अहमग्निर्भवान् सोमो भवान् रात्रि रहं दिनम्।।
भवान् ऋतमहं सत्यं भवान क्रतुरह फलम्।
भवान् ज्ञानमहं ज्ञेयमहं जप्यं भवान् जपः।।
आवाभ्यां सहिता चैव गतिनान्या युग क्षये।
आत्मानं प्रकृति विद्धि मां विद्धि पुरूषं शिवम्।।
भवानर्द्धशरीरं में त्वहं तव तथैव च।।(२)

श्री विष्णु जी के मोहिनी अवतार की कथा में इसी भाव को चरितार्थ किया है ––

शिवस्य ह्वदयं विष्णुः विष्णोश्च ह्वदयं शिवः।।

अ. शिवपु० वायवीय सं० उत्तरखण्ड अध्याय ५

ब. श्रीमद् भा० पु० ६/१६/११–१३

ऐसे ही ब्रहमा का इनसे अभेद है। त्रिभूर्ति ब्रहम विष्णु महेश की सरस्वती लक्ष्मी गोरी की सत्व रजस् तमस की इच्छा ज्ञान क्रिया की सदा अभेद है। इन सभी का पूर्ण सभाहार शक्ति शक्तिमान् में होता है

"शक्ति शक्तिमदुत्थं हि शाक्तं शैवमिद जगत्।
नमस्तस्यै नमस्तस्मै नमस्ताभ्यां नमो नमः।।

श्रीदुर्गा सप्तशती का तात्विक विवेचन

श्री दुर्गा सप्तशती मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत तेरह अध्याय का शक्ति महातत्म्य[१] प्रदर्शक एक भाग है। इसमे समस्त पुरषार्थो को प्रदान करने वाली शक्ति के स्वरूप, चरित, उपासना, साधना, के उपाय आदि का सम्यक् निरूपण किया गया हैं ।

यहाँ 'पराशक्ति' 'पद' महालक्ष्मी' का बोधक है। क्योकि प्राधनिक रहस्य में जहॉ 'त्रिमूर्ति' के उद्भव का प्रसग आता है वहॉ–
'सर्वस्या द्या महालक्ष्मीः। [२]

ऐसा स्पष्ट निर्दश है। यद्यपि महिषासुर का शमन करने के लिये देवों के तेजांश से सम्भूता अष्टादश भुजावाली' महालक्ष्मी' का वर्णन प्राप्त होता है तथापि वह पराशक्ति महालक्ष्मी प्रकृति रूपा है। और त्रिमूर्ति में परिणत महालक्ष्मी प्राध ाानिक रहस्य में कहे हुए –

' श्रीः पभे कमले लक्ष्मी : [३]

इत्यादि पद में उपस्थापित है इन्ही का तामसरूप ' महाकाली' और सात्वि करूप '' महासरस्वती है और वह स्वयं तो त्रिगुणात्मिका है सब में व्याप्त होकर स्थित है।

स. विष्णु पु० १ अंश /अध्याय ८

महालक्ष्मी का सृष्ट चक्र

महालक्ष्मी ने अपने मानस संकल्प से एक युग्म का सृजन किया, जिसमें ब्रहमा नर और लक्ष्मी नारी रूप में बने––

"हिरण्य गभौ रूचिरौ स्त्री पुसौ कमलासनौ।
ब्रहमन विधे विरिञ्चे ति धात रित्याह त ं नरम्।।
श्री पभे कमले लक्ष्मी त्याह माता च तां स्त्रियम्।।[१]

तदनन्तर महाकाली ने जो युग्म सृष्टि की उसमे ंनीलकण्ड : पुरूष और त्रयी विद्या स्त्रीरूप में प्रकट हुए।

"नीलकण्ठ रक्तबाहु श्रवेतांगं चन्द्रशेषरम्।
जनयामास पुरूषं महाकाली सितां स्त्रियम्।।
स रूद्रः शंकरः स्थाणुः कपर्दी च त्रिलोचनः।
त्रयी विद्या कामधेनुः सा स्त्री भाषाक्षरा स्वरा।। [२]

सरस्वती ने विष्णु पुरूष और गोरी स्त्री का युग्म सृजित किया–
सरस्वती स्त्रियं गौरीं कृष्णं च पुरूषं नृप। [३]

---

१. वायु पु० पूर्वाद्ध अ० २४
२. वायु पु० पूर्वाद्ध अ० २५

---

१. मार्कण्डेय पु० ८१–६३ अध्याय पर्यन्त
२. प्राधानिक रहस्य ४ श्लोक
३. प्राधानिक रहस्य १६ वाँ श्लोक

उपर्युक्त इन तीन युग्मों में से तीन मिथुन अर्थात् पति पत्नी भावापन्न हुए जिसमे–

१. ब्रह्मा और स्वरा – सरस्वती

२. रूद्र और गौरी

३. विष्णु और लक्ष्मी

का मिथुन सम्पन्न हुआ।

यहाँ युवति–

शक्तियां स्वयं पुरूयत्व को प्राप्त होकर तीन मिथुन के रूप में दृष्टिगोचर हुई।

यद्यपि यह शंकास्पद स्थल हो सकता है कि युवतियों पुरूष भाव को कैसे प्राप्त हो सकती है, इस सन्दर्भ में शास्त्र बहुधा प्रमाण प्रस्तुत करते है।। सामान्य बुद्धि में यह बात शीघ्र नही आयेगी। इस अर्थ को विशिष्ट बुद्धि ही ग्रहण कर सकती है एतदर्थ कहा जता है कि –

'चक्षुष्मन्तोऽनु पश्यन्ति'। [१]

अर्थात् जो चक्षुष्मान है जिन्हे तात्वि कदृष्टि प्राप्त है और जिन्हें 'पराशक्ति' का प्रभाव ज्ञात है। वही इसे समझ सकते है इतर नही एकादश अध्याय में ' नारायणी स्तुति' प्रसंग में वर्णन हे कि–

"विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रिय समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का तैस्तुति स्तव्यपरापरोक्तिः।[२]

---

१. प्राधानिक रहस्य १८ –१६ श्लोक

२. प्राधानिक रहस्य २१–२२ श्लोक

३. प्राधानिक रहस्य २३ वाँ श्लोक

अर्थात् हे देवि, समस्त विद्याये तुम्हारे ही भेद है – चारवेद , छः वेदाग अष्टादशपुराण महाभारतदि इतिहास, न्याय, मीमांसा, धर्म शास्त्र, इत्यादि चतुर्दश विद्या तथा भिन्न २ भाषाये, आयुर्वेद, धनुर्वेदादि उपवेद विद्युत विमानादि सभी विद्याये तुम्हारे ही विभिन्न स्वरूप है। इस कारण तुम महा विद्या कहलाती हो। इस सारे संसार में अर्थात्–

देव, मनुष्य, नाग, प्रभृति चतुर्दश भुवन में स्थित समस्त स्त्रिया भी ' स कला' अपनी कलाओं के सहित तुम्हारे ही विभिन्न प्रकार है। यहाँ कला शब्द से पुरूषो का ही बोध मान्य है क्योकि चौसठ कला और स्त्रियों में स्थित प्रति ब्रत्यादि गणु तो ' विद्या' ओर ' स्त्री ' में ही समाविष्ट हो जाते है। एदार्थ अत्रापि ' कला' पद से पुरूषों का ही ग्रहण समीचीन होता हैं।

इसी पद्य के तृतीय चरण में–

' त्वया एकया अम्बया एतत् पूरितम्'

अर्थात् माँ तुमने ही अकेले यह ब्रहमाण्ड भर दिया है ऐसा वर्णित है यहाँ यह ध्यातब्य है कि 'स्थ्त्रिय' का समस्ताः ' विशेषण प्रयोग करने से घोषित होने वाले प्राणियों को बोध हो जाता है। पुनः 'सकला' विशेषण भी यदि ' समस्ताः' अर्थ में लिया जाय तो पुनरूक्तदोष आ जायेगा। और एक ही शक्ति मं समस्त जगत् पूरित है। इसके भीतर पुरूष वर्ग को न ग्रहण करने पर अनुपपत्ति दोष आ जाता है । उसके परिहार के लिये ' कला' शब्द को पुरूष वर्ग– बोधक न माना जाय तो

' त्वयैकया'

---

१. श्री दुर्गा सप्त शती प्रधानिक रहस्य २५ वाँ श्लोक

२. श्री दु० स० श० ११/६

का अभिप्राय पूर्ण नहीं होता। शक्ति सर्व्रत्र दो प्रकार की अनुभव गोचर होती है। जिस प्रकार प्रयोक्ता को प्रयोग द्वारा विद्युत में ' आकर्षण और विकर्षण का प्रत्यक्ष होता है उसी प्रकार पराशक्ति भी अपने अनुग्रह से प्रकट होती है। इसीलिये प्राकृत जनों को शक्ति का सर्वात्मकत्व दृष्टिगोचर नहीं होता है। विद्युत के समान ही शक्ति की द्विविधिता रधनात्मक (Positive) और ऋणात्मक (Negative) अमिथुनता सर्व्रत्र व्यापक है। जैसे पशु, पक्षी, कीट पतंग आदि प्राणीवर्ग नर और नारी रूप में प्रत्यक्ष है। उसी प्रकार वृक्ष पाषाणादि में भी नर और मादा रूप में शक्ति के दो प्रकार सर्व्रत्र दृष्टिगोचर होते है । यही पराशक्ति के सर्वात्म भाव का सबसे अधिक प्रत्यक्ष परिचय है।

श्री दुर्गा सप्तशती के त्रिविध मातृ चरित का विवेचन

' संघे शक्तिः' इस सिद्धन्त को सभी स्वीकार करते है। प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जो काम एक व्यक्ति नही कर सकता उसे ही समदुाय कर डालता है। परन्तु दुर्गा सप्तशती में इसका जो सुन्दर उदाररण और उपदेश है वह आध ुनिक युग में संघ का स्पष्ट चित्रण कर रहा है। मध्यम चरित में वर्णन है कि – देवासुर युद्ध में देवसैन्य को पराजित करके महिषासुर इन्द्रपद पर प्रतिष्ठित हुआ पुरा

शुम्भ निशुम्भाभ्या मसुराभ्यां शचीपतेः।
त्रैलोक्यं यज्ञभागश्च हृत्ता मदबलाश्र यात्।। [१]

देवगणों में उसके प्रतीकार की शक्ति न रह गयी । उस समय आपद ग्रसत ओर अशक्त क्रोध से जर्जरीभूत देवों की आत्मा हिल उठी ओर सभी देवों के शरीर से एक तेज निकल कर घनीभूत हुआ जो महालक्ष्मी के रूप में परिणत हुआ तथा देवों की प्रार्थना पर महिषा सुर का मर्दन किया। जो काम पृथक पृथक रहकर देवगण नही कर सके थे सौन्य शक्ति के रहते हुए भी अपने अपनी वयक्तित्व के बने रहने के कारण वे लोग नही कर सके वही कार्य विपत्ति की पराकाष्ठा की अवस्था में अपने व्यक्तित्व को एकमात्र दबाकर अपनी

शक्तियों को घनी भूत करके वही लोग करा लिये। विजय दायिनी शक्ति उनके भीतर ही थी कही बाहर से नही आयी। यह समाज को शिक्षा प्रद कथा हैं।

लोक में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है कि जो लोग व्यवहार कुशल होते है उनमें वाक्‌पटुता कम होती है। वाणिज्य व्यवसाय में रत लोग प्रायः मितभाषी होते है। लेकिन विद्या व्यसनी लोग तो स्वभावतः प्रगल्भ होते है। सप्तशती ने इस मनो वैज्ञनि क अनुभव का सुन्दर चित्र खीचा है।

प्रथमचरित में ब्रहमाजी के स्तोत्र के उत्तर में महाकाली' ने एक शब्द भी नही कहा। उनका काम करके अन्तर्धान हो गयी । मध्यम चरित में देवगणो की स्तुति के उत्तर में ' महालक्ष्मी' तथा मात्र कहकर अन्तहित हो गयी।
परन्तु उत्तम चरित में देवगण के उत्तर में ' महासरस्वती ' प्रायः डेढ अध्याय [१] का व्याख्यान दे गयी।

संसार में प्रायः सदैव और भारतवर्ष में आजकल विशेषरूप से हिंसा और अहिंसा का प्रश्न समझदार जनों के हृदय को दोलायित करता रहता है। किसी के लिये हिंसा का अर्थ है शत्रु का मूलोच्छेद किसी के लिये अहिंसा का अर्थ है शत्रु के हाथ से सब कुछ सहन कर लेना। एक और स्मृतियों का उपदेश है–
' हन्यादेव आततायिनः
और दूसरी ओरबुद्ध का अहिंसा का उपदेश है ऐसी स्थिति में साधरण जन कर्तव्य का बोध करने में कष्ट का अनुभव करता है। व्यक्ति विशेष के लिये तो पूर्ण अहिंसा योग दर्शन के शब्दों में–

---

१. श्री दुर्गा सप्तशती २/१

---

१. श्री दुर्गा स० श० १ अध्याय रात्रि सूक्तम्
२. श्री दुर्गा स० श० ४ अध्याय ।

' देशकाल समयाद्यनवच्छिन्नसार्थ भौम महाव्रत '
है ऐसा विशेष व्यक्ति सर्वत्र प्रत्येक दशा में हर समय, हर व्यथ्क्त के साथ पूर्ण अहिंसा का पालन ' करेगा। पर मध्यम मार्गानुयायी साधारण जन के लिय यह उपदेश नही है। उन्हें यही उपदेश श्रेयस्कर है–

' पाप से घृणा, पापी से प्रेम
सप्तशती ने इसका सुन्दर उदाहरण दिया है–
'महिषासुर के वध के पश्चात् चतुर्थ अध्याय मे देवगण कहते है–

हे भगवती आप तो इन शत्रुओं को यों ही भस्म कर सकती थी फिर इन पर आपने शस्त्र पात् किया क्यो ?,
"दृष्टैव किं न भवती प्रकरोति भस्म।
सर्वासुरानरिषु यत् प्रहिणोषि शस्त्रम्।।
इसका उत्तर वे स्वयं यों देते है कि –

' यह ' दुष्ट' पापकर्मा यदि यों मरते लो नरक जाते , आप चाहती थी कि इनके उठ जाने से संसार का कल्याण हो साथ ही इनका भी कल्याण हो । एतदर्थ शस्त्र पात् किया कि लड़कर वीर गति प्राप्त करके वे सब स्वर्ग जा सके।'

"एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते,
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम्।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि।।
सत्तशती के शब्दों मे जिसे –
"चित्ते कृपा समर निष्ठुरता "। [१]

कहा है मुझे तो साधारण जनों के लिये सुन्दर व्यावहारिक नीति प्रतीति होती है भले ही उसे हिंसा या अहिंसा लोग समझ सकते हैं।

---

१. सप्तशती ११ वाँ/१२ वाँ अध्याय

वेदान्त अद्वैतवाद के इसमें अनेक निदर्शन है। दशम् अध्याय में शुम्भ कहता है कि तुम तो ' इन्द्राणी आदि के बल का आश्रय लेकर लड़ रही हो।

" अन्यासां बलमाश्रित्य युद्ध से याति मानिनी।।"

इस पर भगवती के शरीर में से सब ब्रहमाणी, इन्द्राणी, वैष्णवी, आदि देवियां समाजाती है अकेले एक ' महासरस्वती रह जाती है। उस अक्सर पर देवी कहती है।

"एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।।"

* * * * * * * * * * * * *

"तस्या दैव्यास्तनौ जम्मुरे केवासी तदाम्बिका।।" [2]

इस जगत् में मै अकेली हूँ मेरे अतिरिकत दूसरा कौन है ? जिस देवी का इसमें वर्णन है। वह शाङंरवेदान्त की माया से अभिन्न है इस बात को प्रथम चरित में ' सुमेधा ऋषि' ने स्पष्ट किया है–

"महामाया हरैश्चैषा तया सम्मोहयते जगत्

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ।।" [3]

अर्थात् भगवान् की यह माया जगत् को मोहित करती है वह देवी ज्ञानियो के भी चित्त को बलपूर्वक खीचकर मोह में डाल देती है। जिस बात को वेदान्त दर्शन के द्वितीय सूत्र –

" जन्माद्यस्य यतः।"[1]

के द्वारा प्रतिपादित किया गया है। यही बात ब्रहमा जी प्रथम अध्याय (चरित) में कहते है–

---

१. सप्तशती ४ अध्याय/१६ वाँ श्लोक

२. सप्तशती ४ अध्याय/१८ वाँ श्लोक

३. सप्तशती ४ अध्याय/२२ वाँ श्लोक

"त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा।।"[२]

'हे देवि तू ही इस जगत् की सृष्टि करती है, तू ही इसका पालन करती है धारण करती है और अन्त में तू ही इसको अपने मे लीन कर लेती है। ऋ० का ' नासदीयसूक्त '[३] दर्शन की पराकाष्ठा और प्रथम विवेचन है। इसकी बहुत ही सुन्दर व्याख्या सप्तशती को प्रथम अध्याय के इन शब्दों मे होती है–

" यच्च किञ्चिद् क्वचित् वस्तु सदसदा खिलात्मि के ।
तस्य सव्रस्य याशक्ति : सा त्वम् कि स्तूय से तदा।।" [४]

जिनके द्वारा यह बतलाया गया है कि सद् और असद् दोनों प्रकार की वस्तुओं के भीतर जो शक्ति अर्थात् सत्ता तत्तदवस्तुता है वह भगवती ही है। व्यावहारिक वेदान्त का चतुर्थ अध्याय में एक बहुत ही अपूर्व उपदेश है। अच्छे आदमी कष्ट पाते है और बुरे आदमी सर्वप्रकोरण सुख भोगते है।

इसे देखकर धर्म के प्रति कतिपय मनुष्यों में अश्रद्धा हो जाती है। कितने ही सम्प्रदायों ने अश्रद्धा से रक्षा हेतु ईश्वर के साथ ही एक "शैतानः की भी परिकल्पना की है। वैदिक धर्म शैतान को तो नही मानता पर उसे भी संसार के इस अंधेर का उत्तर तो देना ही पड़ता है। वेदान्त के अनुसार सप्तशती कितना सुन्दर उत्तर देती है।–

चतुर्थ अध्याय में देवगण कहते है–

" या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्व लक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां ह्रदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजन प्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम।। [१]

---

१. श्री दुर्गा सप्तशती १० आ० /३२ श्लोक

२. श्री दुर्गा सप्तशती १० आ० /५–६ वाँ श्लोक

३. श्री दुर्गा सप्तशती १ अ० ५५–५६ वाँ श्लोक

अर्थात् ' जो श्री अर्थात् महालक्ष्मी[२] स्वयं पुण्योंत्माओं के घर में अलक्ष्मी अर्थात् दारिद्रय बन कर निवास करती है। सत्पुरूषो के हृदय में श्रद्धा और कुलीनो के हृदय में लज्जा अर्थात् पुण्या पुण्य विवेक रूप से निवास करती है उस तुझको मै प्रणाम करता हूँ। हे देवि विश्व का पालन करें। " कितना सुन्दर भाव है सत्पुरूष के घर की लक्ष्मी ओर पुण्यात्मा के मस्तिष्क की बुद्धि को भगवती का रूप मानना तो सरल है पर सुकृति के घर का दारिद्रय और दुरात्मा के हृदय की बुद्धि को भी इस रूप में अवलोकन करना वेदान्त का वास्तविक सत्य आदर्श और उपदेश है–

इस ग्रन्थ में योग सम्बन्धी तथ्य भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। प्रथम चरित (अध्याय) में तो यह तत्व प्रचुर तया उपलब्ध है। यह स्वाभाविक भी है।

खण्ड प्रलय के उपरान्त सन्धिकाल है। जलमयी सृष्टि है अभी क्षिति तत्व प्रकट नही हुआ है। जगत्पाता विष्णु योगनिदा के वशी भूत होकर निश्चेष्ट सोये हुए है । ब्रह्मा शीघ्र ही समाधि से नीचे उतरे है। व्युत्थान अवश्य हुआ है उन्हें सृष्टि करनी है पर अभी क्या करना है इस तरफ उनका ध्यान सम्यक् नही केन्द्रित हुआ है। ऐसे ही अवसर पर 'मधु' ओर ' कैटभ' से साक्षत्कार हो जाता है। अभी समाधि से उतरे ब्रह्मा में अंहिसाकी प्रवृत्ति प्रबल है। उधर आत्म रक्षार्थ कोई भी उपक्रम नहीं करते आत्म जगत् हित के लिये विष्णुजी का निद्रा त्याग आवश्यक है क्योकि सृष्टि होते ही रक्षा का कार्य उपस्थित हो जायेगा, जो बिना रक्षक विष्णु के सम्भव नहीं होगा। उस कालावधि में ' आद्याशक्ति' अपने तामसी अर्थात ' महाकाली' रूप में है। वह आवश्यकता देख कर ओर ब्रह्मा जी की चिन्ता का अनुभव करके विष्णु के शरीर से अलग हो जाती है। तब रजो गुण का प्राधान्य होता है सो तो हुआ। उस समय ब्रह्माजी ने भगवती की जो स्तुतिकी है वह 'श्रीसप्तशती' के सभी स्तोत्रों से सुन्दर गम्भीर और आध्यात्म से परिपूर्ण है।

---

१. ब्रह्मा सूत्र प्रथम अध्याय / २ सूत्र

२. सप्तशती १ /७५–७६ श्लोक

३. ऋ० नासदीय सूक्त १०/४

४. सप्तशती १/८२ और ८३ वाँ श्लोक

ऐसा स्वाभाविक भी था, क्योकि ब्रह्मा जी शीघ्र ही समाधि से अतरे थे। उदाहरणार्थ कतिपय शब्द प्रस्तुत है–

"त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता
अर्द्धमात्रात्मिका नित्या यानुचार्याविशेषतः।। [१]

इस जगत् में पञ्चीकृत महाभूत कार्य रहे है। उनकें एक एक अणु में कम्पन है। उस कम्पन से यह जगत् शब्दायमान हो रहा है। जहाँ कम्पन है वहॉ शब्द की सत्ता है। सूक्ष्म भूत अपञ्ची कृत है तथापि उनके परमाणुओ में भी कम्पन है और उस कम्पन से एक सूक्ष्म शब्द राशि उत्पन्न होती है जेसा कि कबीर ने भी कहा है कि––

"तत्व झंकार ब्रहमाण्ड माही।"

उस शब्द राशि का नाम 'अनाहत नाद' है (परवर्ती काल में महात्माओं ने अनहद नाद उच्चरित किया) जब तक अभ्यासी इस अनाहद नाद को नही श्रवण कर पाता तब तक उसका अभ्यास अधूरा रहता है। पुनः कबीर के ही शब्दों में–

"जोग जगा अनहद धुनि सुनिकौ।"

जब अनाहद सुनाई पड़ने लगता है तब इस का अर्थ यह है कि योगी का शनैः शनैः अर्न्तजगत् में प्रवेश होने लगा। अपने विस्मृत स्वरूप को कुछ कुछ पहचानने लगा। शक्ति वैभव और ज्ञान के भाण्डार का दर्शन पाने लगा अर्थात् महाकाली, महालक्ष्मी,महासरस्वती के दर्शन पाने लगा जो अभ्यासी वही उलझकर रह गया, वह तो वहीं रह गया पर ज ो तल्लीनता से बढ़ता जाता है।
वह शनैः शनैः ऊर्ध्व लोकों को प्राप्त करता जाता है।

---

१. सपतशती ४ अध्याय / ५ वाँ श्लोक
२. यह महालक्ष्मी का स्तोत्र है।

अन्त में आकाश सीमा का भी उल्लधन कर जाता है और वही शब्द का अन्त है। पर सब जलीन होते समय शब्द अनाहद के रूप में नही रहता । अब वह जिस रूप में रहता है उसका साम्पुटिक प्रतीक बैखरी वाणी में 'ओइम्' है। प्रथम रूप वह है जो 'अकार' से व्यक्त होता है उससे भी सूक्ष्म 'उकार'और उससे भी सूक्ष्म 'मकार' हैं। इन्हीं तीनो को ब्रह्मा जी ने –

'त्रिधा मात्रात्मिका नित्या'। [१]

कहा है इसके परे योगी को एक ऐसे सूक्ष्म ध्वन्याभास का अनुभव होता है जो किसी प्रकार भी मानव भाषा में व्यक्त नहीं हो सकता । इसी को ॅ से कभी कभी अगिंत करते है ओर यही वह पदार्थ है जिसे–

'अर्धमात्रा'[२]

कहते है एतत्पश्चात् 'नाद' अपने जनक आकाश में लीन हो जाता है नाद का अनुगामी 'बिन्दु' है वही अशब्द हे अनामिपद है–

'अनुचार्या विशेषता:'[३]

यह गति योगी को षट्चक्र पार करके सहस दल कमल में प्राप्त होती है। इसी को दूसरे शब्दों में तन्त्र और योगशास्त्र ग्रन्थों में

'सार्धत्रय वलयाकृति'

अर्थात् साढ़े तीन लपेटा लिये हुए ' कुण्डलिनी शक्ति' कहा गया है जो सुप्तावास्था में रहती है जब योगी उसे जागृत करता है तब वह चक्र भेदन करती हुई सहस्रार में जाकर पुरूष (शिव) के साथ मिलकर उसमें लीन हो जाती है जिसका नाम–

'शिव शक्ति योग'

है उस अवस्था को प्राप्त योगी का अधःपात नही होता । एतदर्थ ब्रह्माजी कहते है—

" परापराणां परमा।"

---

१. श्री सप्तशती १ चरित रात्रि सूक्तम्

यही श्वेता श्वतर उप० का–

"पति पतीना परमं परस्ताद् है।

यह एक उदाहरण मात्र है इस ग्रन्थ में विशेषेण प्रथम चरित में योग शास्त्र के रहस्य से पूर्ण अनेक स्थल है। वैदिक देवीसूक्त, रात्रिसूक्त और रहस्यत्रय विशेषताः 'प्राधानिक रहस्य' की सूक्ष्मता की ओर ध्यान केन्द्रित करने पर इस ग्रन्थ की महत्ता का भान होगा। इस सन्दर्भ में माता जी ने स्वयं कहा है कि ' चक्षुष्मन्तः नु पश्यन्ति नेतरे जनाः।' (२)

दस महाविद्यायें -

संस्कृत साहित्य में दस महाविद्याओं का विशद विवेचन प्राप्त होता है। ये महाविद्यायें तन्त्र साहित्य के अन्तर्गत आती है किन्तु उनमें से कतिपय काकुछ विवेचन पुराणों में भी हुआ है। साथ ही भैरव भी है। ये निम्नलिखित है–

	महाविद्या	**भैरव**
१.	महाकाली	महाकाल भैरव
२.	तारा	अक्षोभ्य भैरव
३.	षोडशी (श्री विद्या)	पञ्चवक्त्र शिव
४.	भुवनेश्वरी	त्रयम्बक शिव
५.	छिन्नमस्ता	कबन्ध शिव
६.	त्रिपुर भैरवी	दक्षिणा मूर्ति काल भैरव
७.	धूमावती	विधवा
८.	वल्गामुखी(बगलामुखी)	एकवक्त्रमाहरूद्र
६.	मातगी	मतगं शिव
१०.	कमला	सदाशिव

---

१. सप्तशती १ अ० / रात्रि सूक्तम् ।

२. सप्तशती १ अ० / रात्रि सूक्तम् ।

३. सप्तशती १ अ० / रात्रि सूक्तम् ।

इनमें अवान्तर क्षुद् विद्याओं की अपेक्षा पूर्वोक्ति विद्यायें यद्यपि अवश्य ही महाविद्यायें हैं परन्तु इनमें भी परम्परा के तारतम्य से भेद हो जाता हैं। इनमें कोई महाविद्या है। कोई सिद्धविद्या, कोई श्री विद्या तो कोई विद्या ही है। अहः पुरूष है, रात्रि स्त्री है, शक्ति है । अस्तु ये विद्यायें महारात्रि, कालरात्रि, मोहरात्रि, दारूणरात्रि आदि रात्रि नामों से प्रसिद्ध है। इसे निम्न तालिका में स्पष्ट किया जा रहा है—

	संख्या	शक्ति	नामान्तर	रात्रि	विद्या	शिव
१.	०	महाकाली	——	महारात्रि	महाविद्या	महाकाल
२.	१	तारा	——	क्रोधरात्रि	श्रीविद्या	अक्षोम्य
३.	२	षोडशी	त्रिपुरसुन्दरी	दिव्यरात्रि	सिद्धविद्या	पञ्चवक्त्र शिव
४.	३	भुवनेश्वरी	राजराजेश्वरी	सिद्धरात्रि	सिद्धविद्या	त्र्यम्बक
५.	४	छिन्नमस्ता	——	वीररात्रि	विद्या	कबन्ध
६.	५	भैरवी	त्रिपुरभैरवी	कालरात्रि	सिद्धविद्या	दक्षिणमूर्ति कालभैरव
७.	६	धूमावती	अलक्ष्मी	दारूणरात्रि	विद्या	——
८	७	वल्गामुखी	बगलामुखी	वीररात्रि	सिद्धविद्या	एकवक्त्र महारूद्र
६.	८	मातंगी	——	मोहरात्रि	विद्या	मतंग
१०.	६	कमला	लक्ष्मी	महारात्रि	विद्या	सदाशिव विष्णु

श्री विद्या के लीलाविग्रह

विद्या शब्द संस्कृत की विद ज्ञाने धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ ही ज्ञानया ज्ञान की देवी होता है —'श्री' श्रयते या परब्रहम इति श्रीः अर्थात् जो परब्रहम का आश्रयण कर रहे वह 'श्री' कहलाती है।

---

१. श्वेता श्वत रोष०

२. प्राधानिक रहस्य

श्री विद्या के लीला विग्रह तो अनन्त हे त्रिपुरारहस्य माहत्म्यखण्ड तभी ब्रहमाण्ड पुराणों तर खण्ड और पराणेतिहासों में मुख्या विग्रहो का परिगणन इस प्रकार है–

१. कुमारी– इन्द्रादि देवों के गर्व परिहारार्थ श्रीमाता कुमारी रूप से प्रकट हुई थी।

२. विरूपा– कारण पुरूष ब्रह्मा विष्णु ओर शिव को उनके अधिकृत सृष्टि स्थिति संहारात्मक कार्यो मेँ सहायता करने के लिये श्रीमाता ने वाणी रमा तथा रूद्राणी शक्तियों को अपने शरीर से उत्पन्न कर तीनों से उनका विवाह संस्कार करा दिया।

३. गौरी,

४. रमा– मर्त्यलोक मेँ मानवों द्वारा यज्ञ यागादि कर्मो के न होने से इन्द्रादि देव चिन्तित हुए। ब्रहमा जी की आज्ञा से उन लोगों ने महालक्ष्मी की आराधना की जिससे महालक्ष्मी ने अपने पुत्र कामदेव को देवों की सहायता के लिये प्रेषित किया। कामदेव से और भूलोकाधिपति राजा ' वरीब्रत' के सैनिकों से घोर युद्ध हुआ, जिसमें कामदेव विजयी हुए। राजा वीरब्रत ने इस आपत्ति के शमनार्थ शिव आराधना की और विजयप्राप्ति का वरदान प्राप्त कर शिवजी से प्राप्त त्रिशूलात्मक बाण युद्ध में प्रयोग कर कामदेव को मार डाला। लक्ष्मी के दूतों ने निश्चेष्ट कामदेव क शरीर को लक्ष्मी जी के पास पहुँच दिया, जिसे लक्ष्मी जी ने श्रीत्रि पुराम्बा प्रसाद से अमृत द्वारा प्राणित कर दिया। शंकर के प्रभाव से अपनी पराजय और मृत्यु होने को वृतान्त सुनकर तत्कालदेव कामदेव के मन में शंकर जी के प्रति घोरद्वेष ग्रन्थि पड गयी। त्रिपुराम्बा की आराधना सेबल सञ्चय कर शंकर को हराने की कामदेव ने मानसिक प्रतिज्ञा की । इतने मेँ ही श्रीमहालक्ष्मी ने त्रिपुराम्बा की प्राथना की जिससे त्रिपुराम्बा द्वारा प्रेषिता गौरी वहाँ पर प्रकट हुई। श्री महालक्ष्मी तथा कामदेव दोनों को ही समझाया

कि शकर जी सर्वथा सर्वश्रेष्ठ है। उनसे स्पर्धा करना श्रेयस्कर नही होगा वरन् उनकी आराधना कर उन्हीं से अभीष्ट प्राप्त करना समीचीन होगा। गौरी की उक्ति सुनकर कामदेव रूष्ट हुआ ओर शंकर विजय का अभिप्राय प्रकट कर दिया। यह सुनकर कुद्ध गौरी ने ' तुम शिव जी के द्वारा भस्म होगे' ऐसा अभिशाय दे दिया। अपने प्रिय पुत्र को शापित सुनकर महालक्ष्मी ने गौरी को श्राप दिया कि ' पति निन्दा सुनकर तुम भी दग्ध होगी । यह सुनकर गोरी ने भी महालक्ष्मी को शाप दिया कि – ' तुम पतिविरह का दुःख तथा तपस्वियों से क्लेश प्राप्त करोगी। इसके अनन्तर गौरी और लक्ष्मी में युद्ध प्रारम्भ हुआ। परस्पर के प्रहार से दोनों मूर्च्छित होने लगी। ब्रहमा और सरस्वती की मध यस्तता में किसी प्रकार युंद्ध शान्त हुआ। शिवजी को जीतने की अभिलाषा से कामदेव ने अपनी माता महालक्ष्मी से त्रिपुराम्बा के ' सौभाग्याष्टोतरशतनाम स्तोत्र ' का उपदेश प्राप्त किया। मन्दराचल की गुफा में बैठकर उसने आराधना आरम्भ की। कुछ दिन पश्चात् त्रिपुराम्बा ने प्रसन्न होकर स्वप्न में कामदेव को अत्यन्त गुप्त 'पञ्चदर्शनी विद्या' का उपदेश दिया। दिव्यवर्षत्रय तक कामदेव ने एकाग्रभाव से श्रीमाता की आराधना किया। भगवती ने प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष दर्शन दिया। 'हे काम ! आज से तुम अजेय हुए' ऐसा कहकर श्रीमाता ने अपने धनुः शरों से धनुः शर उत्पन्न कर कामदेव को प्रदान किये।

दक्षयज्ञ में पति की निन्दा सुनकर भस्मी भूत गौरी ' नभोरूप' में स्थित रहीं पश्चात् हिमाचल की आराधना से प्रसन्न हो कर गौरी रूप में उत्पन्न हुई।

तारकासुर वध में शिव पुत्र को सेनानी बनाना आवश्यक समझकर इन्द्र ने शिवतपो भंग करने के लिये काम को आज्ञा दी। गौरी के समक्ष ही शिवजी ने अपने तृतीय नेत्र से काम का दाह किया।

५. भारती – ब्रह्मादेव जी की सभा में देवर्षि नारद द्वारा सावित्री की स्तुति सुनकर ब्रह्मा जी ने उसका उपहास किया। सावित्री ने इससे अपमान समझ कर ब्रहमा जी को खूब फटकार लगायी। इस पर ब्रह्मा जी रूष्ट होकर बोले 'पति

का अपमान करने वाली तुम पत्नीत्व के अयोग्य हो आज से यज्ञों में मेरे साथ नहीं स्थान, प्राप्त करोगी। सावित्री ने भी क्रुद्ध होकर कहाकि ' यदि मैं तुम्हारी पत्नी होने के योग्य नही हूँ तो शूद्र कन्या तुम्हारी पत्नी होगी। इस प्रकार दोनो के क्रोध से जगत् में व्याकुलता देख कर हरि और हर ने दोनों को आश्वस्त किया और देहान्तर में सावित्री ही शूद्र कन्या होगी ऐसी घोषणा किये। तदपि ब्रहमा ओर सावित्री पूर्णतः शान्त नही हुए थें, ब्रहमा ने सावित्री को शूद्रकन्या जन्म में पूर्व वृतान्त के स्मरण न रहने का श्राप दिया। सावित्री ने निन्दय स्त्री में ब्रह्मा को कामुक होने का श्राप दिया।

एकदा ब्रहमा जी ने यज्ञ करने का सकंल्प किया। सावित्री को बुलाया किन्तु वह न आयी। मुहूर्त अतिक्रमण के भय से विष्णु ने भूतल से एक गोपकन्या लाकर उससे ब्रह्मा का विवाह सम्पन्न कराया और यथाविधि यज्ञ भी सम्पन्न हुआ। सावित्री अत्यन्त क्रूद्ध हुई, जिससे त्रैलोक्य दग्ध होने लगा। तब पार्वती की प्रार्थना पर त्रिपुराम्बा ने प्रकट होकर सावित्री को शान्त किया।

६. काली– आदिदैत्य मधु कैटभ के कुलों में उत्पन्न शुम्भ निशुम्भ नाम के दो दैत्यों ने उग्रतपस्याकर ब्रह्माजी से पुरूषमात्रा से अजेय होने का वरदान प्राप्त किया। त्रिलोक विजयी होकर देवत्व पर अधिकार कर के देवों को निर्वासित कर दिया। ब्रह्मा विष्णु शिव इन्द्रदि देवों ने जान्हवी के तट पर 'नमो दैव्यै इस स्तोत्र से त्रिपुराम्बा की स्तुति किये,जिससे प्रसन्न होकर त्रिपुराम्बा ने गौरी को भेजा । गौरी ने देवो का सकल वृतान्त सुनकर काली का रूप ध ारणकर निशुम्भ शुम्भ प्रेषित चण्ड मुण्ड नामक दैत्यों का वध किया।

७. चण्डिका

८. कात्यायनी– छः इन तीनों अवतारों की कथाये सप्तशती स्तोत्र में प्रसिद्ध तथा सर्वजनीन है।

९. दुर्गा– महिषासुर के वध के लिये महालक्ष्मी दुर्गारूप में श्रीमाता ने अवतार धारण किया। यह कथा भी सप्त शती के मध्यम चरित में वर्णित है।

१०. ललिता – पूर्वकाल में ' भण्डासुर' ने श्री शिवजी की आराधना की ओर उनसे अभय रूप वर प्राप्त कर त्रिलोका धिपत्य करते हुए देव– हविर्भाग का भी स्वयमेव उपभोग करना आरम्भ किया।इन्द्राणी उसके डर से गौरी के निकट आश्रयार्थ गयी। इधर भण्ड ने विशुक्र को पृथ्वी का ओर विषग को पाताल का आधिपत्य दिया। स्वयं इन्द्रा सनस्थ होकर इन्द्रादि देवों को अपनी पालकी ढ़ोने पर नियुक्त किया। शुक्राचार्य जी ने दयार्द्र होकर इन्द्रादि देवों को इस दुर्गति से मुक्त किया। असुरों की मूल राजधानी शोणित पुर को ही मयासुर के द्वारा स्वर्ग से भी सुन्दर निर्माण कराकर उसका नवीन नाम करण 'शून्या का पुरा' कर भण्ड शासन करने लगा। स्वर्ग को नष्ट भ्रष्टकर दिक्यालों के स्थान पर उसने दैत्यों को ही दिक्पाल पद पर प्रतिष्ठित किया। एक सौ पाँच इतर ब्रहमाण्डों को जीत कर अपने अधीन करने के पश्चात् तपस्या द्वारा शिवजी से अमरत्व का वर प्राप्त किया। इन्द्राणी ने गौरी का आश्रय ग्रहण किया है। इसे जानकर वह कैलास जाकर, गणेश की भर्त्सना कर इन्द्राणी को बलात् लाना चाहा। इस पर प्रमथगणों के साथ गणेश जी का भण्डासुर से संग्राम होने लगा। पुत्र को युद्धतर देख कर गोरी सहायतार्थ अपनी कोटि कोटि शक्तियों के साथ युद्ध करने लगी। गणेश जी की गदा से मूर्च्छित होकर पुनः प्रकृतिस्थ होकर भण्डासुर ने अंकशाघात से गिरा दिया। गौरी यह दृश्य देखकर क्रोध से हुंकार करती हुई भण्ड को बाँधकर ज्यों ही मारने के लिये उद्यतः हुई त्यों ही ब्रह्माजी ने गौरी को शिव प्रदत्त अमरत्व वर का स्मरण कराया, विवश होकर गौरी ने जीवन–दान प्रदान किया।

इस प्रकार भण्ड से त्रस्त होकर इन्द्रादि देवों ने गुरूकी आज्ञा से हिमालय में त्रिपुरा देवी को प्रसन्नता हेतु तान्त्रिक महायाग प्रारम्भ किया। अन्तिम दिन याग की समाप्ति पर देव लोगो की स्तुति से प्रसन्न होकर अग्नि ज्वाला से महाशब्द पूर्वक तेजस्विनी त्रिपुराम्बा प्रकट हुई। उस महाशब्द को सुनकर तथा

उस लोकों त्तर प्रकाशपुञ्ज को देखकर गुरू बृहस्पति के अतिरिक्त सभी देवगण बधिर एवं अन्ध होते हुए मूर्च्छित हो गये। गुरू और ब्रह्मा ने हर्ष के साथ गद्‌गद्‌ स्वर से श्रीमाता की स्तुति किये। देवों ने अपनी व्यथा कथा बताकर भण्ड नाश की प्रार्थना किये। माता ने सभी देवों को स्वस्थ्य करते हुए ओर तपस्या कर दर्शन की योग्यता प्राप्त करने का आदेश दिया। देवों की पुनर्तपस्या का वृतान्त ज्ञात होने पर भण्ड पुनः आक्रमण करता है जहाँ वह श्रीचक्रारूढ़ा श्रीमाता तथा उनकी सखियो मन्त्रिणी, राजमातंगीश्वरी और दण्डिनी, वाराही तथा इतर शक्तियों द्वारा युद्ध करते हुए मारा जाता है। देवों का भय दूर होता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से आद्यापरा शक्ति का लीला विलास समय–समय पर देव कार्य पूर्त्यर्थ और धर्म रक्षार्थ होता रहता है। शास्त्रों में इस प्रकार श्रीमातृ–शक्ति के विविध स्वरूपों एवं कृत्यों का प्रकाश यत्र–तत्र सर्वत्र प्रकाशित हो रहा है।

* * * * * * * * * * * * *

* * * * * * * * * * * * *

* * * * * * * * * * * * *

अध्याय ७

गणपति (गणेश जी) स्वरूप विवेचन

गणपति (गणेश जी) तत्त्व

गणपति तत्व निरूपण के पूर्व गणेश के वैदिक तत्व के सन्दर्भ में सामान्य विवेचन करना आवश्यक है। यह तो सर्वमाय सिद्धान्त है कि ऐतिहासिक दृष्टि से विकास सिद्धान्त के अनुसार प्रायशः समस्त पौराणिक देवताओं को मूलरूप वेद मे मिलता है। शनैः शनैः ये विकास को प्राप्त हो कर कुछ नवीन रूप में दृष्टिगोचर होते है। इनका नाम वेदो मे गणेश न होकर 'ब्रहमस्पति' है। जो वेद मे 'ब्रहमणस्पति' के नाम से अनेक सूक्तो में अभिहित किये गये है। उन्हीं देवता का नाम कालान्तर मं पुराणो में 'गणेश' मिलता है। ऋ० के द्वितीय मण्डल का यह सुप्रसिद्ध मन्त्र गणपति की ही स्तुति में हैं –

"ॐ गणनां त्वा गणपतिं हवामहे,
कविं कवीनामुपमश्रवस्त मम्।
ज्येष्ठराजं ब्रहमणा ब्रहमणस्पत आ.
नः श्रृण्वन्नूतिभिः सीद सदनम्।।"[1]

इसमें आप ब्रहमणस्पति कहे गये हैं ब्रहमन शब्द को अर्थ वाक् वाणी है। अतः ब्रह्ममणस्पति का अर्थ वाक्पति वाचस्पति वाणी का स्वामी हुआ।

'बृहदारण्यक उप० में ब्रहमणस्पति का सही अर्थ विवेचित किया गया हैं–
"एष उ एवब्रह्मणस्पतिर्वाग वैब्रह्य, तस्या एव पतिस्तस्मादब्रहमणस्पति वाग्वै बृहती तस्या एष पतिस्तस्मा बृहस्पतिः "।[2]

ज्येष्ठराज शब्द जो कालान्तर में गणपति के लिये प्रयुक्त किया गया है इसी उपनिषद् का है। इसका अर्थ है सर्वजेष्ठ, सबसे प्रथम उत्पन्न होने वाले देवताओं का राजा शासनकर्ता। इन्द्र तो केवल देवों के अधिपतिमात्र है, किन्तु इन्द्र के भी प्रेरक होने से आप का नाम ज्येष्ठराज है। इस मन्त्र से 'गृत्समद ऋषि' देवगणों के अधिपति क्रान्तदर्शी अतीतानागत के भी द्रष्टा, कवियों के कवि, अनुपमेय कीर्तिसम्पन्न ज्येष्ठ राज ब्रहमणस्पति का अरावाहन करते है

और उनसे प्रार्थना करते है कि हमारे आवहान मन्त्र को सुनते हुए आप हमारी रक्षा के साथ हमारे गृह मे आकर निवास कीजिये। यह सकल सूक्त ब्रह्मणस्पति गणेश की प्रशंसा में है। इतर सूक्तों मे भी अपम्प की स्तुति मिलती हैं, अस्तु, गणेशजी को ब्रह्मणस्पति के रूप मे वैदिक देवता होने में लेशमात्र भी सशय नही है।

सर्वजगन्नियन्ता पूर्ण परमतत्व ही "गणपित तत्व है क्यों कि 'गणानां पतिः गणपतिः"। गण शब्द समूहस्य वाचकः परिकीर्तित।

समूहों का पालन करने वाले परमात्मा को ही गणपति कहते है अथवा "महत्तत्व गणानां पति : गणपतिः"

अथवा

" निर्गुणसगुण ब्रह्मागणानां पति इति गणपति ।"

अथवा "सर्वविधि गणों कोसत्ता स्फुर्ति देने वाला जो परमात्मा है वही 'गणपति है। इस का अभिप्राय यह है कि 'आकाश स्तत्लिडवत् ।[1] इस न्याय से जिसमें ब्रह्मतत्व के गुण जगदुत्पति स्थिति–लय– लीलत्व जगनियन्नयन्तृत्व सव्रपालकत्वादि प्राप्त होवे वही ब्रह्म है। यथाआकाश का जगदुत्पत्ति स्थिति कारणत्व

"इमानि भूतानि आकाशदेव जायन्ते।"[2]

इस श्रुति से जाना जाता है। इसलिये वह भी आकाश पदवाव्य परमात्मा माना जाता है तदपि

" ॐ नमस्ते गणपतये त्वमेव केवलं

कर्तासि त्वमेव केवलं भर्तासि, त्वमेव केवल हर्तासि, त्वमेव सर्व खल्विंदं ब्रहमासि

---

१. ऋ० २/२३/१

२. बृहदारय को पनिषद १/३/२०–२१।

इत्यादि गणपति अथवशीर्ष[3] बचन द्वारा गणपति शब्द से भी ब्रहह्य ही निर्दिष्ट होता है। अतीन्द्रिय सूक्ष्मति सूक्षम वस्तु तत्व का निर्णय केवल शास्त्र के ही आधार पर किया जा सकता है। जैसे शब्द की अवगति श्रोत्र से ही होती है वैसे ही पूर्ण परमतत्व की अवगति भी शास्त्र से ही होती है। इसलिये

"तं त्वौपनिषदं पुरूषं पृच्छमामि"।[4]

और

"शास्त्र योनित्वात्"।[5]

इत्यादि वेदमन्त्र ब्रह्य सूत्र एवं अनेक विधि युक्तियों से भी यही सिद्ध होता है कि सर्व जगत्कारण ब्रह्य शास्त्रै कप्रमधिगम्य ही है। शास्त्रा यही ज्ञेय होता है कि सर्वदृश्य जगत् का पति ही ' गणपति है क्योकि 'गणपन्ते बुद्धयन्ते तेगणाः 'इति व्युत्पति से सर्वदृश्यमात्र ही 'गण' है और इसका जो अधिष्ठान है वही गणपति है। कल्पित की स्थिति एवं प्रवृत्ति अध्ष्ठिान से ही होती है। अस्तु कल्पित का पति अधिष्ठान ही युक्त है। यद्यपि इस पर कहा जा सकता है कि 'तब तो भिन्न–भिन्न पुराणों में शिव, विष्णु, सूर्य,शक्ति आदि सभी ब्रह्य रूप से ही विवक्षित है, जबकि ब्रह्यतत्व एक ही है तो उसके नाना रूप भिन्न भिन्न पुराणों में कैसे उपलब्ध होते है। इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि ' एक ही परमत्त्व भिन्न–भिन्न अभिलषित सिद्धि के लिये अपनी अचिन्त्य लीला शक्ति से भिन्न भिन्न गुणगण सम्पन्न होकर, नाम रूपवान् होकर अभिव्यक्त होता है, जैसे भामनीत्व सर्वकामत्व सर्वरसत्व सत्संकल्पत्वदि गुणविशिष्ट ब्रह्य तत्व की उपासना करने से उपास को को उपास्प विशेष्ण गुण ही फलत्वेन प्राप्त होते है। तद्वत् प्रधान्येनविध्न विनाशकत्वादि गुण विशिष्ट वही परमतत्व गणपतिरूप में आविर्भूत होता है"।

---

१. ब्रह्यासूत्र १/१/२२

२. नृसिंह पूर्व तापिनी उप० ३/३

३. श्रीगणपित अथर्व शीर्ष उप०

४. बृहदारण्य को पा० ३/६/२६

५. ब्रह्यसूत्र १/१/३

नर तथा गज स्वरूप का विवेचन

शास्त्र मुख्य रूप से वेद और वेदानुसारी स्मृति पुराण इतिहास आदि ही हैं। शास्त्र गणपति को पूर्णब्रह्म प्रतिपादित करते है। श्रीगणपति अथर्वशीर्ष में गणपति को 'पूर्णब्रह्म' वर्णित किया गया है।

" त्वमेव प्रत्यक्षं तत्ववमसि "

जिसका अभिप्राय यह है कि गणपति के स्वरूप में नर तथा गज इन दोनो का ही सामञ्जस्य प्राप्त होता है। यह मानों प्रत्यक्ष ही परस्पर विरूद्ध से प्रतीपमान 'तत् पदार्थ' तथा त्वंपदार्थ' के अभेद को सूचित करता है क्योंकि 'तत् पदार्थ सर्वजगत्कारण सर्वज्ञ सर्वशक्ति मान् 'परमात्मा' होता है, एव त्वं पदार्थ' अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान् 'जीव' होता है। उन दोनो का ऐक्य यद्यपि आपाततः विरूद्ध है तथापि लक्षण से विरूद्धोशद्वय का त्याग कर एकता सुसम्पन्न होती है। इसी प्रकार लोक में यद्यपि 'नर तथा गज' का ऐक्य असम्मत है तथापि लक्षणा से विरूद्ध धर्माश्रय भगवान् में वही सामाञ्जस्य है अथवा जेसे तत्पद लक्ष्यार्थ सर्वोपाधिनिष्कृष्ट

'सत्यं ज्ञानमन्तं ब्रह्म'[१]

एवं लक्षणा लक्षित ब्रह्म है, वैसे ही त्वं पदार्थ जगन्मय सोपाधिक ब्रह्म है । इन दोनों का अखण्डैकरख्स ' असि पदार्थ ' में सामञ्जस्य है। इसी प्रकार 'नर और गज' स्वरूप का सामञ्जस्य गणपति स्वरूप में है । 'त्वंपदार्थ नर स्वरूप है तथा तत् पदार्थ गज स्वरूप एवं अखण्डैकरस गणपतिरूप 'असि पदार्थ में इन दोनों का सामञ्जस्य है।

---

१. श्रीगणपति अथर्वशीर्ष उप० प्रष्टव्य

---

१. तैत्ति० उ० २/१/१

२. कल्याण गणेशांक पृ० २६ दृष्टव्य

३. कल्याण गणेशांक पृ० २६ द्रष्टव्य

शास्त्र में नर पदार्थ से प्रणवात्मक सोपाधिक ब्रह्म कहा गया है।

" नराञ्जातानि तत्वानि नाराणीति विदु बुधिः" ।[2]

गज शब्द की व्याख्या शास्त्रेण निम्न है–

" समाधिना योगिनो यत्र गच्छन्ति इतिगः"

यस्मात् बिम्बप्रतिबिम्ब तया प्रणवात्मकं जगञ्जायते इति जः" ।[3]

अर्थात् समाधि से योगी लोग जिस परम तत्व को प्राप्त करते है वह 'ग' है और जैसे बिम्ब से प्रतिम्बि उत्पन्न होता है तदवत् कार्य कारण स्वरूप प्रणवात्मक प्रपञ्ज जिससे उत्पन्न होता है उसे 'ज' कहते है।

" जन्माद्यस्य यतः"[1]

और

"" सस्मादों कारसम्भूतिर्यतो वेदो यतो जगत्"

इत्यादि वचन भी उसके पोषक है। सोपाधिक 'त्व' पदार्थोत्क नर गणेश का पादादिकाष्ठ पर्यन्त देह है। यह सोपधिक होने से निरूपधि कापेक्षय निकृष्ट है। अतएव अधोभूता है निरूपधि सर्वात्कृष्ट तत् पदार्थमय गणेश जी का कण्ठादि मस्तक पर्यन्त गज स्वरूप है क्योकि वह निरूपधिक होने से सर्वोत्कृष्ट है सम्पूर्ण पादादि मस्तक पर्यन्त गणेशजी का देह 'असि पदार्थ' अखण्डैक रूप है।

एकदन्त पद का विवेचन

यह गणेश एक दन्त है। 'एकशब्द' मापा का बोधक है और 'दन्त' शब्द ' मायिक ' का बोधक है।

" एक शब्दात्मिका माया तस्पाः सर्व समुद्भवम्।

दन्त सन्ता धरस्तत्र माया चालक उच्यते।[2]

अर्थात् गणेश जी में माया और मायिक की योग होने से वे ' एकदन्त' कहलाते है।

---

१. ब्रह्मासुत्र १/१/२

२. मुद्गल पुराण

वक्रतुण्ड पद का विवेचन

गणेश जी वक्रतुण्ड भी है–

" वक्रम आत्मरूपं मुखं यस्य "

'वक्र टेढ़े को कहते है। आत्मस्वरूप टेढा है।

क्योकि यह सम्पूर्ण जगत् तो मनोवचनो का गोचर है किन्तु आत्मतत्व उनका मनवाणी का विषय है

"यतोवाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।"[1]

इत्यादि वचन इसके प्रमाण है और भी

"कण्ठाथे माय या युक्तं मस्तकं ब्रह्मवाचकं वक्राख्यं येन विघ्ने शस्तेनापं वक्र तुण्डकः।[2]

चतुर्भुज गणेश

गणेश जी चतुर्भुज भी हैं क्योंकि वे देवता नर, असुर और नाग् इन चारों के स्थापन करने वाले है एवं चतुर्वेद चतुर्वगादि के भी स्थपक है। वे भक्तानुग्रहार्थ अपने चारों हाथों मे–

१. पाश

२. अंकुश

३. अभय मुद्रा

४. वरमुद्रा

धारण करते है। भक्तों के मोहरूपी शत्रु को फंसाने के लिये 'पाश' तथा सर्वजगन्नियृत्वरूप ब्रह्म 'अंकुश' है। दुष्टो का नाश करने वाला ब्रह्म 'दन्त' और सर्वकामनाओं को पूर्ण करने वाला ब्रह्म 'वर' है।–

स्वर्गेषु देवताश्चायं पृश्व्यां नरांस्तथाउतले।

असुरान्नाग मुख्यांञ्च स्थापतिठयति बाल कः।

तत्वानि चालयन् विप्रास्तमान्नाम्ना चतुर्भुजः।

चतुर्णा विवधनां च स्थापकोङयं प्रकीर्तित.।।

मूषक वाहन पद विवेचन

बिल मे रहने वाला, सव्र जन्तुओं के भोगों को भोगने वाला ही है। वह चोर भी है क्योंकि जन्तुओं के अज्ञात सर्वस्व को हरने वाला है, उसको कोई जानता नहीं क्योंकि माया से गूढरूप अन्तर्यामी ही समस्त भोगों को भेगता है। इसीलिये वह " भोक्तांर सर्वतपसाम्" कहा गया है। 'मूष स्तेये' इस धातु से मूषक शब्द निष्पन्न होता है। मूषक जैसे प्राणियेंा को सर्वभोग्य वस्तुओं को चुराकर भी पुण्य पापों से विर्वार्जित ही रहता है, वैसे ही माया गूढ सर्वान्तर्यामी भी सब भोगों को भोगता हुआ पुण्य पापों से विवर्जित है। वह सर्वान्तर्यामी गणपति की सेवा के लिये मूषक रूप धरण का अनका वाहन बना है।

मूषकं वाहनं चास्प पश्यन्ति वाहनं परम्।
तैन मूषकवाहोऽयं वेदेषु कथितोऽभवत्।।

मूष स्तेये तथा धातुर्ज्ञातव्यः स्तेश्ब्रह्यधृक्
नामरूपात्कं सव्र तत्रासद् ब्रह्मा वर्तते।।
भोगेषु भोग भेक्ता च ब्रह्यकरैण वतैते।
अहंकारयुतस्त वे व जानन्ति विमोहिताः।
ईश्वर सर्वभोक्ता च चोखत्तत्र संस्थितः।
सं एव मूषकः प्रोक्तो मनुजानां प्रचालकः।[१]

निगम आगम में सव्रत्र यह प्रसिद्ध है कि गणपित का वाहन 'मूषक ' है । पार्थिव धनप्राण गणपति नाम से कहा गया है इस का वाहन निविडधन यह पृथिवी पिण्ड ही है।

---

१. तै० उ० २/४
२. कल्याण गणेशांक पृ० २६
३. कल्याण गणेशांक पृ० २६ द्रष्टव्य।

---

१. कल्याण गणेशांक पृ० २६

इस अत्यन्त धनप्राण की संज्ञा 'मूषक ' है । इस प्राण से 'मूषक' प्राणी का निर्माण होता है। अतः यह प्राणी उस प्राण का निदान माना गया है । अर्थात् गणपति के वाहन मूषक को भूपिण्ड मानना चाहिए । दूसरे शब्दों में 'गणेश' की प्रतिष्ठा भूपिण्ड है। यह गणपति प्राण उक्थरूप से भूपिण्ड (मूषक)पर स्थित होकर त्रैलोक्य में व्याप्त है। निरूक्त में भगवान् यास्क का कथा है कि सव्य देवता ही अपने वाहन आयुध एवं आभूषण आदि रूपों मे परिणत होते है। अतः यह भूपिण्ड रूप ' मूषक' गणेश से अभिन्न हो जाता है । प्रतिष्ठा बलरूप गणेश का पीतमृन्ति का एवं पूर्णफल में अतितरां विकास है । अस्तु ये दोनो ही गणेश की भाव प्रतिमा मानी गयी है।

ध्यान एवं निदान भाव

आगम, पुराण आदि शास्त्रों में "नैदान" भावो से कल्पित गणपति के अनेक ध्यानो का उल्लेख प्राप्त होता है। इनमें से विविध ध्यानों का उल्लेख किया जा रहा है।

१. खर्व स्थूलतनु गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुंन्दरं प्रस्यन्दन्मधुगन्ध्लुब्धम
धुपत्यालोलागण्छस्थ लभ् दन्ता घातविदा रिरूधिरै सिन्दूर शोभाकरम् ।
बन्दे शैलसुता सुतं गणपतिं सिद्धिप्रद कामदम्।।
मै सिद्धि प्रदाता अभीष्ट पादी पाव्रतीनन्दन भगवान्।

गणेश की वन्दना करता हूँ जो नाटे(खर्व) स्थूल काय गजवदन एवं लम्बोदर होने पर भी अप्रतिभ कमनीय है जिन की कनपटियों से चूते हुए मद की मधुर गन्ध से आकृष्ट भौरों के कारण वे कनपटियां चंचल प्रतीत होती हैं तथा अपने दाँत की चोट से विदीर्ण हुए शत्रुओं का रूधिर जिनके मुख पर शोभा धारण करता है।

२. सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतर जठरं हस्त पभैर्दधानम्।
दन्तं पाशाड कुशेष्टान्युरूकर बिलसद्वीज पूराभिरामम्।
बालेन्दु द्यौतं मौलिं करिपतिवदनं दानपूराद्र गण्डम्।
भौगीन्द्राबबद्धभूषं भजत गणपति रक्त बस्त्राडरागम्।।

जिनकी अडंकान्ति सिन्दूर के समान है, जिनके तीन नेत्र है, जिनका उदर विशाल है, जो अपने अनेक हाथों में क्रमश दन्त,पाश,अंकुश, वर मुद्रा और बिजौरा (नीबू) धारण किये अतिसुन्दर लगते है जिनका मस्तक द्वितीया के चन्द्रमा से उद्भासित रहता है। गजबदन होने के कारण जिनकी कनपतियों मद के प्रवाह से भीगी रहती हैं जो अपने शरीर पर वासुकि नाम को अलंकार रूप में धारण किये रहते हे और जो लाल ही वस्त्र और लाल ही अंगराग धारण किये रहते है उन गणेश भगवान् का भजन करों।

३. उद्यदिनेश्वर रूचिं निजहस्तपभैः
पाशाडुशाभयवरान् दघतं गजास्पम्।
रक्ताम्बरं सकलदुः खहर गणेश
ध्यायेत् प्रसन्न मलिख भरणभिरामम्।।

उदयकालीन सूर्य के समान रक्तवर्ण जिनकी अंग कान्ति है जो अपने कर कमलों में क्रमशः पाश, अडुश अभय मुद्रा एवं वरमुद्रा धारण किये रहते है। जो गजवदन रक्ताम्बर धरणी समस्तदु खों का हरण करने वाले नित्य प्रसन्न तथा सब प्रकार के आभूषणों से भूषित रहते है उन भगवान् गणनायक का ध्यान करें।

निदान भावों के रहस्य का विवेचन

आगमिक शास्त्र घोषित करते है कि जिस प्राण देवता का भाव प्रतिमा (नैदान प्रतिमा) में आवाहन अभीष्ट होता है उस देवता के कल्पित नैदानस्वरूप को प्रथमतः अपने अन्तर्जगत में खचित करना पड़ता है। अतः आवाहन से पूर्व ध्यान का विधान विहित है। तदनन्तर ही 'गणपति मावाहयामि'।
इत्यादि रूप से भाव प्रतिमा अथवा नैदान प्रतिमारूप मध्यस्थ भूत में उस ध्यानात्मा के स्वरूप का आवाहन किया जता है, किन्तु आवाहितगण पति से भूतस्थ गणपति उदद्ध होते है, यही आवाहन का रहस्य है।

निदान शास्त्र द्वारा कल्पित 'गणपति' के उपर्युक्त त्रिविध ध्यानों में प्रयुक्त निदान भावों के रहस्य इस प्रकार है–

१. **खर्वम्**- 'गणेश' के शरीर की खर्वता (वामनत्व) खगोल एवं खगोलस्थ बृहत्तम सूर्य आदि पिण्डों के समक्ष यह पार्थिक पिण्ड, अत्यन्त लघु है इस रहस्य का संकेत है।

२. **स्थूलतनुम्** -यहाॅ पार्थिव 'गणपति ' प्राण पुष्टिभाव का प्रवर्तक है यह संकेत है। "पुष्टिवै पूषा" इस वैदिक विज्ञान के आधार पर पूष प्राण पुष्टि भाव का द्योतक है। अत्रापि गणपति प्राण पार्थिव 'पूषा' प्राण का अनुगामी है इस कारण यह भी पुष्टि भाव का प्रवर्तक है।

३. **गजेन्द्र वदनम्**- यह पर्थिव 'इरा' रस मादक है इसका प्रतीक है। हस्ती पशु मे इस रस का अधिक विकास है अस्तु वह 'गज' शब्द से अभिहित हुआ है।

'गजति' मदेन मन्तो भवति इति गजः।"

यह गज शब्द का निर्वचन है पार्थिव गणपति तत्व भी इस इरा रस से मन्त है। अतः उनको भी 'गजानन' शब्द से व्यवहत्त किया जाता है।

४. **लम्बोदरम्** - यह उरू अन्तरिक्ष मे अनुगत मरूदभाव का निदान है अर्थात् यह विस्तृत अन्तरिक्ष ही लम्बोदर ' गणपति' का लम्बा उदर है।

५. **दन्ताघातः** -यह धन प्राण का निदान है अर्थात् पार्थिव धन प्राण गणपति है देवता ही आयुधरूप में परिणत होते है यह पूर्तवचन है।

६. **सिन्दूरशोभाकरम्**- यह सिन्दूरवर्ण का द्योतक है। 'गणपति के सिन्दूरवर्ण, रक्त कान्ति, रक्त वस्त्र, रक्त अंगराग आदि आग्नेय पार्थिव प्राण के द्योतक हैअर्थात् गणपति पार्थिव आग्नेय प्राणरूप है।

७. **नागेन्दा बद्धभूषम्**- यह अन्तरिक्ष नाक्षत्रिक सर्पप्राणों का सूचक है अर्थात् गणेश के भूषण नाग नाक्षत्रिक दिव्य सर्पप्राण है। इन के उदर का भूषण सर्प खगोल का विषुवद् वृत्त है।

८. **त्रिनेत्रम्**- यह अग्नि सोम आदित्य रूप तीन भूतरूप ज्योतियो का निदान है अर्थात् ये तीन ज्योतियां गणेश के त्रिनेत्र है।

९. **हस्तपभैः**-यह खगोलीय चतुः स्वस्तिकों का निदान है अर्थात् खगोलीय चारस्वस्तिक ही गणेश के चार हस्तपभ है।

१०. **दन्तं पाशा कुशेष्टानि** -ये गणपति के हाथों में विद्यमान है अनेक शक्तियों के सूचक है इनमें दन्त धन प्राण, पाश नियन्त्रण शक्ति, अंकुश आकर्षण तथा वर मुद्रा अभीष्ट काम पूरिका शक्ति के क्रमशःप्रतीक है। शुण्डादण्ड में स्थित

बीजापूर फल का पार्थिव परमाणुओं का निदान है।

११. **बालेन्दुद्यौतमौलिम्** - यह ज्ञानैश्वर्य का निदान है अर्थात् 'गणपति' है सर्वज्ञ है। 'गणपति' की एकदन्ता पार्थिव पूषा प्राण के साथ अभेद की सूचिका है जिसमें पूषा प्राण का प्राबल्य होता है यह दन्तरहित होता है।

'अदन्तकः पूषा' इति।

लम्बोदर एवं शूर्पकर्ण शब्द का विवेचन--

भगवान् गणेश 'लम्बोदर हैं कारण कि अनेक उदर में ही समस्त प्रपञ्च प्रतिष्ठित है और वे स्वयं किसी के उदर मे नही है तथा च—

"तस्पोदरात् समुत्पन्नं नाना विश्व न सशयैः।" [१]

इसी प्रकार भगवान् गणेश 'शर्पकर्ण ' हैं क्योंकि वे योगीन्द्र मुख से वर्ण्यमान तथा उत्तम जिज्ञासुओं से श्रूयमान तथा हृदयंगत होकर शूर्प के समान माया मय, पाप पुण्य रूप रज को दूर कर के शुद्ध ब्रह्म की प्राप्ति सम्पदित करवा देते है।

रजोयुक्तं यथा धान्यं रजोहीनं करोति च।
शूर्य सर्वनराणें वै योग्य भोजन काम्यय।।
तथा माया विकारोण युतं ब्रह्म न लभ्यते।
व्यक्तो पासनकं तस्यशूर्य कर्णस्प सुन्दरि।।
शूर्यकर्ण समाश्रित्य व्यक्तिवा लविकारकम।
ब्रह्ममैव नरजातिस्थों भवेन्तेन तथा स्मृतः।।[१]

इसी प्रकार भगवान् गणेश 'ज्येष्ठराज' है। सर्वज्येष्ठों बड़ों के अधिपति या सर्वज्येष्ठ जो ब्रह्मादि है उनके मध्य में बे विराजमान है। वे ही गणेश जी ' शिव – शिवा' के तप से प्रसन्न होकर ' पार्वती–पुत्र' में भी प्रादुर्भूत होते है।

---

१. कल्याण गणेशक पृ० २६

श्रीराम और श्रीकृष्ण जैसे दशरथ और वासुदेव के पुत्र रूप में प्रकट होकर भी उनसे अपकृष्ट नही है, वैसे ही भगवान् श्रीगणेश शिवपार्वती से उत्पन्न होकर भी उनसे अपकृष्ट नही है अस्तुं उनकी शिव विवाह में विद्यमानता एवं पूज्यता होना भी कोई आश्चर्य नही है ब्रह्म पुराण में उल्लेख हे कि –

"पार्वती के तप से गोलोक निवासी पूर्ण पर
ब्रह्मा श्री कृष्ण परमात्मा ही गणपति रूप से प्रकट हुए।"[२]

अस्तुः गणपति श्रीकृष्ण शिव आदि सब एकही तत्व है। इसी गणपति तत्व को सूचित करने वाला ऋग्वेद का निम्न मन्त्र है–

ऊॅ गणनां त्वा गणपतिं हवामहे।
कविं कवीनामु पमश्रवस्तमम।
ज्येष्ठराजं ब्रहमाण ब्रहमाणस्पत
आ नः श्रृण्वन्नूतिभि सीद सदनम्।[३]

इसी प्रकार यजुर्वेद का भी मन्त्र है।

ऊॅ गणानां त्वां गणपति हवामें है।[१]

ऋग्वेद के मन्त्र का सर्वथा गणपति स्तुति में ही तात्पर्य है। यजुर्वेदगत मन्त्र का विनियोग यद्यपि अश्व स्तवन में है तथाप सूक्ष्म दृष्टया केवल अश्व में मन्त्रोक्त गुण अनुपन्न होने से अश्वमुखेने गणपति की ही स्तुति इस मन्त्र से परिलक्षित होती है। मन्त्रार्थ निन्न है–

"हेवसो वसति सर्वेषु भूतेषु व्यापकत्वादिति
तत्सम्बुद्धे गणानां महदादीनां ब्रह्मदीनाम्।
अन्येषां वा समूहानाम् गणरूपेण साक्षिरूपेण, ज्ञेयाधिष्ठान रूपेण वा। 'गण'संख्यानि इत्यस्माद् गण्यते बुद्धयते योगिभिः साक्षात्रित्कयते यः स गणस्तद रूपेण वा पालकम् एतादृशं त्वां आवाहयाम है। तथा प्रियाणं. बल्लभाना प्रियपतिम् प्रियस्य पालकम्। तच्छेवतयैव सर्वस्य प्रेमापद त्वात्। 'आत्मनस्तु कामाय सर्व प्रियं भवतीति श्रुतेः। निध ीनां सुखनिधीनां सुखनिधेंः पालकं त्वां हवामे है आवाहयाम हे मदन्तः करणे प्रादुर्भय स्वरूपनद समर्पणेन ममापि पतिर्भूयाः। पुनः–
हे देव ! अहं ते गर्भधम् अजायां प्रकृतै चैतन्यप्रति बिम्बात्मकं गर्भ दधतीति गर्भधं बिम्बात्मकं चैतन्यम्। तथा च मम योनिर्महद्‌ब्रह्म तस्मिन् गर्भ देधाम्यहमिति भगवत् स्मरण्त्। आ आकृष्य योगबलेन अजानि स्वहृदि स्थाप्यानि त्वं च मम हृदि अजासि

खिपासि स्वः स्वरूप रूपं स्थपयसि" ।[१]

अधिकारी उपासक गणपति की इस प्रकार उपासना करता है कि –

'हे सर्वान्तर्यामिन् देवादि समूह को अधिष्ठान

तथा साक्षीरूप से प्रियों को प्रिय रूप से लौकिक प्रेमास्पदों को परम प्रेमास्पद स्वरूप से लौकिक सुख राशियों को अलौकिक परमानन्द से पालन करने वाले अर्थात् अपने अंश से सम्पादन करने वाले आपका मे पतिरूप से आवाहन करता हूॅ। आप भी स्वरूपानन्द समर्पण द्वारा मेरा पालन करें। जगदुत्पादनार्थ प्रकृतिरूप योनि मे स्वकीय चैतन्य प्रतिविम्बात्मकरूप गर्भ को धारण करने वाले बिम्बचैवन्यरूप को मै अपने हृदय में विशुद्धान्तःकरण से धारण करूँ एतदनुकल अनुग्रह करें।

इस तरह मन्त्र प्रतिपाद्य गणपति तत्व सर्वविध्नों का विनाशक है अतएवं गणपति अथर्व शीर्ष के दशम् मन्त्र मे –

"विध्नविनाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नमः।[१]

ऐसा वर्णित है जिस पर आचार्य सायण ने भाष्य करते हुए लिखा है कि –

"समय का लात्मक भय हारिणे अमृतात्मक प्रदत्वात्।"[२]

अर्थात् गणेश जी कालात्मक भय को हरण करने वाले है क्योकि वे अमृतात्मकपदप्रद है।

इस प्रसग पर ' स्कन्द पुराण और मौदंल पुराण में विनायक माहात्म्य विषयक एक गाथा प्राप्त होती है जो इस प्रकार है–

एक बार राजा अभिनन्दन ने इन्द्र भाग शून्य एक यज्ञ आरम्भ किया जिसे श्रवण करते ही देवराज अति कुपित हुए। उन्होंने काल को बुलाकर यज्ञ भंग करने की आज्ञा प्रदान की। कालपुरूष यज्ञ को भंग करने के लिये विध्नासुर के रूप में प्रकट हुआ। जन्ममृत्युमय जगत् काल के अधीन है।

काल त्रिलोक को भ्रमण करता हैं ब्रह्म ज्ञानी पुरूष काल को जीतकर अमृतमय हो जाता है।

---

१. कल्याण गणेशक पृ० २७ द्रष्टव्य

२. ब्रह्मामाण्ड पुराण

३. ऋ० २/२३/१

ब्रह्मज्ञान का साधन वैदिक स्मृति सत्कर्म है–

"स्वकर्मण तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दन्त मानवः।"[1]

सत्कर्म से विशुद्धान्तः करण पुरुष को भगवत तत्व साक्षत्कार होता है। और उससे ही काल की पराजय होती है। यह जानकर काल उस सत्कर्म के नाशार्थ विध्नरूप होकर प्रकट हुआहीन जगत् सदा ही काल के आधीन रहता है। एतदर्थ कालस्वरूप विध्नासुर राजा अभिनन्दन को मार कर जहॉ तहॉ दृश्या दुश्य रूपेण सत्कर्म का खण्डन करने लगा। इससे वशिष्ठादि मुनि भ्रान्त होकर ब्रह्मा जी की शरण में गये और उन के निर्देश पर उन लोगो ने भगवान गणपति की स्तुति किये। कारण कि गणेश के अतिरिक्त काल नाश की सामर्थ्य किासी में भी नही थी । गणेश जी असाधरण श्रुति–स्मृति शिष्टाचार एवं शिष्ट साधुवा क्यों एवं श्रुतार्थपति से भी अवगत है। विध्नासुर भी गणेश जी से पराजित होकर उनकी ही शरण में गया और उनका ही आज्ञावशवर्ती हुआ। अतः गणेश जी का नाम 'विध्नराज' हुआ। उसी समय से गणेश पूजन स्मरणरहित जो भी सत्कर्म किया जाता है उसमें विध्न का प्रादुर्भव होने लगता है।

तब से विध्न भगवान् श्रीगणेश जी के ही आश्रित रहने लगा। विध्न भी कालरूप होने से भगवत्स्व रूप है।–

"विशेषेण जगत्सामर्थ्य हन्तीति विध्न :।

---

१. शु० य २३/१६ मन्त्र और उसी का उब्बट भाष्य

---

१. श्रीगणपति अथर्वशीर्ष –१० वाँ मन्त्र

२. श्रीगणपति अथर्वशीर्ष –१० वाँ मन्त्र का सापण भाष्य

३. स्कन्दपुराण द्रष्टव्य – गणपति प्रकारण

४. मौदग्ल पुराण द्रष्टव्य

---

१. श्रीमद भगवत् गीता १८/४६

ब्रह्ममादिको में भी जगत्सृजनादि सामर्थ्य की हनन करने वाले को विध्न ही कहते है अर्थात् ब्रह्मादि समस्त कार्यब्रह्मा विध्न पराभूत होने के कारण स्वेच्छा चारी नहीं हो सकते है किन्तु गणेश की अनुग्रह से ही विध्नरहित होकर कार्यकारण क्षम होते है। 'विध्न और विनायक ' ये दोनो ही भगवान् होने के कारण स्तुत्य है इसीलिये–

"भगवन्तौ विध्नविनाय कौ प्रीयेताम्।

ऐसा पुण्याहवाचन में कहने की प्रार्थना करने की परिपाटी है। विधन गणेश के अतिरिक्त और किसी के वश में नही है जैसा कि 'योगवासिष्ट' में शाप देने के लिये उद्यत 'भृगु के प्रति विध्नरूप काल के कथन का उल्लेख है–

"मा तपः क्षपयाबुद्धे कल्पकाल महान लैः।

ससार बल्यों ग्रस्ता निगीर्ण रूद्र कोटय इसलिये गणेश स्मरणहीन सभी सत्कर्मो में कालरूप विध्न का प्राकट्य अनिवार्य है एतदर्थ विध्न निवारणर्थ गणेश स्मरण सत्कर्मो में आवश्यक है।

यद्यपि 'ऊँकार' ही सर्वमंगलमय है वेदोक्त समस्त कर्म उपासनाओ के प्रारम्भ मे 'ओकार' का ही स्मरण किया जाता है। इसलिये गणेश स्मरण निरर्थक है, माने हो यह सभी चीन नहीं होगा कारण कि 'ओकार ' भी सगुण स्वरूप ही है। 'मौद्गल पुराणानुसार 'गणेशसयादि पूजनं चतुर्विधं चतुर्मूर्तिधा स्कत्ववात्।"[१]

ब्रह्मा के चारों मुखों से अष्टलक्ष श्लोकात्मक पुराणों का प्रादुर्भाव हुआ है। कालान्तर में द्वापरमें व्यासदेव ने कलयुगी मूढ जनों के बोध के लिये १८ पुराणों, उपपुराणों का निर्माण किया। 'ब्रह्म पुराण उनमें से प्रथम पुराण है जिसमें निर्गुण एवं बुद्धितत्व से परे श्रीगणेश तत्व का विवेचन हुआ है । इसी प्रकार अन्तिम 'ब्रह्मण्ड पुराण है। जिसमे सगुध रूप गणेश का महात्म्य प्रतिपादित हुआ है क्योकि वह विशेषरूप से प्रणवात्मक प्रपञ्चका प्रति पादन करने वाला प्रथम गणेश पुराण है जिसमें सगुण निर्गुण गणेश की एकता ही प्रतिपादन किया गया है।

---

१. योगवासिष्ठ स्थिति प्र० १० /२६–२७ वाँ श्लोक

"मौदगल पुराण अंतिम उपपुराण है। इस में योगमय गणेश का महात्मय वर्णित है।

इस तरह वेद, पुराण, उपपुराण आदि को के आदि मध्य और अन्त में भी सर्वत्र श्रीगणेश तत्व की ही प्रतिपादन हुआ है। इतना ही नही ब्रह्मा विष्णु आदि भी गणेशांश होने से ही शास्त्र प्रतिपाद्य है।

प्राण प्रयाण समय एवं पितृ यज्ञादि में भी गणोश स्मरण प्रशस्त है क्योंकि गण स्थित गणेश पद प्रत्यक्ष ही पितृ मुक्ति प्रदिष्तृ है वेदोक्त पितृयज्ञ रम्भ मे गणेश पूजा का निषेध नही किया गया हे । इसलिये वहाँ भी गणेश पूजन विहित है एतदर्थ श्रुति गणपति को ज्येष्ठराज पद से सम्बोधित करती है। गणेश पुराण में त्रिरपुर वध के समय शिवजी का कथन हे कि –

"शैवेस्त्व दीर्यस्थ वैष्णश्च,
शाक्तैश्च सौरेरथ सर्वकोर्य।
शुभाशुभे लौकिक वैदिके च
त्वमर्चनीयः प्रथमं प्रयत्नात्।

गणेश गीता में मरण काल में भी गणेश स्मरण कहा गया है।

"यः स्मृत्क त्यजति कि प्राणमन्ते मॉ श्रद्धयान्वि तः।
तं यात्यपुनरावृतिं प्रसादान्मम भूभुज।।"[२]

गणेशोत्तर तापिनी में निर्दिष्ट है कि –

ऊँ गणेशों वै ब्रह्म तद् विद्यात् यदिदं किञ्च सर्व भूतं भव्य जायमान च तत् सर्वमित्या चक्षते।[३]

इससे यह सिद्ध होता है कि पूर्ण ब्रह्मा परमात्मा ही निगुर्ण एवं विध्नविनाशक त्वादि गुण गण विशिष्ट गजवदनादि अवययव मूतिधर रूप में श्री गणेश है।

पञ्चदेवोपासना में गणेश का स्थान :–

शास्त्रीय प्रमाणो से पञ्चदेवो पासना सम्पूर्ण कर्मो में प्रख्यात है । शब्द कल्पदुम कोश के अनुसार

---

१. मौद्गल पुराण द्र०ष्टव्य

आदित्यं गणनाथं च देवी रूद्रग च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्।।[1]

पञ्चदेवो पासना का रहस्य पञ्महाभूतों के पृथिवी जल, तेज, वायु, और आकाश प्रखत है और इन्ही के अधिपत्य के कारण से आदित्य गर्णनाथ (गणेश) देवी रूद्र और केशव (विष्णु) ये पञ्च देव भी पूजनीय प्रख्यात है। एक–एक तत्व का एक–एक देवता स्वामी है।

आकाशस्पाधियो विष्णुरग्नैश्चैव महेश्वारी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणधिप.।

	पञ्चमहाभूत	**अधिपति**
१.	क्षिति (पृथिवी)	शिव
२	अप् (जल)	गणेश
३.	तेज (अग्नि)	शक्ति (महेश्वरी)
४.	मरूत् (वायु)	सूर्य (अग्नि)
६.	व्योम (आकाश)	विष्णु

इन पञ्चभूतों में भगवान् श्री शिव के 'पृथिवी' तत्व के अधिपति होने के कारण उनकी पार्थिव पूजन का प्रविधन है। भगवान् विष्णु के आकाश तत्व के अधिपति होने के कारण उनकी शब्दो द्वारा स्तुति का विधान है। भगवती देवी के अग्नि तत्व का अधिपति होने के कारण उनका अग्निकुण्ड में हवनादि के द्वारा पूजा का विधान है। श्री गणेश जी के जलतत्व के अधिपति होने के कारण उनकी सर्व प्रथम पूजन का विधान है मनु के अनुसार –

---

१. गणेश पुराण १/४५/१०–११
२. गणेश गीता ६/१६
३. गणेशोत्तर तापिनी उप० ३

---

१. शब्द कलपद्रुम कोश
२. कल्याण गणेशाक पृ० ४५

"अप एवं ससर्जादौ तासु बीजभवासृजत।"[१]

इस प्रमाण से भी सृष्टि के आदि मे एक मात्र वर्तमान जल का अधिपति गणेश है। अतः जितने भी अनुष्ठान किये जाय उनके आरम्भ में गणेश पूजन अत्वावश्क है।

सूर्य के वायु तत्व के अधिपति होने के कारण प्राण की रक्षा के लिये

"सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।"[२]

इस प्रमाण से भी नमस्कादि के द्वारा पूजन को विधान है। मन्त्र योग संहिता में कहा गया है कि –

मानवानां प्रकृतयः पञ्चधा परिकीर्तिता।
यतो निरूप्यते सर्गः पञ्चभूतमकैबुधाः।।
भिन्न यद्यापि भूतानां प्रकृतिः प्रकृतेर्वशत्।
तथापणि पञ्चतत्वानामनुसारेण तत्ववित्।
प्रत्येक तत्व प्राचुर्य विमृथ्य विधि पूर्वकम्।
उपासनाधिकारस्य पञ्च भेदमवर्णयत्।। [३]

इसका आशय यह है कि समस्त जगत् पञ्चभूतात्मक है। इसलिये तत्सम्बन्धी पञ्चदेवों की उपासना अनिवार्य है। प्रत्येक पूजा में पञ्चदेवोपासना का विधान है

"गणेशादि पञ्चदेवताभ्यो नमः।[४]

गणपतिअथर्वशीर्ष उप० में गणेश जी को सर्वदेवमाय माना गयाहै और उनकी पूजा सकल देवताओं की पूजा होती है।

"त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रूद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्नि
स्त्पवं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्रमास्त्वं ब्रह्म भूर्भवः स्वरोम।।[५]

---

१. मनुस्मृति १/८
२. यजुर्वेद ७/४२
३. मन्त्रयोग संहिता
४. नारद पु० ३/६५
५. गणापति अथर्व शीर्ष उप० ६ वां मन्त्र

श्रीगणेश की अनेक उपनिषदो में भिन्न भिन्न गायत्रिया भी प्राप्त होती है –

१. "ऊँ एक दन्ताय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।" [१]

२. "ऊँ तत्पुरूषाय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।" [२]

३. "ऊँ तत्कराटाय विद्महे, हस्तिमुखाय धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।" [३]

पञ्चदेवों पासना वेद विहित एवं प्रामणिक है। पञ्चदेवो पासना में गणेश का स्थान सर्वप्रथम है कारण कि वे सर्व प्रथम उत्पन्न होने वाले 'जल' के स्वामी है। अतस्मात् का रणत् सर्वप्रथम तत्व के अधिपति की पूजा सर्व प्रथम हो सकती है । 'गणेश गीता ' में उल्लेख है कि –

शिव, शक्ति, विष्णु, सूर्य और गणेश में अभेद बुद्धि रखने वाला ही योगी होता है –

"शिवे विष्णौ च शक्तौ च सूर्ये मयि नराधिप "।

योऽभेद बुद्धिर्योगः स सम्यग्योगो मतौ मम।।[४]

गणपति का स्वस्तिक रूप

गणपति स्वस्तिक रूप में भी प्रसिद्ध हैं। महाकवि कालिदास ने ' चिद्गन चन्द्रिका' में गणेश जी के प्राकटय के सन्द्रर्भ में निम्न लिखित श्लोक लिखा है–

क्षीरोद पौर्णमासीशश धर इव यः प्रस्फुरन्निस्तरडं

चिद्वयोम स्फारनादं रूचिविसरलसद्विन्दु चक्रों र्मिमालम।

आद्यस्पन्द स्वरूपः प्रथपति सक्रदोंकार शुण्डः क्रियादृग

दनस्यायोडयं हठाद् वः शमयतु दुरितं शक्ति जन्म गणेशः। [१]

---

१. गणपति उप० ८वां मन्त्र, तैत्तिरीयारण्यक प्रपा० १०

२. नारायणोपनिषद १०/१

३. मैत्रायणी संहिता २/६/६

४. गणेश गीता १/२१

अर्थात् पूर्णिमा का चन्द्रमा शान्त तरंग वाले क्षीरसागर को ऐसा क्षुब्ध कर देता है कि उसमें गर्जन के साथ गगन चुम्बिनी ऊर्मिमा लाये उठने लगती है।, उसी प्रकार जो पूर्णतः प्रकाशमान होकर एक बार निस्तरंग चिदाकाश में प्रणव के नाद तव को फैलाकर वक्रलहारों को उद्वेलित कर देता है जो शब्द ब्रह्मा का आदि स्पन्दन रूप है, ऊँकार जिसका शुण्ड दण्ड है, तथा जो सम्पूर्ण क्रियाओं को द्रष्टा (साक्षी) है वह शक्तिनन्दन गजमुख गणेश हठात् आप सबके पाप तापो का शमन करे।

इस श्लोक में शब्द ब्रह्मारूप 'ऊँ' का अविर्भव वर्णित है और इसी 'ऊँ' से गणेश जी की मूर्ति की रचना की गयी है जो निम्न प्रकार से है–

१. प्रथम भाग – उदर

२. मध्य भाग– शुण्डाकारदण्ड

३. ऊपर अर्धचन्द्र – दन्त

४. और अनुस्वार मोदक

एक और ओंकार का स्वरूप वर्णिक गण अपनी बहियों में बनाते है। इससे स्वस्तिक कहते है ये ही श्री गणेश जी के चारो हाथ है। यह चतुर्भुज ऊँ कार है। ' ओमभ्यादने[१] इस पाणिनि की आष्यध्यायी के सूत्र के द्वारा मन्त्र के आरम्भ में प्रयुक्त 'ओम' को प्लुत स्वर में उच्चारणीय वर्णित है जिसे की आकृति ऊँ ३ यह है। इस प्लुत स्वर को ही गणेश जी का वाहन मूषक कहा गया है।

उसी वामार्क्त स्वस्तिक में चारों ओर गणपति का बीजमंत्र 'गं' विराजमान है। दक्षिणवर्ति क्रम में भी (दक्षिणवर्ति स्वस्तिक में) वहीं बीज मन्त्र 'गं' उस के दूसरी ओर विराजमान है यही बीज मन्त्र 'गं' उक्त ब्रहमण्स्पति के मन्त्र के आदिम तथ अन्तिम अक्षर से निष्पन्न है। यह बात त्रिपुरता पिनी उप० में स्पष्ट रूपेण वर्णित है। आकाश में 'ख' स्वस्तिक प्रसिद्ध है।

---

१. पाणिनी अष्टाध्यापी ८/२/८७

२. ऋ० विश्वे देवासूक्त ५ मन्त्र साम वेद सं०

३. पाणिनि अष्टा ध्यायी ६/३/१६५

ॐ स्वस्ति न इन्द्रो बृद्धश्रवा :

स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।

स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्ट नेभिः।[२]

स्वस्ति नो बृहस्पर्तिद धातु।।

सामवेद संहिता के इस अन्तिम मन्त्र में वर्णित इन्द्र पूषा ताक्ष्र्य एवं बृहस्पति ये चार देवता आकाश में तारो के रूप में इस प्रकार विराजमान है कि इन चारो के ऊपर से नीचे को तथा दक्षिण पार्श्व से बामपार्श्व को रेखा खीची जाय तो 卐 स्वस्तिक बन जाता है उक्त मन्त्र मे चार बार ' स्वस्ति शब्द आने से स्वस्तिक बना है पाणिनि ने भी स्वस्तिक को स्मरण किया है।

अस्तु, वेद में जहाँ इन्द्र का कोई मन्त्र हो यापूषा या ताक्ष्र्म (गरूड) याबृहस्पति का मन्त्र हो उससे स्वस्तिक गणेश का ही बोध होता हे उक्त मन्त्र में प्रथम गणपति का इन्द्ररूप से स्तवन हुआ है और सबसे पीछे बृहस्पति रूप से इसका भाव यह है कि वेद में इन्द्र भी गणपति रूप से स्तुत होते है तथ बुहस्पति रूप से भी इसका भाव यह है कि वेद में इन्द्र भी गणपति रूप से स्तुत होते है तथा बृहस्पति भी इससे वेद मे गणपति रूप की स्थिति सिद्ध हुई क्योकि निरूक्त कार यास्क के अनुसार–

"एकस्य आत्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङंनि भवन्ति।" [१]

अर्थात् एक देव तात्मा के दूसरे देवता अंगप्रत्यंग होते है।

इन्हीं समस्त बातों को ध्यान में रखकर गणेश प्रतिमा की भवाना की गयी है जिसका योगीजन मूलाधार चक्र में ध्यान करते है श्रीमद भवत गीता में भी अन्तिम गति के समय इसके स्मरण का महात्म्य प्रतिपादित है–

ओमित्ये काक्षरं ब्रह्म व्याहरन मामनुस्मरन्।

य प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्।।[२]

मुम्मद्रि कृष्णराज ओटयर ने ३२ गणपितियों

---

१. निरूक्त ७/४/६

२. श्रीमद् भगवत गीता ८/१३

विविध गणपतियों के नाम

'श्रीतत्व निधि 'ग्रन्थ में कनार्टक के महाराजा मुम्मडि कृष्णराजओटयर ने ३२ गणपतियों के नाम रूपों का निर्देश इस प्रकार किया है।

	नाम	रूप	
१.	बालगणपति	रक्तवर्ण	चतुर्हस्त
२.	तरूण गणपति	रक्तवर्ण	अष्टहस्त
३.	भक्तगणपति	श्वेतवर्ण	चतुर्हस्त
४.	वीरगणपति	रक्तवर्ण	दशभुज
५.	शक्तिगणपति	सिन्दूर वर्ण	चतुर्भुज
६.	द्विजगणपति	शुभ्रवर्ण	चतुर्भुज
७.	सिद्धगणपति	पिङलवर्ण	चतुर्भुज
८.	उच्छिष्ट गणपति	स्वर्णवर्ण	चतुर्भुज
६.	विध्न गणपति	स्वर्णवर्ण	दशभुज
१०.	क्षिप्र गणपति	रक्तवर्ण	चतुर्हस्त
११.	हेरम्ब गणपति	गौरवर्ण	अष्टहस्त
		पञ्चमातंगमुख सिंहवाहन्।	
१२.	लक्ष्मी गणपति	गौरवर्ण	दशभुज
१३.	महा गणपति	रक्तवर्ण त्रिनेत्र	दशभुज
१४.	विजय गणपति	रक्तवर्ण	चतुर्हस्त
१५.	नृत्त गणपति	पीतवर्ण	चतुर्हस्त
१६.	ऊध्व गणपति	कनकवर्ण	षडभुज
१७.	एकाक्षर गणपति	रक्तवर्ण	चतुर्भुज
१८.	वर गणपति	रक्तवर्ण	चतुर्भुज
१६.	त्र्यक्षर गणपति	स्वर्णवर्ण	चतुर्बाहु
२०.	क्षिप्रप्रसाद गणपति	रक्तचंदनांकित	षडभुज
२१.	हारिद्रा गणपति	हारिद्रावर्ण	चतुर्भुज
२२.	एकदन्त गणपति	श्यामवर्ण	चतुर्भुज

२३.	सृष्टि गणपति	रक्तवर्ण	चतुर्भुज
२४.	उददण्ड गणपति	रक्तवर्ण	द्वादशभुज
२५.	ऋणमोचन गणपति	शुक्लवर्ण	चतुर्भुज
२६.	ढुण्ढि गणपति	रक्तवर्ण	चतुर्भुज
२७.	द्विमुख गणपति	हरिद्वर्ण	चतुर्भुज
२८.	त्रिमुख गणपति	रक्तवर्ण	षड्भुज
२९.	सिह गणपति	श्वेत वर्ण	अष्टभुज
३०	योगगणपति	रक्तवर्ण	चतुर्भुज
३१.	दुर्गा गणपति	कनकवर्ण	अष्टर्भुज
३२.	सकटहरणगणपति	रक्तवर्ण	चतुर्भुज

श्री गणपति जयन्ती

मान्यतानुसार गणेश जी का सर्वप्रथम आविर्भाव माता पार्वती के यहाँ 'माघ–मास' के कृष्णपक्षीय चतुर्थी तिथि को हुआ है–

सर्वदेव मयः साक्षात् सर्वम् डलदायकः।
माधमकृष्ण चतुर्थ्या तु प्रदुभूतो गणाधिप ।। [१]

ब्रह्य वैवर्न्त पुराणानुसार सत्वाधिपति विष्णु (कृष्ण)ही पार्वती माता के ' पुण्यक ' नामक पुत्र प्रदव्रत के अनुष्ठान के फलस्वरूप उनके यहाँ एक अति सुन्दर बालक के रूप में प्रकट हुए थे जिनका नाम ' गणेश ' रखा गया ।

गणेश जी अपने आराधको के समस्त संकटों को कष्टों को नष्ट कर देते है एतदर्थ उनके प्रादुर्भाव की तिथि 'सकष्ट (हर) चतुर्थी कहलाती है।

---

१. शिवधर्म कल्याण गणेशांक पु० ८८.

चतुर्थी तिथि को गणेश जी के प्रकट होने के कारण उनके भक्त प्रतिमास इस तिथि के आने पर विशेष आराधन करते है। प्रत्येक मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी ' गणेश चतुर्थी ' और शुक्ल पक्षीय चतुर्थी ' बैनायकी चतुर्थी' कहलाती है।

स्कन्द पुराणेक्त श्रीकृष्ण युधिष्ठर संवाद के अनुसार भाद्रपद मासीय शुक्ला चतुर्थी की विशेष महिमा है उस दिन की आराधना से गणपति भगवान अपने आराधकों के समस्त कार्य कलापों में सिद्धि प्रदान करते है। एतदर्थ ' सिद्धिविनायक ' कहलाते है–

सिद्धयन्ति सर्वका र्याणि मनसा चिन्तिता न्यापि,
तेन ख्याति गते लोके नाम्ना सिद्धिविनायकः।। [१]

श्री गणेश जी के अष्ट नामों का विवचनः-

प्राचीन भारतीय वाडमय में पार्वतीनन्दन के अष्ट नामो का स्पष्ट निर्देश है–

गणेश मेकदन्त च हेरम्बं विध्नविनायकम्।
लम्बोदरं शूर्पकर्ण गजबक्त्र गुहाग्रजम् ।।[२]

अर्थात्

१. गणेश
२. एक दन्त
३. हेरम्ब
४. विध्न विनायक
५. लम्बोदर
६. शूर्णकर्ण
७. गजवक्त्र
८. गुहाग्रज

---

१. स्कंन्द पुराण श्री कृष्ण–युधिष्ठिर सम्बाद द्रष्टव्य,
२. ब्रह्म वैवर्त पुराण ३/४४/८५

यद्यपि श्रीगणेश के आठ से बढते हुए सहस्र नाम तक प्राप्त होते है। तथापि आठ नामों तक ही अनुसंधान की परिधि में लिये जा रहे हैं। पुरादि गणीय 'गण संख्याने' धातु से 'अच्' प्रत्यय करने से 'गज'शब्द निष्पन्न होता हे और तब यह 'गण' शब्द शिव के प्रमथ प्रभृति ३६ कोटिमित गणो का बोधक सिद्ध होता है । इसी प्रकार अदादिगणीय 'ईश–ऐश्वर्ये' धातु मे 'क' प्रत्यय के योग से ' ईश शब्द व्युत्पन्न होता है। और 'गण' तथा ईश ' ये दोनो शब्द परस्पर सहित हो कर 'गणेश ' शब्द की सिद्धि करते है शब्द शा स्त्रानुसार –' गणेश ' का व्युत्पन्नार्थ हुआ गणों को देवता अथवा शिव का सेनाध्यक्षा पौराणिक प्रतिपादनानुसार ' गणेश ' शब्दगत प्रथमाक्षर 'ग' ज्ञानार्थ वाचक और द्वितीयाक्षर 'ण' निर्वाण वाचक है । तथा अंतिम 'ईश' शब्द स्वस्तिवाचक है इस प्रकार सम्पूर्ण गणेश का शब्दार्थ ज्ञान तथा निर्वाण का स्वामी ब्रह्म परमात्मा परमेश्वर या परमतत्व आदि होता है।–

"ज्ञानार्थवाच को गाश्च पाश्च निर्वाण वाचकण :।
तयोरीशं परब्रह्म गणेश प्रणमाम्यहम्।। " [१]

२. एकदन्त शब्द में एक शब्द प्रधानर्थक है तथा 'दन्तशब्द बालवाचक है । अतः बहुब्रीहि समास सम्पन्न एकदन्त शब्द का अर्थ होता है सर्वोत्कृष्ट बलशाली

'एकशब्द : प्रधानाथै दन्तश्च बालवाचक :।
बलं प्रधान सर्व्रस्मादे कदन्तं नमाम्यहम्।। [२]

३. हेरम्ब – हेरम्ब शब्दा का प्रथमाक्षर 'हे' दैन्य या अभाववाचक ' तथा 'रम्ब' शब्द पालनार्थक है अतः षष्ठीतत्पुरूषान्त 'हेरम्ब' शब्द का अर्थ हुआ – ' दीन या भक्तजनो को सर्वथा पालनकर्ता'

"दीनार्थवाच को हेश्च रम्बः पालक वाचक :।
दीनानां पालक तं च हेरम्ब प्रणाम्यहम्।। [१]

४. विध्ननायक – विध्ननायका पूवार्ध ' विध्न शब्द विपत या अमडलवाचक और उत्तरार्ध ' नायक ' शब्द खण्डनार्थक या अपहरणर्थक है । अतएवं सम्पूर्ण विध्न विनायंक शब्द का अभिधेयार्थ– अशेष विपति या विध्न बाधाओं का संहारक होता है ।

---

१. ब्रहम बैवर्त्त पुराण ३/४४/८७

२. ब्रहम बैवर्त्त पुराण ३/४४/८८

"विपत्ति वाचको विध्नो नायकः खण्डनार्थक.।

विपत्खण्डनकर्तारं नमामि विध्ननायकम् ।[2]

५. लम्बोदर – लम्बोदर शब्द बहुब्रीहि समास के द्वारा सिद्ध हुआ है इसका विग्रह – 'लम्बम्उदरं यस्यसंः

होता है अर्थात् लम्बा है उदर (पेट)जिसका वह पूर्वकाल में भगवान् विष्णु के द्वारा दिये गये नैवेद्यो तथा पिता के द्वारा समर्पित विविध प्रकार के मिष्ठान्नों के खाने से गणेश का उदर लम्बा हो गया । अस्तु वे लम्बोदर कहलाते है।

" विष्णुर्दन्तैश च नैवेद्येर्यस्य लम्बोदर पुरा ।

पित्रा दन्तैश्च विविधैर्वन्दे लम्बोदर च तम् [3]

६. शूर्पकर्ण– शूर्पकर्ण शब्द में भी बहुब्रीहि समास है जिसका अर्थ– सूर्य के समान बडे बड़े कर्ण है जिनके वे गणेश होता है अर्थात जिस प्रकार सूर्य से अन्नों में दूषित तत्वों को फटक कर उन्हें परिष्कृत कर दिया जाता है उसी प्रकार श्रीगणेश अपने शूर्पकणों से भक्तों के विध्नों का निवारण कर विविध ऐश्वर्य एवं ज्ञान प्रदान करते है "शूर्पकारौ च यत्कणौ विध्न वारणकरणौ।

सम्पदौ ज्ञानरूपौ च शूर्पकर्ण नमाम्यहम् "[1]

७ गजवक्त्र– गजवक्त्र शब्द के प्रतिपादन में कहा गया है कि जिनके मस्तक पर मुनि के द्वारा प्रदत्त विष्णु का प्रसाद रूप पुष्प विराजमान हे तथ जो गजेन्द्र के मुख से युक्त हैं उन्हें मै नमस्कार करता हूॅ– विष्णुप्रसाद पुण्यं च यन्मर्ध्निमुनिदत्तकम्।

तद् गजेन्द्र वक्त्रयुतं गजेन्द्र वक्त्रं नमाम्यहम्।।[2]

८. गुहाग्रज – ग्रहाग्रज शब्द में षष्ठी तत्पुरूष समास के योग से इसका तात्पर्य है कि जो गुहस्वामि कार्तिकेय से पूर्व जन्म ग्रहण कर शिव के भवन में आविभूत हुए ओरसमस्त देवगणों में अग्रपूज्य है उन गुहाग्रज`दव की मै वन्दना करता हू गुआगज शब्द में –

"गुह : अग्रजो यस्य स :

---

१. ब्रहम वै० पु० ३/४४/८६

२. ब्रहम वै पु० ३/४४/९०

३. ब्रहम वै पु० ३/४४/९१

बहुब्रीहि समाज करने से श्रीगणेश स्वामि कार्तिकेय के अनुज भी सिद्ध होते है।

"गुहास्याग्रे च जातो ड यमाविभूतो हरालये।

वन्दे गुहाग्रजं देवं सर्व देवाग्र पूजितम्।। [3]

अमरकोश[1] में उपर्युक्त आठ नामों के अतिरिक्त 'विनायक' और ' द्वैमातुर' इन दो विशिष्ट नामों का विवरण उपलब्ध होता है।

श्रीगणेश की शक्ति (पत्नी) और पुत्र

श्री गणेश जी की दो पत्नियां

१. सिद्धि

२. बुद्धि

है गणेश जी की उपासना करने से साधक को सिद्धि बुद्धि सहज ही प्राप्त हो जाती है। सिद्धि का आश्य पूर्णता ओर बुद्धि का अर्थ ज्ञान होता है –

सिद्धि बुद्धिपति बन्दे ब्रह्म मण स्पति संज्ञितम्।

माडल्येशं सर्वपूज्य विध्नानां नायकं परम्।। [2]

गणेश की पत्नी सिद्धि से 'क्षेम' और बुद्धि से 'लाभ' नाम के दो पुत्र हुए–

सिद्धेर्गणेशपत्न्यास्तु क्षेमनामा सुतोड़ भवत।

बुद्धे र्लाभाभिधः पुत्र आसीत् परमशोभन्।। [3]

गाणपत्य सम्प्रदाय

हिन्दूओ के अनेक सम्प्रदाय है उसीमें एक गाणपत्य सम्प्रदाय भी है। गाणपत्य सम्प्रदाय के विभिन्न भेद है।

१. महागणपति सम्प्रदाय

---

१. ब्रह भवै० पु ३/४४/६२

२. ब्रह भवै० पु० ३/४/६३

३. ब्रह वै० पु० ३/४४/६४

२. हरिद्रागणपति सम्प्रदाय

३. उच्छिष्टगणपति सम्प्रदाय

४. नवीनतगणपति सम्प्रदाय

५. स्वर्ण गणपति सम्प्रदाय

६. सन्तान गणपति सम्प्रदाय

७. लक्ष्मी विनायक गणपति सम्प्रदाय

८. शक्ति गणपति सम्प्रदाय

९. वक्रतुण्ड गणपति सम्प्रदाय

१०. महालक्ष्मी गणपति सम्प्रदाय

११. हेरम्ब गणपति सम्प्रदाय

१२. वीर क्षिप्र प्रसादन गणपति सम्प्रदाय

१३. त्रैलोक्य मोहन गणपति सम्प्रदाय

१४. स्तम्भन करण गणपति सम्प्रदाय

उपर्युक्त विवेचन से गणपति का स्वरूप और देवशास्त्रीय पक्ष स्पष्ट हो जाता हैं। गणेश की सर्वप्रधानता में कोई भी विचिकित्सा के लिए लेशमात्र भी अवकाश शेष नही है।

स्वामी स्कन्द का विवेचन

भगवान् कार्तिकेय आचार्य शंकर द्वारा प्रतिष्ठापित षण्मतों में से स्कान्द, स्वामिकुमार या सुब्रहयमण्य सम्प्रदाय के परम् आराध्य उपास्य एवं अभीष्ट देव है। भगवान् विष्णु तथा शिव के सहस्रनामों में ' स्कन्द ' का भी नाम परिगाणित हे। ये स्कन्द भूत–भावन भगवान शंकर के आत्मज तथा देवताओं के सेनापति है गीता में भ्रागवान् ने इन्हें अपनी ही विभूति माना है–

"सेनानी नाम हं स्कन्द : [१]

---

१. अमर कोश १/१/४०–४१

२. मुछल पु० ८ वाँ खण्ड गणेश हृदय स्तोत्र है १७

३. शिव पु० रूद्रसंहिता कुमार खण्ड २० /८

पुराण साहित्य के महत्वपूर्ण महापुराण ' स्कन्द महापुराण ' के ये ही विशिष्ट वक्ता हे इस लिये इनके नाम से ही वह प्रसिद्ध है मयूर इनका वाहन है इसी लिये ये मयूर वाहन कहलाते है इनके कार्तिकेय, स्कन्द, मुरूगन , स्वामि कुमार, विशाख, सुब्रहमण्य, क्रौञ्चाराति, षडानन, षण्मुख, महासेन, शरजन्मा, पार्वती नन्दन मयूरवाहन (शिखिवाहन) सेनानी, गुह,बाहुलेय, तारकाजित षाण्मातुर, शक्ति धर कुमार आग्नेय, षष्ठीप्रिय, ब्रहमचारी और देवसेना प्रिय आदि विशिष्ट नाम है ।

कुमार कार्तिकेय के प्राकट और स्वरूप का विवेचन

दक्ष यज्ञ मेंसती के भस्म होने के पश्चात् पुनः सती का पार्वती के रूप मे हिमालय के यहॉ जन्म लेकर कठोर व्रत एवं तपस्या से शिव को पतिरूप मे वरण कर देवों के सहायतार्थ देव प्रार्थना पर कुमार का जन्म होता है।

ब्रहण्ड पुराण का ललितो पाख्यानम् प्रकरण :-

यह कनाथक महाभारत, शिवपुराण, स्कन्द पभ, और ब्रहमा और ब्रहवैर्क्त पुराणादि में वर्णित है। यहॉ पभपुराण की कथा का आश्रय लिया जा रहा है।

" एक वार की बात है कि शिवप्रिया माता पाव्रती एक सुन्दर सरोवर पर पधारी। वहाँ स्वर्णिम कमल खिले हुए थे और जल स्वच्छ था। भगवती ने जल विहार कर जल पान की इच्छा की । उस समय पभ पत्र में जल लेकर छः कृन्ति कायें स्वगृह गमन कर रही थी। देवियों पभ पत्रस्थ जल मै भी पीना चाहती हूँ । माता पार्वती ने निवेदन किया जिसपर कृन्ति का ओं ने इस शर्त के साथ कि तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होने वाला पुत्र हममें भी मातृभाव रखे और हमारा भी पुत्र माना जाय और हमारा रक्षाक हो वे जल पीने को दिया और पार्वती ने सहर्ष स्वीकृति प्रदान किया। जल पीते ही पाव्रती जी की दक्षिण कुक्षि से परम तेजस्वी शोक रोग निवारक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ।"

वह बालक कुत्सित दैत्यों के संहार के लिये प्रकट हुआ था, इस कारण ' कुमार' उसकी संज्ञा हुई। वह कृन्तिका प्रदत्त जल से शाखाओं सहित प्रकट

हुआ था, वे कलयणमयी शाखाये छहों मुखो के रूपो मे विस्तृत थी, इन्ही कारणों से वह विशाखषण्मुख, स्कन्द, षडानन और कार्तिकेयादि नामो से प्रख्यात हुआ –

स गर्भो दिव्य संस्थनो दीतिप्तमान् पावकप्रभ.।
दिव्य शखणं प्राप्य ववृधे प्रियदर्शनः।।
ददृशुः कृन्तिकास्तं तु बालमर्कसमद्युतिम्।
जातस्नेहाच्च सौहार्दात् पुपुषुः स्तन्य विस्रवैः।।

अभवत् कर्तिकेयः सः त्रैलोक्यौ सचराचरै।
स्कन्नत्वात् स्कन्दतां प्राप्तो गुहावासद् गुहोऽभवत्।।[१]
कृन्तिकाओं का स्तन पान करने से 'कार्तिकेष'
स्कन्दन (स्खाला)के कारण 'स्कन्द'और गुहा में वास करने से 'गुह' सज्ञा भाक् है।

ब्रह्मवैवर्त पुराणनुसार विवेचन

ब्रह्मावैवर्त पु० के अनुसार गणेश के प्राकटय के अनन्तर अविनाशी शिव पाव्रती को कार्तिकेय की उत्पति का समाचार प्राप्त होता है और गणेश का एक नाम गुहाग्रज वर्ण्रित है कथा निम्न है।

"पूर्णकाम शिव के शय्या से उठने पर उनका अमोघ शुक्र भूतल पर रखलित हो गया किन्तु पृथ्वी देवी उसका तेज (भार)सहन न कर सकी और अग्नि में प्रक्षेपित कर दिया। अग्निदेव भी उस तेज को सहन करने में असमर्थ होकर 'स्वर्णरेखा' नदी के तट पर सरकाण्डों के बन में फेंक दिया जो सुन्दर बालक के रूप में परिणत हो गया। उस समय कृन्तिकाओं का एक दल वद्रिका श्रम से आ रहा था वे उस बालका का रूदन सुनकर उस और आकर्षित हो उठी। सुन्दर बालक को देख कर अपना स्तन पान कराकर, पालन पोषण किया । और बाल का नाम 'कार्तिकेय' रखा । कालान्तर में पार्वती जी को वृतान्त की जानकारी होने पर सम्मान कैलाश लाये गये और देवसेनापति के पद पर अभिषिक्त हुए। लोक कण्टक तार कासुर का वध किया।

---

१. गीता १०/२४

विवाह की स्पर्धा का निरूपण

गणेश और स्कन्द दोनों बालक विवाह योग्य हुए। देनो में विवाह की स्पर्धा देख शिव शिवा ने परीक्षणार्थ यह शर्त रखी कि जो सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा कर पहले लौटेगा उसी का विवाह प्रथम होगा। माता पिता की आज्ञा सुनकर मयूर वाहन कार्तिकेय धरित्री की यथाशीघ्र परिक्रमा करने के लिये मंदराचल से चलपड़े किन्तु गणेश जी विचार करके माता पार्वती और पिता शिव को एक स्थान पर आसनस्थ कराकर सातवार परिक्रमा कर सम्पूर्ण पृथिवी परिक्रमा का फल प्राप्त कर लिया–

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रान्तिं च करोतियः।
तस्य वै पृथिवी जन्य फलं भवति निश्चितम्।
अपहाय गृहे यो वै पितरौ तीर्थ माव्रजेत्।
तस्य पापं तथा प्रोक्त हनने च तयोर्यथा।।
पुत्रस्य च महत्तीर्थ पित्रोश्चरण पङंजम्।
अन्यतीर्थ तु दूरे वै गत्वा सम्प्रात्यते पुनः।।
इदं सन्निहितं तीर्थ सुलभं धर्मसाधनम्।
पुत्रस्य च स्त्रियाश्चैव तीर्थ गेहे सुशोभनम्।। (१)

अर्थात् जो पुत्र माता पिता की पूजा करके उनकी प्रदक्षिणा करता है उसे पृथिवी परिक्रमा जनित फल सुलभ हो जाता है। जो माता पिता को घर पर छोड़ कर तीर्थ यात्रा के लिये गमन करता है वह माता पिता की हत्या से मिलने वाले पाप का भागी होता है। क्योकि पुत्र के लिये माता पिता के चरण सरोज ही महान तीर्थ है। अन्य तीर्थ तो दूर जाने पर प्राप्त होते है परन्तु धर्म का साधन भूत यह तीर्थ तो पास में ही सुलभ है। पुत्र के लिये माता पिता और स्त्री के लिये पतिसुन्दर तीर्थ घर में ही वर्तमान है। गणेश जी ने अपनी पात्रता प्रमाणित कर प्रथम विवाह सम्पन्न करा लिया किन्तु जब स्कन्द वापस हुए तो सत्यता का बोध होने पर खिन्न मन होकर क्रौञ्चपर्वत पर रहने के लिये गृह त्याग कर चल पड़े –

---

१. महाभारत अनु शासन पर्व० ८६/६२–६४

तत्दिनं हि समारभ्य कार्तिके यस्य तस्य वै।
शिव पुत्रस्य दैवर्षि कुमारत्वं प्रतिष्ठितम्।।
तन्नाम शुभदं लोके प्रसिद्ध भुवनत्रये।
सर्वपापहरं पुण्यं ब्रह्माचर्यप्रदं परम्।। [१]

अर्थात् उसी दिन से स्वामि कार्तिकेय का कुमारत्व प्रतिष्ठित हुआ। कालान्तर में प्रजापतिने अपनी परमसुन्दरी एवं शीलवती कन्या ' देवसेना' (शिशुओं कीं रक्षा करने वाली महाषष्ठी) से परिणय किया।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि कार्तिकेय का कार्य तारका सुवध और क्रौञ्वध तक ही सीमित है । गणेश की तरह उन्हें प्रधानता अधिक नहीं प्राप्त हो सकी है। तथापि शिव परिवार में पञ्चमुख, शिव, हस्तिमुख गणेश, षण्मुख कार्तिकेय, सिद्धि–बुद्धि और देवसेना पुत्रवधु सहिता 'क्षेम' और ' लाभ' संहित पौत्र विराजमान है।। से सभी शिव (कल्याण) करें।

---

१. शिवपुराण रूद्र सं० कुमारखण्ड १६/३६–४२

---

१. शिव पु० रूद्र संहिता कुमार खण्ड २०/२७–२८

अध्याय ८

सूर्य देवता स्वरूप एवं तत्व निरूपण

सूर्य देवता स्वरूप एवं तत्व निरूपण

भारतीय संस्कृत वाङ्मय की सनातन परम्परा में भगवान् भास्कर का स्थान अप्रतिम है। समस्त वेद, पुराण, स्मृति, रामायण महाभारतादि ग्रन्थ भगवान् सूर्य की महिमा से परिप्लुत हैं। विजय एवं स्वास्थ्य लाभ के लिये और कुष्ठ रोग निवारणार्थ विविध अनुष्ठानो एवं स्तोत्रों का वर्णन उपर्युक्त ग्रन्थों में विविध प्रकार से प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। वास्तव में भारतीय सनातन ध ार्म भगवान् सविता क महिमा एवं प्रकाश से अनुप्राणित तथा लोकित हैं। सूर्य–महिमा अद्वितीय है।

वेद ही हमारे धर्म के मूल है। शास्त्रानुसार वेदाध्ययन उपनीत के लिये ही विहित है। उपनयन संस्कार का मुख्य उद्देश्य 'सावित्री उपदेश ' है ।

'सावित्र्या ब्राहमणमुपनयीत '

'तत्सवितुर्वरेण्यम्' [1]

के आधार पर गायत्री मन्त्र में सविता देव ही ध्येय हैं सविता देव के वरेण्य तेज के ध्यानादि के कथन से स्पष्ट है कि इस मन्त्र में सविता देवता की ही प्रार्थना की गयी है ।

अमरकोश में

'भानुर्हंस : सहस्रांशुस्तपनः सविता रविः। [2]

कहा गया है अर्थात् भानु हंस सहस्रांशु तपन सविता रवि से सभी सूयै के अनेक नाम है। अस्तु सविता सूर्य ही है। सूर्य मण्डलान्तर्गत सूर्याभि मानी देवविशेष है। चेतन है। जैसे जल तत्वादि के देवता चेतन होते है उसी प्रकार प्रत्यक्षतः सूर्य मण्डल भले ही जड़ प्रतीत हो परन्तु उनके अभिमानी देवता चेतन है–

"योऽसावादित्ये पुरूषः सोऽसावहम्। [1]

यह मन्त्र भी आदित्य मण्डलस्थ पुरूष को चेतन प्रमाणित करता है।

---

१. ऋ० ३/६२/१०

२. अमरकोश १/३/३८

हमारे शास्त्रो में आध्यात्म भेद से त्रिविध अर्थ की तर्क तथा प्रमाणसम्मत व्यवस्था हैं अतः अध्यात्म सूर्य वह है जो समस्त ज्योतियों की ज्योति और ज्योतिष्मती योग प्रवृत्ति का कारण रूप शुद्ध प्रकाश है।

जिस प्रकाश राशि सूर्यमण्डल का हम प्रतिदिन दर्शन करते है, वह अधि ाभूत सूर्य है। इस सूर्य मण्डल में परिव्याप्त चेतन देव अधिदैव शक्ति ही आधि ादैविक सूर्य है इसका आशय है कि सूर्य या सिविता चेतन है–

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्
तत्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।। [२]

इस मन्त्र में कार्य कारणात्मक आदित्य मण्ड लस्थ पुरूष की प्रार्थ्थना करते हुए सत्य धर्मा अधिकरी कहता है –

'हेपूषन। आदित्यमण्डलस्थ सत्यस्वरूप ब्रह्य का मुख हिरण्मय पात्र से ढका हुआ है। मुझे सत्यध्र्मा को आत्मा की उपलब्धि के लिये आप उसे हटा दीजिये।

'सत्यस्यैवादित्यमण्ड लस्थस्य ब्रह्यमणोउ पिहित माच्छादितं मुखं द्वारम् तत्वं है पूषन् अपावृणुं अपसारय।[३]
अर्थात् हे पूषन्। मुझे सत्योपासक को आदित्य मण्डलस्थ सत्य रूप ब्रह्य की उपलब्धि के लिये आच्छादक तेज को हटा दे।

पूषनेन्कर्षे यम सूर्य प्राजा पत्य व्यूह रश्मीन् समूह।
तेजो यन्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि
योऽसावसौ पुरूषः सोऽहमस्मि।। [१]

---

१. यजु० वाज० स० ४०/१७
२. ईशोपनिषद् १५
३. ईशोप निषद् १५ शांकर भाष्य

अर्थात् जगत् के पोषक एकाकी गमनशील सबके नियन्ता, रश्मियों के स्रोत, रसों के ग्रहण करने वाले हे सूर्य, हे प्रजापति, पुत्र आप अपनी किरणो (उष्ण) को हटाइये, दूर कीजिये और अपनी तापक ज्योति को शान्त कीजिये, आपका जो अत्यन्त कल्याणमय रूप है उसे आपकी कृपा से मै देखता हूँ। मै भृत्य की भॉति याचना नही करता, अपितु आदित्यमण्डलस्थ जो पुरूष है या प्राणबुद्धयात्मक रूप से जिसने समस्त जगत को पूर्ण कर दिया है कि वा जो शरीर रूप पुरमें शयन के कारण पुरूष कहलाता है वह मै ही हूँ।

भगवान् शडंराचार्य वेदान्तसूत्र के देवताधि करण[1] में देवताओं का शरीर नही होता इत्यादि भीमासंक मत का खण्डन करते हुए लिखते है कि –

"ज्योतिरादि विषय अपि आदित्या दयो देवतावचना :

शब्दाः चेतन वन्त मैश्वर्याद्युपैतं देवतात्मानं

मन्त्रार्थ वदेषु तथा व्यवहारसमर्पयन्ति

अस्ति तहमश्चर्य योगाद् देवताना ज्योतिरा द्यात्मभि श्चावस्थातु यथेष्टं च त तं विग्रहं ग्रहीतुं सामर्थ्यम।

तथा हिश्रूयतये सुबह मण्यथै वादे मेधातिथिम् इन्द्रो मेद्यो भूत्वा जहार स्मर्यते च आदित्यः पुरूषों भूत्वा कुन्ती मुपजगाम ह इति ज्योतिरादेस्तु भूत ६ ाातोरादि त्यादिष्वप्यचे तनत्वमभ्युयगम्यते चेतनास्त्वधिष्ठातारो देवतात्मानो मन्त्रार्थवादादिषु व्यवहारादि त्युक्तम्।"

तात्पर्य यह है कि आदित्य में ज्योतिर्मण्डलरूप

भूतांश अचेतन है किन्तु देवतात्मा अधिष्ठाता चेतन ही है। यथा हम लोगो का शरीर वस्तुतः अचेतन है परन्तु प्रत्येक जीवित शरीर का एक अधिपति जीवात्मा चेतन होता है। उसी प्रकार देवशरीरों का अधिपति स्वामी या अध्ष्ठिाता रहता है। जैसे जीव का शरीर उसके अधीन है वैसे ही भगवान् सूर्य के अधीन उनका सूर्य रूपी तेजामण्डल देह है।

---

१. ईशावास्योप निषद् १६

२. शांकर वेदान्तसूत्र ठदेवताधिकरण १/३/३३

सूर्य शब्द का निर्वाचन

निरूक्तकार यास्क ने 'सूर्य' शब्द की निरूक्ति "सूर्यःसतेर्वा सुवतेर्वा "[१] इस प्रकार की है। 'सिद्धान्त कौमुदी' के 'कृत्य प्रकरण ' के 'राजसूर्यसूर्यः'[२] इस सूत्र से निपातन कर सूर्य शब्द की सिद्धि इस प्रकार की है
"सरति गच्छति आकाश इति सूर्यः।"
" यद्वाषु प्रेरणे (तुदादिपक्षी) (भ्वादि पदी)
"क्यपोरूट् सुवति कर्माणि लोकं प्रेरयतीति सूर्य·।

इस प्रकार 'सूर्य शब्द की व्युत्पति से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूर्य भगवान् चेतन है और प्रेरकता चेतन का गुण है।

हमारे हिन्दू धर्म में पञ्चदेवों पासना का वर्णन प्रचुरमात्रा में उपलब्ध होता है कपिल तन्त्र में उल्लेख है कि –

"आकाशस्याधियों विष्णु रग्नैश्चैव महेश्वरी"।

वायोः सूर्यः क्षितैरीशों जीवनस्य गणधिप.।

गुरूवों योग निष्णाताः प्रकृति पञ्चधागताम् परीक्ष्य कुर्युः शिष्णणमधिकारि विनिर्णयम् ।[१]

अर्थात्

आकाश के अधिपति	– विष्णु
अग्नि की अधिपति	– महेश्वरी
वायुतत्व के अधिपति	– सूर्य
पृथ्वी के अधिपति	– शिव
एवं जल के अधिपति	– गणेश

कहे गये है। योग पारङंत्त गुरुओं को चाहिए कि वे शिष्यों की प्रकृति एवं प्रवृति की तत्वानुसार परीक्षा कर उनके उपासनाधिकार अर्थात् इष्टदेव का निर्णय करें।

---

१. निरूक्त १२/२/१४

२. सिद्धान्त कौमुदी ३/१/११४

उपर्युग्क्त कथन का आश्य यह है कि परमात्मा और पञ्चदेवों की उपासनाये पञ्चधा है। अस्तु जैसे भगवान् विष्णु या शिवादिस्वरूप परमात्मा ही है उसी प्रकार भगवान् सूर्य भी परमात्माही है।

सूर्य और गायत्री

सूर्यनारायण प्रत्यक्ष देव है समत सनातन वैदिक धर्मवलम्बी सदा सर्वदा सूर्य नारायण की उपासना करते है कारण यह है कि सूर्य देव प्रत्यक्ष देवता होने के कारण हमारे समस्त शुभाशुभ कर्मो के साक्षी है। इसीलिये हम सब कर्मो के अन्त में सूर्य भगवान् को अर्ध्य प्रदान कर प्रार्थना करते है कि

"नमों विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे।

जगत्सवित्रे शुचयें नमस्ते कर्म साक्षिणे ।।"

अर्थात् हे भगवान् विवस्वान् आप विष्णु के तेज से युक्त है परम पवित्र है सम्पूर्ण जगत् के सविता है और समस्त शुभ और अशुभ कर्मो के साक्षी है हमारा कोई भी कर्म सूर्य नारायण से गोपनीय नहीं है। इसीलिये –

१. प्रातः काल

२. मध्याह काल ओर

३. सायं काल

हम त्रिपदा गायत्री के माध्यम से सूर्य नारायण की उपासना करते है । द्विजातियों ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य को बाल्यकाल से ही गायत्री की दीक्षा प्रदान की जाती है। गायत्री मन्त्रं सूर्य नारायण की उपासना है। गायत्री से बढ़कर दूसरा कोई मन्त्र नहीं। गायत्री वेद माना है चारो वेदों में गायत्री मन्त्र है गायत्री उपास को अन्य किसी मन्त्र की उपासना की अनिवार्यता नही है। गायत्री सर्वदेव मय और सर्ववेदमय है। इसीलिये देवी भागवत पुराण का कथन है कि केवल गायत्री–उपासना की नित्य है । इसी बात को समस्त वेदो ने भी कहा है। गायत्री उपासना के बिना ब्राहमण का अधः पात होता है। द्विजाति केवल गायत्री में ही निष्णात हो तो वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

---

१. कपिल तन्त्र

गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता ।
यय बिना त्वधः पातो ब्राहामणस्यास्ति सर्वथा।।
तावता कृत कृत्यत्वं नान्यापेक्षा द्विजस्य हि।
गायत्री मात्र निष्णातो द्विजो मोक्षमवापनुयात्।
कुर्यादन्यत्र वा कुर्यादित प्राह मनु. स्वयम्।
तस्मादाद्ययुयगे राजन गायत्री जपतत्पराः।
देवी पादाम्बुजाता आसन सव्रद्विजोतमाः।। (१)

मनुजी ने स्वयं कहा है कि द्विज अन्य मन्त्रों में श्रम करें चाहे न करे परन्तु जो द्विज गायत्री को छोड़कर अन्य मन्त्रों में श्रम करता है वह नरकगामी होता है। इसलिये सत्ययुगादि में ऋषि मुनि तथा उत्तम द्विज गायत्री परायण होते थे। सूर्य नारायण में गायत्री मन्त्र द्वारा अपने इष्ट की उपासना की जा सकती है।

समस्त पुराणों में गायत्री महिमा तथा सूर्यो पासना को सनातन कहा गया है । सूर्यापासना पर विशेष बल दिया गया है। वाराहपुराण की कथा है की "श्री कृष्ण भगवान् का पुत्र "साम्ब" अतीव सुन्दर था उसके सोन्दर्य के कारण भगवान की सोलहा हजार एक सौ रानियों के मन में किञ्चित विकृति उत्पन्न हो गयी है।

भगवान् ने नारद जी के द्वारा इस रहस्य को ज्ञातकर ओर सत्यान्वेषण करके 'साम्ब' को कुष्ठरोग से ग्रसित होने का श्राप दे दिया। तदनन्तर नारद जी ने उसे सूर्योपासना का ही उपदेश दिया –

ततस्तु नारदेनैव साम्बशापविनाशक.
आदिशो हि महान धर्म आदित्याराधनं प्रति।।
साम्ब साम्ब महाबा हो श्रृणु जाम्बवती सुत।
पूर्वाचले च पूर्वाहेण उद्यन्तं तु विभावसुम्।।
त्वयार्थितो रविः भूत्वा तुष्टिं यास्यति नान्यथा। (१)

---

१. देवी भागवत पु० १२ स्कन्ध

साम्ब ने मथुरा में जाकर सूयापासना की जिससे उसका कुष्ठरोग चला गया और वह स्वर्ण कान्ति वाला होकर मथुरा में ही सूर्य नारायण की प्रतिमा स्थापति किया।

मार्कण्डेय पुराण में मार्तण्ड सूर्य की उत्पति का तथा उनकी ' संज्ञा और छाया' देनों पत्नियों का और षट् सन्तानो का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है और अन्त मे कहा गया है कि जो सूर्य सम्बन्धी देवों के जन्म को तथा सूर्य माहात्म्य को श्रवण करता है या पढता है वह आपन्ति से मुक्त हो कर महान यश को प्राप्त करता है और इसके श्रवण करने मात्र से ही रात्रि दिन कृत समस्त पापों से मुक्ति सहज मिल जाती है।

यं इद जन्म देवानां रवेर्माहात्मयमेव च ।।
विवस्वतस्तु जातानां श्रृणुयात् वा पठेत् तथा।
आपदं प्राप्य मुच्येत प्रप्नुयात् च महायशः।
अहोरात्रकृतं पापं मेंच्छमयति श्रुतम्।
महात्म्यमादि देवस्य मार्तण्डस्य महात्मनः।। (१)

विष्णु पुराण में प्रजापाल के पूछने पर महातपा महर्षि ने बताया हे कि जो सनातन नारायण ज्ञानशक्ति अर्थात् ब्रह्मा ने जब एक से दो हाने की इच्छा की तभी वह शक्ति तेजरूप में सूर्य बनकर जगत् में प्रकट हुई। वे नारायण ही तेजरूप में सूर्य बनकर प्रकाशित हो रहे है। (२)

इसी प्रकार का वर्णन श्री मद्भागवतपुराण में भी प्राप्त होता है इन द्वादशादित्यों की पृथक पृथक मास में उपासना करने की पद्धति भी वर्णित है। श्रीमद्भगवतपुराण में इस उपासना का महात्म्म बताते हुए कहा गया है कि –

'पे सब सूर्य भगवान् की विभूतियाँ है जो इनका प्रतिदिन प्रातः काल और सायकाल स्मरण करते है उनके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते है–

"एता भगवतों विष्णोरादित्यस्य विभूतयः
स्मरतां सन्ध्योर्नृणां हरन्त्यं हो दिने दिनें।। (३)

---

१. वाराह पुराण अध्याय १७७/३२–३४ श्लोक

अन्त मे भगवान् सूर्य बने साक्षात् नारायण का स्वरूप निरूपति करते हुए कहा गयाहै कि

'अनादि अनन्त, अजन्मा भगवान् श्रीहरि ही कल्प कल्प में अपने स्वरूप का विभाग करके लोकों का पालन पोषण करते है–

एवं हयनादिनिधयो भगवान् हरिरीश्वरः
कल्पे कल्पे स्वमात्मानं व्यूह लोका नवत्यजद्यः

कूर्मपुराण में भगवान् श्री सूर्य नारायण की अमृतमयी रशिमयों का विस्तरेण वर्णन प्राप्त होता है और कौन से ग्रह किस अमृतमयी रशि से तृप्त होते है इसका वर्णन करते हुए अन्त में उल्लेख है कि –

"चन्द्रमा का कभी नाश नही होता । सूर्य को निमित्त बनाकर उसकी रश्मियों के द्वारा देवता गण अमृत पान करते है उन्हीं के कारण चन्द्रमा में क्षय और वृद्धि परिलक्षित होती है–"

"न सोमस्य विनाशः स्यात् सुधा देवैस्तु पीयते। [१]
एवं सूर्यनिमितोडस्य क्षपो वृद्धिश्च सत्तम.।।

निष्कर्षतः वेदो, शास्त्रों ओर विशेषकर पुराणों में सूर्य की सर्वज्ञता सर्वाश्रयता सृष्टि कर्तता काल चक्र प्रणेता आदि के रूपों में वण्रन करते हुए इनकी उपासना का विधान किया गया है। अस्तु प्रत्येक आस्तिक जन के लिये से उपास्य और ध्येय है ।

---

१. मार्कण्डेय पुराण
२. विष्णु पुराण अंश २ /७/११ अध्याय पर्यन्त द्रष्अव्य
३. श्रीमद्भगवत पु० १२/११/४५

---

१. भाग० पु० १२/११/५०
२. कुर्म पु० अ० ४०

"सरति गच्छति वा सुवति प्रेरयति वा तत्तद्

व्यापारेषु कृत्स्नं जगदिति सूर्य। यद्वा सुष्ठु इयते प्रकाश प्रवर्षणादि व्यापारेषु प्रेर्यते इति

सूर्य।"

ऋ० ६/११४/३ पर सायण भाष्य

"सूते श्रियमिति सूर्यः"।

विष्णु सहस्रनाम १०७ पर शांकर भाष्य

"स्वरति आचरति कर्म स्वीर्यते अर्च्यते

भक्तैरिति सूर्यः"निधण्टु ३/१

सूर्य की निष्पति वैदिक 'स्वर' से हुई जो ग्रीक हेलियोस (Helios) से सम्बद्ध है । मैकडॉनल, वैदिक देवशास्त्र पृ० ६६

"सूर्य : सरति भूतेषु सुधीरयति तानि वा।

सु ईर्यत्वाय यो हयेषः सव्रकर्माणि सन्दधत वृहदेवता ।।" ७/१२८/१

सूर्य की उत्पत्ति

संसार की उत्पत्ति के पूर्व एक मात्र अन्धकार ही भरा हुआ था–

'ऊँ तमः आसीत् तमसा गुढमग्रे।' [1]

श्रुति के अनुसार सम्पूर्ण दिशाये अवर्णत्मक तम से व्याप्त थी। सर्वशक्तिमान परमात्मा हिरण्यगर्भ का परम उत्कर्ष तेज उस दिगन्त व्यापिनी अन्ध कारमयी निशा में आत्मा प्रकाश के रूप में उदित हुआ–

'ऊँ सूर्य आत्मा जगतस्त स्थुषश्च'।[2]

और उस अध्यात्म प्रकाश के आवि भाव से सम्पूर्ण दिशाओं का अन्धकार समाप्त हो गया। व्याकरण शास्त्र की दृष्टि में सूर्यसु शब्द 'सूर्य ' धातु से निष्पन्न है इसका अर्थ है –

"गतौ यस्मात् परौ नास्ति।"

अर्थात् जिसके प्रकाश के समान अन्यतम प्रकाश इस भूतल पर नहीं है उसे सूर्य कहते है।

शश्वच्च जायते यस्माच्छश्वस्स तिष्ठते यतः।
तस्मात् सर्वैः स्मृतः सूर्यौनिगमज्ञै र्मनीषिभिः। (३)

जहॉ से अचेतानात्मक नश्वर संसार को चेतना की उपलब्धि होती है और जिसकी संचित चेतना प्राप्त होने पर सम्पूर्ण प्राणी जीवन धारण की संज्ञा उपलब्ध ा करते है उस अखण्डमण्डलाकार धन प्रकाश को ही विद्वान सूर्य कहते है।

यह तेज सहस्रों रशिमपों से सयुक्त 'हिरण्य गर्भ' की संज्ञा से विख्यात था। कुछ युगों के व्यतीत हो जाने पर यह दिव्य तेज ब्रह्माण्ड के गोले मे से आविर्भत हुआ था। जैसा कि साम्ब पुराण में वर्णन प्राप्त होता है।

"स एष तैजसौ राशिर्दीप्ति मान् सार्व लौकिकः।
पार्श्वेनोर्ध्वमधश्वैव प्रतपत्येष सर्वतः।" (१)

परम दिव्य तैज समूह ही भगवान् सूर्य का स्वरूप है जिसकी (दीप्तिमान) प्रभाशक्ति से चौदहों लोक दीप्तिमान् हो रहे है। सूर्य के समग्र तेजो मण्डल द्विधा विभक्त हे उनका कार्य पाताल लोक से ब्रहमलोक पर्यन्त के चतुर्दश लोको मेंं निवास करने वाले प्राणियो के भीतर भी ज्ञान एवं क्रिया शक्ति का उद्दीपन करता है । सूर्य मण्डल का प्रथम तेज ऊर्ध्व की ओर ब्रहमोल पर्पन्त उदीपन करना है। उस तेज की शक्ति 'संज्ञा' है अपर तेज अधोगामी पृथ्वी से पाताल प्रर्यन्त उद्दीपन करता है। उस शाक्ति का नाम ' छाया' है। छाया तथा संज्ञा दोनों ही सूर्य पत्नियां है।

भगवान् सूर्य की ये उपर्युक्त दोनों पत्नियाँ शक्ति के स्थान पर निरन्तर कार्यरत है। पुराण कथा के अनुसार भगवान् सूर्य का तेज अग्नि के समान अति दीप्तिमान तथा प्राणिमात्र के लिये असहय था।

---

१. ऋ० नासदीय सूक्त
२. ऋ० सविता सूक्त १/१६/५/१ य जु ७/४२
३. साम्ब पुराण ६/६६

युग निर्माण के समय सकल मुनि एवं महर्षि भगवान् सूर्य के अप्रधार्ण्य तेज से व्याकुल होकर ब्रह्मा जी से प्रार्थना करने लगे। देवताओ , ऋषियों एवं मुनियो की प्रार्थना से प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी ने त्वष्टा से सूर्य के तेज पर नियन्त्रण करने के लिये आदेश दिया।त्वष्टा ने ' भ्रामी ' यन्त्र द्वारा सूर्य के तेज को नियन्त्रित कर व्यवहार में उपयोग करने योग्य बना दिया। तदनन्तर 'संज्ञा और छाया ' नाम की दो पत्नियां सूर्य के तेज का उपभोग करने लगी।

सूर्य का ऊर्ध्व गामी घु तेज सज्ञा से संयुक्त हो जाने पर सम्पूर्ण संसार के प्राणियों मे ज्ञान संवित् चेतना रूप से स्थित हुआ अतः संज्ञा से सम्बद्धं होकर सभी प्राणी निः श्रेयस् की ओर चलने लगे। दूसरा अधोगामी तेज छाया शक्ति से सयुक्त हुआ। परिणामतः छाया से अनुप्राणित होकर संसार के सभी प्राणी क्रिया कर्म की ओर प्रवत्त होने लगे। अर्थात् संज्ञा से सवित् चेतना ज्ञान द्वारा श्रेय तथा छाया से कर्मपरायण क्रिया दक्ष होकर प्रेय की ओर समस्त संसार के प्राणी प्रवृत्त हुए। संज्ञा से विद्या नाम की ओर छाया से ' अविद्या' उत्पन्न हुई।

सूर्यरश्मि ग्रह मण्डल

यथा प्रभाकरौ दीपौ गृहमध्ये व्यवस्थित.।
पार्श्वेनोर्ध्वम धश्चैव तमो नाशयते समम।
तद्वत्सहस्रकिरणौ ग्रहराजौ जगत्पतिः।
त्रीणि रश्मिशतान्यस्य भूर्लोकं द्योतयन्ति च।। [१]
भगवान् सूर्य सकल ग्रहों के राजा है।

---

१. साम्ब पुराण ७/५६

२. वायु पुराण उत्तरार्द्ध अध्याय २२ मत्स्य पु० आ० ११ पभ पु० सृष्टि खण्ड अ० ८/३५–७० तक सूर्य की प्रभा, संज्ञा रात्रि (राज्ञी) बड़वा ओर छाया ५ पत्नियों का उल्लेख है।

जिस प्रकार घर के मध्य में उज्जवल दीपक ऊपर नीचे सम्पूर्ण घर को प्रकाशित करता है उसीप्रकार अखिल जगत् के अधिपति सूर्य सहस्रो रश्मियों से ब्रह्माण्ड के ऊपर नीचे के भागो को प्रकाशित करते है।

सूर्य का तेज अग्नि कुम्भ के समान आकाश के मध्य चमकता है। उस अखण्ड मण्डलाकार तेज से उत्पन्न किरणें ही रश्मि है। सूर्य तेज का प्रकाश तथा अग्नि की ऊष्मा परस्पर संयुक्त हो जाने पर सूर्य की रश्मि बनती है। सूर्य की सहस्रो रश्मियों में तीन सौ रश्मियां पृथिवी पर चार सौ चान्द्रमस पितस्लोक पर तथा तीन सौ देवलोक पर प्रकाश फैलाती है । रश्मि के साथ सूर्य तेज का प्रकाश तथा अग्नि तेज की ऊष्मा दोनो के परस्पर मिश्रण से ही दिन बनता है । केवल अग्नि की ऊष्मा के साथ सूर्य का तेज मिलने पर रात्रि होती है।

प्रकाशायं च तथौष्ण्यं च सूर्यान्योयै चतैजसी ।
परस्परानुप्रवेशादारव्यायैते दिवानिशम्।। [१]

सूर्य दिन रात में प्रकाश करते है। उनकी रश्मियां रात्रि में अन्धकार तथा दिन में प्रकाश उत्पन करती है। सूर्य का नित्य प्रकाश मान तेज दिन में प्रकाश उष्ण में तथा रात्रि में केवल अग्नि उष्ण में विद्यमान रहता है। सूर्य की रश्मियां व्यापक है। परस्पर मिलकर ग्रीष्म वर्षा शीत का वातावरण उत्पन्न करती है।

नक्षत्र ग्रह सोमाना प्रतिष्ठा योनिखे च।
चन्द्रा द्याश्च ग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसम्भवाः।। [२]

---

१. साम्बा पु० ७/५७–५८

---

१. साम्ब प० अध्याय ७/५८

अखण्डमण्डलाकार में व्याप्त भगवान् सूर्य का तेज एक है। जिस प्रकार उनकी रश्मियों से दिन रात्रि गर्मी वर्षा शीत उत्पन्नहोकर नियामित व्यवहार मे प्रतिष्ठित है, उसी प्रकार चन्द्रमा मंगल, बुध, गुरू , शुक्र, शनि ग्रह तथ नक्षत्र मण्डल सूर्य रश्मि से उत्पन्न होकर उसी मे प्रतिष्ठत अधिष्ठत रहते है।

सूर्य की सहस्रों रश्मियों मे सात रश्मियां मुख्य है ये सप्त रश्मियो ही ग्रह नक्षत्र मण्डल की प्रतिष्ठा मानी गयी है। से सात रश्मियां निम्न है–

१. सुषुरूम्णा

२. सुरादना

३. उदन्वसु संयद्वसु

४. विश्वकर्मा

५. उदावसु

६. विश्वव्यचा

७. हरिकेश

इनका कार्य क्रमशः निम्न प्रकार से है–

१. सुषुम्णा– यह रश्मि कृष्ण पक्ष मे क्षीण चन्द्रकलाओं पर नियन्त्रण करती है। और शुक्ल पक्ष में उन कलाओं का आविर्भाव करती है। चन्द्रमा सूर्य की सुषुम्णा रश्मि से पूर्ण कला प्राप्त करके अमृत का प्रसारण करते ह। विश्व के सकल जड़ चेतन प्राणी चन्द्रमा की पूर्ण कल से क्षरित अमृत को सूर्य रश्मि से उपलब्ध कर जीवित रहते है।

२. सुरादना– चन्द्रमा का उत्पत्ति सूर्य से है। सूर्य की रश्मि से ही देवता अमृत पान करते है। इसलिये वे चन्द्रमा के नाम से विख्यात है । चन्द्रमा में जो शीत किरणे है, वे सूर्य की ही रश्मिया है, इसी से चन्द्रमा अमृत की रक्षा करते है।

३. उदन्वसु – संयद्वषु इस सूर्य रश्मि से मगल ग्रह का आविर्भव हुआ हैं। मंगल प्राणि मात्र के शरीर में रक्त सचालन करते है। इसी रश्मि से प्राणिमात्र के शरीर में रक्त का संचालन होता है। यह सूर्य रश्मि सभी प्रकार के रक्त दोष से प्राणियों को मुक्त कराकर आरोग्य ऐश्वर्य तथा तेज का अभ्युदय कराती है।

---

१. साम्ब पु० ७/६०

४. विश्वकर्मा– यह रश्मि बुध ग्रह का निर्माण करती है। बुध प्राणि मात्र के शुभचिन्तक ग्रह है। इस रश्मि के उपयोग से मनुष्य की मानसिक उद्विग्नता शान्त होती है। शान्ति मिलती है।

५. उदावसु – यह रश्मि बृहस्पति नामक ग्रह का निर्माण करती है। बृहस्पति प्राणि मात्र के अभ्युदय निःश्रेयसप्रदायक है। गुरू के अनुकूल प्रतिकूल में मनुष्य का उत्थान पतन होता हैं। इस सूर्य रश्मि के सेवन से मनुष्य के सभी प्रतिकूल वातावरण निरस्त होते है। अनुकूल वातावरण उपस्थित होते है।

६. विश्वव्यचा – इस सूर्य रश्मि से शुक्र तथा शनि नामक दो ग्रह उत्पन्न हुये है। शुक्र वीर्य के अधिष्ठाता है। मानव जीवन शुक्र से ही निर्मित होता है। शनिदेव मृत्यु के अधिष्ठान है। जीवन और मृत्यु का नियन्त्रण उक्त सूर्य रश्मि से है। जिस के कारण संसार के प्राणी जन्म के उपरान्त पूर्ण आयु व्यतीत उपभोग करके मरते है।

७. हरिकेश– आकाश के सम्पूर्ण नक्षत्र इसी सूर्य रश्मि से उत्पन्न हुए है। नक्षत्रकार्य प्राणि मात्र के तेज, बाल और वीर्य का क्षरण द्रवत्व से रक्षण करना है। यह सूर्य रश्मि नक्षत्र तेज बल और वीर्य के प्रभाव से प्राणी के आचरित शुभ अशुभ कर्म फल को मरणोपरान्त परलोक में प्रदान करती है।

भगवान् सूर्य काल रूप मे अविचल प्रतिष्ठा में स्थित है। क्षण से भी सूक्ष्मातीत काल है। वह क्षण की अवस्था से अतीत होने के कारण अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूप माने गये है । काल से अतीत अन्यतम अवस्थ। नही होती। यद्यपि उनकी अवस्था आध्यमिक दृष्टि से सूक्ष्मातीत मानी गयी है। तथा लोक व्यवहार की दृष्टि में क्षण मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु , अयन वर्ष ये सभी काल की अवस्था माने गये है।

क्षण मुहूर्त दिवसा निशाःपक्षास्तथैव च ।
मासा संवत्सराश्चैव ऋतवोऽथ युगानि च।।
तदादित्यादृते हयेषा कालसंख्या न विद्यते।
कालादृते न नियमो नाग्रेर्विहरणं क्रिया।। (१)

मृत्यु और अमृत से दोनो कालरूप सूर्य के अवयव है इनके द्वारा भगवान् सूर्य काल के रूप में क्षण से संवत्सर पर्यन्त की अवस्था का उपभोग करते है जब सारा संसार

प्रलय मे कालसूर्य मुख में कवलित होने लगता है तब कालरूप सूर्य मृत्यु के आकार मे दृष्टिगोचर होते है जिस अवस्थ मे काल सूर्य के तेज से संहार का आविर्भाव होने लगता है उस अवस्था में भगवान सूर्य काल अमृत के रूप में साक्षात होते है।

वस्तुत

सूर्यात प्रसूयते सर्व तत्र चैव प्रलीयते।

भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निः सृतौ पुरा।। [२]

प्रलय मृत्यु के समय समस्त संसार को रूप का अभाव रहता है। उत्पति के समय सभी संसार अमृत से व्याप्त भाव स्वरूप दिखलायी पड़ता है भाव तथा अभाव की अवस्थाकाल रूप भगवान् सूर्य से उत्पन्न होती है। सूर्य के ऊपर गमन करने वाली द्युलोक गमी संज्ञा रशिम अमृत है। आदित्य मण्डल में विद्यमानअन्तर्यामी पर मात्मा रश्मिमय ज्योतिमय हिरण्य पात्र से आच्छन्न है।

" रश्मीनां प्राणानां रसानां च स्वीकरणात् सूर्यः। [१]

सूर्यरश्मि ही सम्पूर्ण प्राणियों की प्राणशक्ति है। वह दिव्य अमृत रस से प्राणियों को जीवन प्रदान करती है गायत्री, त्रिष्टुप, जग जगती अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति उष्णिक से सात व्याहृतियाँ सूर्य के साथ रश्मि से उत्पन्न हुई है। व्याहृति रश्मियों के अवयव हैं । रश्मियों के द्वारा ज्ञान (चतेना –संवित्) संज्ञा उपलब्ध होती है। वेदिक कालीन मुनि, महर्षि सूर्यरश्मि पान कर के सूर्य रश्मि के अवयव सप्त व्याहृति तथा सम्पूर्णवेद का सादात् अनुभव करते थे अर्थात् सूर्य रश्मि के प्रभाव से व्याहृति एवं ऋग्यजु साम अथर्ववेद मुनि, महषियो के हृदय में अविर्भूत हो जाते थे। महर्षि याज्ञवल्वय ने इन्ही सूर्य रश्मि यों का पान कर ही व्याहृति एवं वेद को अन्त र्मानस में आविर्भूत किया था।

---

१. साम्ब पु० ८/७–८

२. साम्ब पु० ८/५

---

१. शाडकर भष्ण

त्रिकाल सन्ध्या में सूर्योपासना

समय की गति सूर्य के द्वारा नियमित होती है। सूर्य भगवान जब उदय होते है तब दिन का प्रारम्भ तथा रात्रिका शेष होता है, इसको प्रातः काल कहते है। जब सूर्य आकाश के शिखर पर आरूढ होते है उस समय को दिन का मध्य अथवा मध्याहन कहते है ओर जब वे अस्ताचल को ओर उन्मुख होते है तो दिन का शेष एवं रात्रि का प्रारम्भा होता है। उस सायंकाल कहते है । त्रिविध काल उपासना के मुख्य काल माने गये है। यों तो जीवन का प्रत्येक क्षण उपासना मय होना चाहिए परन्तु इन तीनों कालों मे भगवत् उपासना तीनों नितान्त आवश्यक है। प्रतिष्ठा को प्राप्त है। इन तीनों समयों की उपासना के नाम ही क्रमशः–

१. प्रातः सन्ध्या

२. मध्याह सन्ध्या

३. सायं सन्ध्या है।

प्रत्येक वस्तु की तीनअवस्थाये होती है

१. उत्पत्ति

२. पूर्ण विकास

३. विनाश

ऐसे ही जीवन की भी तीनों ही दशायें होती है।

१. जन्म

२. पूर्ण युवावस्था

३. मृत्यु

हमें इन अवस्थाओं का स्मरण दिलाने के लिये तथा इस प्रकार हमारे अन्दर संसार के प्रति वैराग्य की भावना जागृत करने के लिये ही मानों सूर्य भगवान् प्रतिदिन उदय होने उन्नति के शिखर पर आरूढ़ होने और फिर अस्त होने की लीला करते है भगवान् की इस त्रिविध लीला के साथ ही हमारे शास्त्रों ने तीन काल की उपासना जोड़ दी है।

भगवान् सूर्य परमात्मा नारायण के साक्षात् प्रतीक है। एतदर्थ वे सूर्य नारायण कहलाते है। यहीं नहीं सर्ग के आदि में भगवान नारायण ही सूर्यरूप में प्रकट होते है। इसलिए पञ्च देवो मे सूर्य की भी गणना है–

आदित्यं गणनाथं च दैवी रूद्र च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत।। [१]

वैसे भी वे भगवान् की प्रत्यक्ष विभूतियों मे सर्वश्रेष्ठ इस ब्रहामाण्ड के केन्द्र स्थूल काल के विधायक, तेज के महान आकर विश्व पोषक एवं प्राण दाता तथा सचराचर के आधार है। वे प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने वाले सकल देवताओं में श्रेष्ठ है। इसीलिये संध्या मे सूर्य रूप से ही भगवान की उपासना की जाती हे उन की उपासना से हमारे तेज, आयु, बल, एवं नेत्रो की ज्योति की वुद्धि होती है और मृत्यु काल में वे अपने लोक में से होकर भगवान् के परम धाम मे ले जाते है। कारण कि भगवान् के परम धाम का मार्ग सूर्य लोक से हो कर ही गया हैं। शास्त्रों का प्रतिपादित सिद्धान्त है कि योगी गण और कर्तव्यरूप से युद्ध में शत्रु के सम्मुख युद्धरत प्राण देने वाले क्षत्रिय वीर सूर्य मण्डल को भेदकर भगवान् के धाम में चले जाते है। हमारी आराधना से प्रसन्न हो कर भगवान् सूर्य यदि हमे भी उसी लक्ष्य तक पहुचादे तो इसमें उनके लिये कोई कठिन कार्य नहीं है। अस्तु जो जन आदरपूर्वक एवं नियम से प्रतिदिन तीनों: समय अथवा कम से कम दो समय प्रातः काल एवं सायकल ही भगवान् सूर्य की आराधना करते है। अन्त में सूर्य की कृपा से परमगति को प्राप्त होते है–

" उद्यन्त मन्तं यन्तमादित्य मभिध्यायन्
कुर्वन ब्राह्मणो[१] विद्वान् सकल भद्र मश्नुतो।।

सन्ध्या के त्रिविध भेद

प्रातः सन्ध्या के तीन भेद माने गये है–

१. तारागण युक्त
२. लुप्त तारागण
३. सूर्य सहिता

---

१. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ पृ० ६४५

२. आकाशस्पाधियो विष्णुरानेश्चैव महेश्वरी। वायो : सूर्यः क्षितोरीशो जीवनस्य गणधिपः। कपिल तन्त्र।

"उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततार का कनिष्ठा सूर्य सहिता प्रातः संध्यात्रि धा स्मृता।। [२]
उत्तम सध्या ब्रह्मा काल में ताराओं के साथ सम्पन्न होती है। मध्यम संध्या तारागणो के लुप्त होने तथा सूर्योदय के पूर्व मानी गयी है, किन्तु सूर्योदय के पश्चात् की जाने वाली सन्ध्या आधम (कम प्रभाव वाली) मानी जाती है । इसी प्रकार सायं सन्ध्या में इसके विपरीत क्रिया होती है।

उत्तमा सूर्य सहिता मध्यमा लुप्त भास्करा। कनिष्ठा तारकोपेता सायं सन्ध्या त्रिधा स्मृता।।"
अर्थात् सूर्य के साथ की जाने वाली सन्ध्या उत्तमा सूर्य के अस्त होने पर की जाने वाली सन्ध्या मध्यम ओर ताराओं क निकल आने पर की जाने वाली सन्ध्या कनिष्ठा कहलाती है।

ब्राह्मम मुहूर्त में शय्यात्याग कर शौचस्नानों परन्तु धौत वस्त्र पहन कर प्रेम से चन्दन पुष्पादि से युक्त ताजे जल से सूयै को अर्ध्य देकर स्तुति करे और गायत्री का जप करना चाहिए। गायत्री मन्त्र से तीन वार अर्ध्य देना चाहिए। गायत्री मन्त्र जपकर खड़े होकर उपस्थापन करना चाहिए। ये सभी सन्ध्योपासन के मुख्य कर्म है शेष कर्म इन्ही के अगंभूत एवं सहायक है।

भगवान की सामान्य कृपा सब पर समानरूप से रहती है। सूर्य नारायण अपनी उपासना न करने वालो को भी उतना ही ताप एवं प्रकाशप्रदान करते है। जितना वे उपासना करने वालों को प्रदान करते है। इसमें न्यूनाधिक्य दोष नही है। जो विशेष लाभ की इच्छा करते है, जन्म मरण के चक्र से मुक्ति चाहते है, उनके लिये सूर्य की उपासना नितान्त आवश्यक है।

---

१. तैत्ति० आर० प्र० २ अ० २

२.अ देवी भागवत ११ /१६/४

२.ब. पूर्वा सन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि
गायत्री मभ्यसेन्तावद् यावदादित्यदर्शनम् ।। हारीतस्मृति ४/१८

सूर्योपासना के प्रमुख रूप है।–

१ गायत्री उपासना

२ सन्ध्या

३ सूर्यमन्त्र

४. जप

५. सूर्यपूजा

६. और पञ्चदेव पूजा

सूर्य की उत्पत्ति कथा - पौराणिक कथा

सूर्य आगम निगम संस्तुत ओर ज्ञान विज्ञान सम्मत देवाधिदेव परम देवता है । उन्हे लोक जीवन के साक्षी ओर सासारिक प्राणियो की आखो का प्रकाशक माना जाता है इसीलिये उनको

'लोकसाक्षी और जगच्चक्षु'

संज्ञा प्राप्त है। निरूक्त के अनुसार आकाश में परिभ्रमण करने के कारण उन्हें सूर्य की संज्ञा प्राप्त है। वे ही लोक को कर्म की ओर प्रेरित करते है। तथा लोकरक्षक होने के कारण 'रवि के नाम से उद्घोषित हुए है। [१]

---

१. देवी भाग० पु० ११/१६/५

---

१. (क) सरति आकाशे इति सूर्यः।

(ख) सुवति कर्मणि लोकं प्रेरयति इति सूर्यः।

(ग) रूयते इति रविः

(घ) अवतौमांस्त्रयान् लोकांस्तस्मात् सूर्यः परिभ्रमात्।

अचिर तु प्रकाशेत अवनात् सरविः स्मृतः।।

कल्याण सूर्य अंक पृ० १७६ पर

प्राचीनतम वैदिक ऋषि मुनि से आधुनिकतम वैज्ञानिक तक सूर्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक गुणो से भलीभाँति परिचित होते रहे है। अत एवं सूर्य से भावपूर्ण सम्पर्क स्थापनार्थ उन्होने सूर्यो पासना को विश्व धर्म और सस्कृति को अनिवार्य अडंबना दिया। फलतः भगवान् सूर्य सम्पूर्ण विश्व के लिये अधिष्ठाता के रूप मे अंगीकृत हो गये । रोग सम्बन्धी जीवाणुओ के शामन के लिये सूर्य किरणों की उपयोगिता चिकित्सा शास्त्र सम्म्त है। साथ ही वनस्पति शास्त्र में वनस्पतियों की अभिवृद्धि के लिये सूर्य किरणों की उपादेयता स्वीकार की गयी है । कृषि विज्ञान के अनुसार वर्षा के लिये मेघ के निर्माणार्थ सूर्य ज्योति अनिवार्य है—

"धूमज्योतिः सलिलमरूता सन्निपातः क्वमेघः।" [1]

आरोग्य कामना, निर्धनता निवारण ओर संति प्राप्ति आदि की दृष्टि से सूर्य की पूजा एवं उनके स्तोत्रों के पाठ का व्यापक प्रचलन है। कर्मकाण्ड में सूर्य को प्रथम पूज्य देव की प्रतिष्ठा प्राप्त है। सूर्य को अर्घ्यप्रदान करने के पश्चात् ही देवकार्य या पितृ कार्य का विधान सर्वसम्मत है। तन्त्रसार या आगम पद्धति में तो 'सूर्य विज्ञान' की अत्यन्त महिमा है।[2] योगासनों में भी 'सूर्य नमस्कार ' को प्राथमिकता प्रदान की गयी है। निः सन्देह सूर्य जागतिक जीवों के प्राणपोषक सर्वसम्प्रदाय सम्मत् लोक तान्त्रिक अजातशत्रु देवता है। शास्त्रो मे यह निर्देश है कि जो व्यक्ति प्रतिदिन सूर्य को नमस्कार करता है वह सहस्रो जन्मों में भी दरिद्र नहीं होता —

" आदित्याय नमस्कारं यो कुर्वन्ति दिने दिने।

जन्मान्तर सहस्रेषु दारिद्रयं नोपजाये ते ।"[1]

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार प्रातः कालीन सूर्य जिस घर में शय्या परसोये हुए पुरूष को नही देखते जिस घर में नित्य ओर जल वर्तमान रहता हे और जिस घर में प्रतिदिन सूर्य को दीपक दिखलाया जाता है वह घर लक्ष्मी पात्र होता है। —

" भास्करादृष्टशय्यानि नित्यागिनु सलिलानि च ।

सूर्यावालोक दी पानि लक्ष्म्यागेहानि भाजनम्। [2]

---

१. मेघदूत पूर्व मेघ ५ श्लोक

२. सूर्य विज्ञान के 'चमत्कारिक पक्ष के लिये द्रष्टव्य सूर्य विज्ञान' शीर्षक प्रकरण भार संस्कृति और साधना खण्ड २ पृ० १६१ द्रष्टव्य।

इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेख है कि आरोग्य कामी मनुष्यो को सूर्य की प्रार्थना करनी चाहिए–

"आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धन मिच्छेद्धुताशनात् ।

ज्ञान च शङरादिच्छेन्मुक्तिमिच्छेज्जनार्दनात् । [3]

जिस प्रकार सूर्य की किरणेंा से सम्पूर्ण संसार प्रकाशित है उसी प्रकार सूर्य की महिमा से समस्त विश्ववाद्रव्मय मुखरित है।

यह सर्वज्ञात है कि जो देवता जितने महान होत है, उनकी उत्पत्ति कथा भी उतनी ही विचित्र महान होती है। पुराणों मे वर्णित महामहिम देवता सूर्य की उत्पत्ति कथा न केवल विचित्र ही है अपितु इसमें सूर्य के वैज्ञानिक आयामों का रूपकात्मक विन्यास भी परिलक्षित होता है।

प्रजापति ब्रह्म को जब सृष्टि की कामना हुई तो वे अपने दायें हाथ के अंगुष्ठ से दक्ष की ओर बाये से उनकी पत्नी का सृजन किया। ब्रह्म पुत्र 'मरीचि' का ही अपर नाम 'कश्चप' था। दक्ष की तेरहवीं कन्या के रूप में उत्पन्न अदिति के साथ कश्यप का विवाह संस्कार हुआ। कश्यप के द्वारा स्थापित अदिति के गर्भ से भगवान् सूर्य ने जन्म लिया। उन भगवान् सूर्य से ही समसत सचरातर जगत करआविर्भाव हुआ। अदिति ने पहले सूर्य की आराध ाना की थी इसीलिये वे आदिति के गर्भ से पुत्र के रूप में प्रकट हुए।[1]

ब्रह्मा के मुख से सर्व प्रथम 'ऊँ' प्रकट हुआ, तदनन्तर "भूः भुवः स्वः" उत्पन्न हुए। यह व्याहृति त्रय ही सूर्य का स्वरूप है साक्षात् पर ब्रह्म स्वरूप 'ऊँ' सूर्य का सूक्ष्म रूप है। तत्पश्चात् उनके 'महः जनः तपः और सत्यम् ' मूर्ति इन चार स्थूल से स्थूल तर रूपों का अविर्भाव हुआ। भूः भुवः स्वः महः जनः तपः और सत्यम् ये सूर्य की सप्तमूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित है। आदि तेज 'ऊँ' के स्वभाव से जो उत्पन्न हुआ वही आदि तज को सम्पक् रूप से आवृत करके अवस्थित हुआ। तदनन्तर ब्रह्मा के मुख से निर्गत– ऋक्‌मय– यजुर्मय–साममय अर्थात् शान्तिक पौष्टिक और आभिचारिक तेज परस्पर मिलकर

उक्त आद्य तेज ' ऊँ' पर अधिष्ठित हो गये।

इस प्रकार एकत्र तेजः पुंज से विश्व मे व्याप्त गम्भीर अन्धकार नष्ट हो गया। और स्थावर जन्ममात्मक जगत् सुनिर्मल हो उठा। दशों दिशायें किरणों की प्रखर कान्ति से चमकने लगीं। इस प्रकार ऋग्पजुः साम जनित छन्दोमय तेज मण्डली भूत होकर ऊँकार स्वरूप परम तेज के साथ मिल गया और यही अध ययात्मक तेज विश्वसृष्टि का कारण बना। अदिति से उत्पन्न होने के कारण सूर्य को ' आदित्य' कहा जाता है किन्तु पुराणों के अनुसार सृष्टि के आदि में उत्पन्न होने के कारण ही सूर्य को ' आदित्य' की संज्ञा से सम्बोधित किया जाता है।

ऋग्वेद यजुः और साममय अर्थात् शान्तिक पौष्टिक और आभिचारिक तेज क्रमशः प्रातः मध्याहन और सांय मे ताप देते है। पूर्वाहन के ऋक तेज की सज्ञा शान्तिरक मध्याहनः केयजुष तेज की संज्ञा पौष्टिक और सायाहन के साम तेज की संज्ञा आभिपारिक है। सूर्य का तेज सृष्टि काल में ऋृकमय ब्रह्मस्वरूप, स्थिति काल में यजुर्मय विष्णु स्वरूप तथा संहार काल में रूद्रस्वव्रूप में प्रतिष्ठित रहता है।। इसलिये सूर्य को वेदात्म वेद संस्थित, वेदविद्यामय, और परमपुरूष कहा जाता है। सूर्य की सृष्टि, स्थिति और प्रलय के हेतु एवं सत्, रज, तम इन वित्रविध गुणों के आश्रय है ब्रह्मा विष्णु ओर महेश इन त्रिदेवों के प्रतिरूप भी सूर्य ही है । एतदर्थ देवता गण सदा सर्वदा इनकी स्तुति करते है

---

१. आदित्य ह्रदय स्तोत्र

२. मार्कण्डेय पुराण ५०/८१

३. मत्स्य पु० ६७ /७१ और भाग पु० पर व्यास वचन

---

१. मार्कण्डेय पु० १०५वाँ १०६ वाँ अध्याय ब्रह्मा पु० २८ से ३३ वाँ अध्याय विष्णु पु० अंश २ अध्याय ८–१२ पर्यन्त, अग्निपु० १६ ५१ ७३ ६६ १४८ वाँ अध्याय लिगं पु० २२ वाँ अध्याय मत्स्य पु० ६७ वाँ अध्याय १०१ वाँ अध्याय पद्मपु० ७५–७६ वाँ अध्याय भविष्य पु० के ब्राह्मम पर्व के ४२ वे अ० से १४० अ० पर्यन्त भाग पु० स्कन्ध ५/२१–२४ वाँ अध्याय पर्यल (सौर सन्दर्भ)

सर्वशक्ति : परा विष्णो ऋंग्यजु. सामसंज्ञिता।
सैषा त्रयी तपत्यंहो जगतश्च हिनस्ति या ।।७
सैष विष्णुः स्थितः स्थित्यां जगत्ः पालनोद्यतः ।
ऋग्यजुःसामभूतोऽन्तः सवितुर्द्विज तिष्ठति।।८
मासि मासि रविर्यो यस्तत्र तत्र हिसा परा।
त्रयीमयी विष्णु शक्ति खस्थानं करोति वै।।६
ऋचः स्तुवन्ति पूर्वाहने मध्याहेनऽथ यजूषिवै,
ब्रहद्थन्तरादीनि सामान्य हनः क्षये रविम्।।१०
अङ्ग्मेषा त्रयी विष्णों ऋंग्यजुः सामासंज्ञिता।
विष्णुशक्ति खस्थानं सदादित्ये करोति सा।।११
न केवलं खेः शक्ति वैंष्णवी सा त्रयीमयी।
ब्रह्माथ पुरूषो रूद्रस्त्रयमेतत्त्रतीमयीम्।।१२
सर्गादौ ऋग्मयौ ब्रह्मा स्थितौ विष्णुयजुर्मयः।
रूद्रः साममयोउन्ताय तस्मातस्याशुचिर्ध्वनिः।।१३
एवं सा सात्वि की शक्ति वैंष्णवी या त्रयीमयी।
आत्मसप्त गणस्थं तं भास्वन्त मधि तिष्ठति।।१४
तथा चाधिष्ठितः सोऽपि जाज्वलीति स्वरश्मिभिः।
तमः समस्तजगतां नाशं नयति चाखिलम्।।१५
स्तुवन्ति चैनं मुनयों गन्धवैर्गीयते पुरः।
नृत्यन्तोऽप्सरसो यान्ति तस्प चानु निशाचराः।।१६

उपरिवर्णित परमतजोमय सूर्य से जब संसार का अधः ऊर्ध्व और मध्य भाग संतप्त होने लगे तब स्ष्टा ब्रह्मा भयत्रस्त हो उठे कि इस आदित्य से सकल सृष्टि भस्म हो जायेगी। अस्तु वे सूर्य स्तवन करने लगे। तब उनकी प्रार्थना पर सूर्य ने अपने तेज का संवरण कर लिया। फिर तो ब्रह्मा ने समग्र चराचर जगत्, वन नदी, पहाड़, मनुष्य, पशु, देवता, दानव और उरग आदि की विराट सृस्टि किया।

आदिति सेदेवता दिति से दैत्य तथा दनु से दानव उत्पन्न हुए। अदिति दिति ओर दनु के पुत्र सारे संसार में फैल गये। देवों और दैत्य दानवों में भयंकर

संग्रम होने लगा। इस देवासुर सग्राम मे देवता पराजित हो गये। हारे हुए देवो की दीनता और ग्लानि देखकर अदिति अपनी संतानों की मंगल कामना से सूर्याराधन करने लगी तब भगवान् सूर्य प्रसन्न होकर अदिति से कहा –

"मै तुम्हारे गर्भ से सहस्रांशु होकर जन्म लूँगा और तुम्हारे पुत्रों के शत्रुओ का नाश करूँगा।

"सहस्राशेण ते गर्भे संभूयाहमशेषतः।
त्वतपुत्र शत्रुनदिते नाशयाम्याशु निर्वृतः।। (१)

भगवान् सूर्य की किरणों के सहस्रांशु ने देव माता अदिति के गर्भ में प्रवेश करके अवतार रूप में अवस्थित हुआ। अदिति बहुत सावधानी के साथ पवित्र रहकर कृच्छ चान्द्रापण आदिव्रत करती हुई दिव्य गर्भ धारण किये रही। उनकी कठोर तपश्चर्या को देखकर पतिदेव कश्यप कुद्ध होकर बोले ' नित्य निराहार व्रत करके इस गर्भाण्ड को क्यो नष्ट कर रही हो अदिति के उत्तर में आस्था अनुस्वारित हुई ' यह गर्भाण्ड नष्ट नही होगा वरन शत्रु विनाश का कारण बनेगा।' यह कर क्रोध ाविष्ट अदिति ने देव रक्षक तेजः पुञ्जस्वरूप अपने गर्भाण्ड का परित्याग किया। गर्भाण्ड के तेज से ब्रह्माण्ड जलने लगा। तब कश्यप सूर्य सदृश तेजस्वी उस गर्भ को देखकर प्राचीन ऋग्वेदोक्त मन्त्रों से उसकी प्रार्थना करके लगे।

उस गर्भाण्ड से रक्त कमल के सदृशस्कान्तिमान एक बालक प्रकट हुआ जिसके तेज से समस्त दिशाये समुभ्दसित हो उठी तदनन्तर गम्भीरस्वर में आकाशवाणी हुई–।

'कश्वप तुमने अदिति सेकहा था कि क्यों गर्भाण्ड को मार रही हो इसीलिये पुत्र का नाम ' मार्तण्ड (मारित अण्ड मारताण्ड) होगा। यह पूर्ण समर्थ होकर सूर्य के अधिकार का काग्र करेगा और यज्ञ भाग हरने वाले असुरों का विनाशक होगा–

"मारितं ते यतः प्रोक्तमेतदण्डं त्वया मुने।
तस्मान्मुने सुतस्तेयं मार्त्तण्डाख्यों भविष्पति।।"
सूर्याधिकारं चः विभुर्जगत्येष करिष्यति।
हनिष्यत्यसुरांश्चार्य यज्ञभागहरारनरान्।। (१)

इस आकाशवाणी को श्रवणकर परम हर्षित देवता आकाश से उतरे और दैत्य तेजबलहीन हो गये है। पुनः– देव दानव भीषण संग्रम हुआ जिसमें मार्तण्ड के तेज सेदानव भस्म हो गये ।

इसके पश्चात् प्रजापति विश्वकर्मा ने अपनी पुत्री 'सज्ञा' को उन परम तेजस्वी मार्तण्ड के साथ विवाह कर दिया। संज्ञा से भगवान् सूर्य के तीन सन्ताने दो पुत्र वैवस्वत मनु और यम और एक कन्या यमुना उत्पन्न हुई। परन्तु मार्तण्ड के बिम्ब का अखिलभुवन सन्तापकारी तेज संज्ञा के लिये असहय हो गया। तब उसने अपने स्थान पर अपनी छाया को स्थापित कर स्वयं पिता विश्वकर्मा के घर लौट गयी।

छाया से भी सूर्य ने तीन सन्तानो दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्न की वैवस्वत मनु के तुल्य बडा पुत्र सावर्णि नाम से प्रसिद्ध हुआ।
द्वितीय पुत्र ' शनैश्चर ' नामक ग्रह हुआ और पुत्री का नाम ' तपती ' रखा गया। ' तपती' को महाराज ' सवरण' विवाहार्थ ले गये। छाया अपने और बच्चों से जैसा प्यार करती थी, वैसा ही प्यार सौतेली सन्तानों को नही दे पाती थी। छाया के इस व्यवाहर को वैवस्वत मानु ने तो सहन कर लिया किन्तु यमराज से नही सह गया वह सौतेली माँ पर चरणप्रहार करने को उद्यत हो गया। फलतः उसे मॉ के अभिशाप को भागी बनना पडा। कालान्तर में वह शापमुक्त होकर ' धर्मराज' की संज्ञा से सम्बोधित होने लगा।

संज्ञा के विरह से व्याकुल सूर्य ने अपना तेज क्षीण करने के लिये श्रवसुर विश्वकर्मा से आग्रह किया। तब विश्वकर्मा ने उनके मण्डलाकार विम्ब को भगमी यन्त्र (चाक सान पर चढाकर) से तेज घटाने के लिये प्रवृत्त हुए। तदनन्तर ' शाकद्वीप ' में सूर्य चक्र पर चढ़कर घूमने लगें। चक्रारूढ़ सूर्य के परिभ्रान्त होने से सारे जड़ चेतन जगत् में उथल पुथल मच गयी। पहाड़ फट गये पर्वतशिखर पूर्ण विचूर्ण हो गये। आकाश, पाताल और मर्त्य तीनों लोक एवं भुवन व्याकुल हो उठे। इस प्रकार विश्वविध्वंश की स्थिति उत्पन्न हो गयी। सभी देवी–देवता भया क्रान्त होकर सूर्य की स्तुति करने लगे।

---

1. विष्णु पु० २ अंश ११/अ० ७/१६ श्लोक

विश्वकर्मा ने सूर्य बिम्ब के सोलह भागो में चन्द्रह भागों को रेत डाला। परिणामतः सूर्य का प्रचण्ड ताप कारी शरीर मृदुल मनोरम कान्ति से कमानीय हो गया। विश्वकर्मा ने सूर्य तेज के पन्द्रह भागों से विष्णु के चक्र, महादेव के त्रिशूल कुबेर की शिविका, यम के दण्ड और कार्तिकेय के शक्तिपाश की रचना की एवम् अन्यान्य देवों के प्रभाविशिष्ट विभिन्न अस्त्र–शस्त्र बनायें। अब सूर्य के मञ्जुल रोचिष्मान शरीर को देखकर संज्ञा परम प्रसन्न हुई।

इस प्रकार भारतीय कला चेतना के प्रतीक सूर्य की उत्पत्ति की कथा न्यूनाधि क रूपान्तरों के साथ विभिन्न पुराणो मे वर्णित है। यह कथा अधिकाशंत : मार्कण्डेय पुराण पर आधारित है ओर विशेष कर भविष्यपुराण (ब्राहम–पर्व) वराहपुराण (आदित्योत्पति अध्याय), विष्णु पुराण (द्वितीय अश), कूर्म पुराण (४० वॉ अध्याय), मत्स्य पुराण (अध्याय १०१), और ब्रह्म वैवर्त्त पुराण (श्री कृष्ण खण्ड) आदि में वर्णित है । इसीलिये प्रायः सभी इन तेजो धाम भगवान् सूर्य की प्रार्थना में नतशीर्ष है।–

यस्य सर्वमय स्येदमडभूतं जगत्प्रभा।
स नः प्रसीदतां भास्वाञ्जागतां यश्च जीवनम्।।
यस्यैक भास्तरं रूपं प्रभामण्डल दुर्दशम्।
द्वितीयमैन्दवं सौम्यं स नो भास्वानू प्रसीदतु।।
ताभ्यां च यस्परूपाभ्यामिदं विश्वं विनिमितम्।
अग्नीषोममयं भास्वान स नो देवः प्रसीदतु।।

---

१. मार्कण्डेय पु० १०५ /६

---

१. मार्कण्ड प० १०५/१६–२० श्लोक

---

१. मार्कण्डेय पु० १०६/७२–७४ श्लोक

सूर्य तत्व की मीमांसा

सूर्य मानवीय जीवन प्रज्ञा ओर विज्ञान के आदि उत्सं है। सूर्य से ही ब्रह्माण्ड उत्सर्गित हैं। पाश्चात्य भौतिक वैज्ञानिक सूर्य को निम्न भाषा में कहते है –

"यह जो सूर्य है वह प्रचण्ड गर्म नक्षत्र है। यह पृथिवी का नियांमक और प्रकाशक है। इसकी गति के अनुसार ही महीनों का निर्माण ओर विभाग हुआ। ज्योतिष शास्त्र ओर चिकित्सा विज्ञान की प्रणालयों के लिये यह बहुत उपयोगी है। देह रचना और रोग के हटाने में यह प्रभूत सुविधा प्रदान करता है"

भारतीय पुरातत्वीय चिकित्सको को काभी सम्मत है।

"आरोगयं भास्करदिच्छेत"

भास्कर की उपासना एवं प्रार्थना यसे ही आरोग्य मिलता है ऋग्वेदा में इसी प्रकार की भाव है

ऊँ उत सूर्यो बृहदर्यान्य श्रेत पुरू

विश्वा जनिम मानु षाणाम्।

समो दिवा ददृशे रोचमानः

क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तुभिर्भूत्।। (१)

अर्थात् ये सूर्य जो सबके प्रेरक है वे अत्यन्त तेजोमय है ऊपर में स्थित होकर भी ये नागरिको को तेजवान करते हैं। उनकी उपयोगिता कहाँ तक कहा जाय वे समान रूप से हमारे हम सभी के उपयोगि समूहो के उत्पादक है। प्रतिदिन प्रतिक्षण मन को भाने वाले ये देव इस जगत् के नियामक है। तत्वो के सम्पादक है और सभी साधनो के दाता है।

इसलिये तत्वदर्शियो (विज्ञनियों) द्वारा सर्वदा स्तुत्य है पुष्प कार्य, मडण्ल कार्य और शुभ कार्य के बनाने वाले हे इनका उदय कितना विचित्र है।–

ऊँ चित्रं देवानामुदगादिनी कं

चक्षुर्मित्रस्य वरूणस्याग्नेः।

आप्राद्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं,

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च,।। (२)

सायण भाष्य के अनुसार जगत्मात्र के आत्मा स्वरूप (परमात्मा) सूर्य स्थावर जंगम सभी प्राणियो को अपने तेजमय प्रकाश द्वारा जाग्रत् करते हे इनके किरणसमूह जीव में जीवन

संचार करते है मित्र वरूण अग्नि,चक्षुः प्राण, अपान जठर, वायु और जल के वे अदभुत प्रवर्तक है। ये चक्षु स्वरूप के स्रष्टा एवं सव्रत्र अन्तर्यामी रूप से विद्यमान है।

अथर्वेद मे वर्णन है कि

"ऊँ" उद्यन्तादित्या : क्रिमीन् हन्तु विमोचन् हन्तु रश्मयः। [१]

अर्थात् आदित्य अपनी रश्मियों से जीवन के सभी दोषों से मुक्त करते हुए रोगों के कीटाणुओं को मार देते है जीवन को रोगमुक्त कर स्वस्थ बना देते है। ऋ० के अनुसार–

"ऊँ" अर्चन्त एके महिसाममन्वत तेन सूर्य मरोचयन्। [२]

एक मात्र सूर्य की अर्चना से ही प्राणी भारी से भारी कार्य में सफलता तथा सर्वज्ञता प्राप्त करते है। अतएव सभी लोग सर्वोत्पादक इन भगवान् सूर्य को अधिक चाहते हैं।

सूर्य का त्रिदेवत्व रूप - स्रष्टा ब्रह्मा

अमरकोश में ब्रह्मा का हिरण्यगर्भ कहा गया है –

ब्रह्ममात्मभूः सुरज्येष्ठः परमेष्ठी पितामह·

हिरण्यगर्भो लोकेशः स्वम्भूश्च तुराननः।। [३]

वेदों मे और पुराणादि धर्मग्रन्थों में भी सूर्य को हिरण्यगर्भ, आदित्य ओर विधाता के नामों से सृष्टिकर्ता कहा गया है। यथा–

ऊँ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे,

भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां

कस्मै देवाय हविषा विधेम्

---

१. चैम्बर्स इन्साइक्लोपिडिया वाल्यूम ६ ,१६०४ ई में प्रकाशति है ।

Sun the stoor which was governs illuminates the eorth other bodies forming the solur system . By the patient afforts of astronomers and physicists or vast body of knowledge of which her we can. But give the outline has been goined regourding it. For conveniecne we condense such of this information as admists of the treatment into the subjoined touble".

२.(क) मत्स्य पु० ६७ /७१ (ख) भगवत पु० परस्वास वचन।

निरूक्त के टीकाकार दुर्गाचार्य के अनुसार उक्त मन्त्र का अर्थ यह है– हिरण्यगर्भ ब्रह्मा (ब्रहमणो या हिरण्यगर्भावस्था) सकल प्राणियो की उत्पत्ति के पूर्व स्वयं शरीर धारण करते है वे एक मात्र सृष्टि कर्ता है जो जगत् के सम्बन्ध भूत स्थावरी जडम आदि के ईश्वर है। वे अन्त रिक्ष लोक, द्युलोक और भूलोक धारण करते हैं। इन सभी तत्वों में वे ओत प्रोत होकर वास करते है उन महान प्रजापित कि लिये हम हवि प्रदान करते है।

ब्रह्म पुराण में निम्न उल्लेख प्राप्त होता है–

आदित्य मेल मखिलं त्रै लोक्यं मुनिसन्तमाः।
भवत्यस्माज्जगत्सव्र सदेवासुरमानुषम्।।
रूद्रोपेन्द्र महेन्द्राणा विप्रेन्द्र त्रिदवौकसाम्।।
महाद्युतिमतञ्चैव तेजोऽय सार्वलौकिकम्।।
सर्वात्मा सर्वलौकेशौ दैवदैवः प्रजापतिः।
सूर्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदैव तम्।। (१)

हे मुनिवर त्रिलोक के मूल आदित्य है। इन्हीं से सम्पूर्ण जगत् सभी देवता असुर, मनुष्य, रूद्र उपेन्द्र, महेन्द्र, विपेन्द्र, और तीनों लोको के तीनो देवता समस्त लोको के महा प्रकाशक तेजवान् सर्वात्मा एवं सर्वलोकेश देवाधिदेव प्रजापति उत्पन्न है। ये ही सूर्य तीनों लोको के मूलं हे तथा परम देवता है। सभी देवता इन सूर्य की रश्मियों में निविष्ट हे ये तीन भागों में विभक्त है।

भविष्यों त्तरत्पुराण के कृष्णार्जुन सम्वाद में भगवान् ने कहा है कि –

उदये ब्रहमणोयेतं मध्याहणे तु महेश्वरम्।
अस्तकाले भवेद्विष्णुः त्रिमूर्तिश्चदिवाकरः।। (२)

---

१. ऋ० ७/६२/१

२. ऋ० १/११५/१ ऐ० आ० ३६ अथर्व १३/२/३५ तैत्तिय सं० १/४/४३ तैत्तिरीय ब्रा० २/८/७/३ तै० आ० १/७/६
वाजसनेयी यजु० ७/४२
नि० १२/१६,

सूर्य उदय काल में ब्रह्मा मध्याह मे महेश्वर और अस्त काल में विष्णु रूप है।

"ॐ " हिरण्रूपमुषयों व्युष्टावय. स्थूल मुदिता सूर्यस्य[1]

सूर्य के उदय होने पर उषाकाल मे सूर्य हिरण्यरूप (ब्रह्मास्वरूप) होते है।

सूत सहिता शिवमहात्म्य खण्ड के अनुसार –

'हिरण्यगभै भगवान्ब्रहमा विश्वजगत्पति·।[2]

बृहदेवता मं शौनकाचार्य ने लिखा है कि

भवदूत भविष्यं च जगव्मं स्थावरं च यत्।

अस्यैक सूर्य मैवेकं प्रभव प्रलयं विदुः।

असतश्च सतश्चैव योनिरेषा प्रजपतिः।

तदक्षर चाव्यं च यच्चैतदृ ब्रहम शाश्वतम्।

कृत्वैव हि त्रिधात्मान मेषु लौकेषृ तिष्ठति।

देवान् यथा सर्वान् निवेश्य स्वेषु रश्मिषु।।[3]

भूत, भविष्य, वर्तमान, स्थावर, जगम तथा सत्असत् इन सबके उत्पादन क्षेत्र एक मात्र सूर्य प्रजापति है। सूर्य में ही सभी तत्व सभी भूत सभी जीवन, सभी क्षर अक्षर नाशवान् और अव्यय की मूल सन्ता व्यवस्थित है। केवल ब्रहम सूर्य मे ही सर्वदा संलग्न है। सूर्य की ही रश्मियों में लोक, परलोक, देव, पितर, मानव ओर ब्रहमाण्ड आदि –निवेशित है।

---

१. अथर्व २/३२/१

२. ऋ० ८/२६/१०

३. अमरकोश (स्व० अ०)१६

४. ऋ० १०/१२१/१ वाज० यजु० १३/४
अथर्व ४/२/७ तै० सं० ४/१/८/३
ताण्डप ब्रा० ६/६//१२ निरुक्त १०/२३

इसी प्रकार समम्ब पुराण में वर्णन है।

अनाद्यौ लोकनाथः स विश्वमाली जगत्पतिः।

मित्रत्वे अवस्थितो दैवस्तपस्तेपे नराधिषः।।

अनादि निधनों ब्रहमा नित्यच्चाक्षर एव च।

सृष्टवा प्रजा प्रतीन् सर्वान् सृष्टाश्च विविधा. प्रजाः।

ततः स च सहस्रां शुख्यक्तः पुरूषः स्वयम्।। (४)

आदि अन्तहीन लोकेश्वर बेहमाण्ड के संरक्षक और जगत् के स्वामी सूर्य ने अपने मित्र भाव में अवस्थित होकर तेजताप द्वारा इस चराचर जगत् की रचना की है।

विश्व सृजन के बाद ब्रहमा रूप मे प्रजा की सृष्टि की है। ये अव्यक्त है एव सहस्रों किरणों वाले विराट पुरूष हैं। इन्हीं में सकल सृष्टि है।

---

१. ब्रहमपु० ३१ वाँ अध्याय

२. आदित्य हृदय स्तोत्र

---

१. ऋ० ५/६२२/८

२. सूतसंहिता शिवमाहात्म्य खण्ड अध्याय १३

३. बृहत् देवता १/६१

४. साम्ब पु० ४/१–५

सूर्य - विष्णु

वेद, ब्राहमण, संहिता और पुराणों में सूर्य ही विष्णु है विष्णु द्वादशदित्यों में बारहवां आदित्य है।

आदित्यां: प्रथमं नाम द्वितीयं तु दिवाकरः।

तृतीयं भास्करंः प्रोक्तं चतुर्थ तु प्रभाकरः।।

पञ्चमं तु साहस्रांशुः षष्ठ त्रैलोक्यलोचनः।

सप्तम हरिदश्वश्च अष्टमं च विभाक्सुः।

नवमं दिनकरः प्रोक्तौ दशमं द्वादशात्मकः।

एकादंश त्रयोमूतिर्द्वादश सूर्य एव च।। (१)

ऋ० के एक मन्त्र में भी यही भाव है।

"ॐ" अतौ दैवा अवन्तु नौ यतौ विष्णु विर्चक्रमे पृथिव्याः सप्त धामभिः।। (२)

अर्थात् जिस प्रकार सप्तः किरणों के द्वारा विष्णु पृथिवी की परिक्रमा करते है उसी प्रकार उन्हीं तत्वों द्वारा वे हम सब की रक्षा करें।

वैदिक कोष निघण्टु के अनुसर–

" तीव्र रश्मि द्वारेण सर्वत्र हि आविशतीति विष्णुः।(३)

अपनी तेज ओर तीक्ष्ण रश्मियों द्वारा सर्वत्र फैल ने के कारण सूर्य विष्णु कहे जाते है।

"ॐ इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा निदधेपदम्।

समूहकमस्य पांसुरे।"(४)

विष्णु अपने अदृश्य पाद से पृथिवी द्यौ और अन्तरिक्ष में किरण द्वारा धूल धूसरित विश्व को प्रकाशित करते हैं।

---

१. आदित्य हृदय स्तोत्र

२. ऋ० १/२२/१६

३. निघण्टु ५/११

४. ऋ० १/२२/१७

सूर्य और शिव तथा शैव शक्तियां

"सूर्य शिवो जगन्नाथः सोमः साक्षादुमोः।[१] स्वयम् आदित्यं भास्करं भानुं रवि दैव दिवाकरम्।
उमां प्रभां तथा प्रज्ञां सन्ध्यां सावित्री मेव च।
और
" रूद्रो वैवस्वतः साक्षात्।"[२]

सूर्य शिव जगन्नाथ और सोम स्वयं साक्षात् उमा है। आदित्य भास्कर भानु रवि तथा दिवाकर देव है। इनकी शाक्तियॉ उमा प्रभा प्रज्ञासन्ध्या तथा सावित्री है।

इस प्रकार यह सम्यक् प्रतीत होता है कि प्राचीन भारतीय त्रैतवाद एक मूलक है । एकेश्वर बाद ही त्रैतवाद में परिणत हुआ है । एकेश्वर बाद का मूल आदित्य है। भरद्वाज स्मृति का निम्न श्लोक इस सन्दर्भ में विशेष प्रामाणिक है–
" सविता पश्चातात् सविता पुरस्तात्
सवितोत्तरातात् सविता अधरात्तात्
सविता नूः सुवतुं सर्वतातिः।
सविता नांरासतां दीर्घमायुः। [३]
सविता देवता मेरे आगे पीछे ऊपर नीचे सर्वत्र सविता ही सविता है। सविता हमें सभी प्रकार सुख देते है ।–
हमारी आयु को भी बढ़ाते हैं ।
गायत्री मन्त्र सविता उपासना का तत्व है सर्वज्ञानी जनों से समादृत हेयह चारोवेद तथा समस्त ज्ञान विज्ञान ओर प्रज्ञा को सार है। ब्रहम और जीवात्मा की एकता का यथार्थ बोधक है। वेद विहितं समस्त उपासना कर्मो के प्रारम्भ में गायत्री जप, सूर्यार्ध्य और ऊँकर का उच्चारण करने की मान्यता हे। व्यास, भरद्वाज, पराशर, वसिष्ठ, मार्कण्डेय, योगी याज्ञवल्क्य एवं अन्य अनेक महान महर्षियों ने ऐसा माना कि गायत्री जप से पाप उपपाप आदि मलो से जापक की शुद्धि होती है।
ईशोपनिषद् का वचन है कि

"योऽसावादित्ये पुरूष : सोऽसावहम्।" [१]

अर्थात् जो वह पुरूष आदित्यमें है वही पुरूष मै हूँ । उस परमात्म पुरूष की आत्मा भी मै हूँ। इसी का शुद्ध आत्म तेज रश्मियों के अणुओं द्वारा सूर्यमण्डल से सम्पके करते हैं। जगत् में रहकर भी शुद्ध आत्म–धाम में जाने के लिये सूर्य रश्मि ही प्रधान योग द्वार हे वाहक है। यूरोपियन साधक ' पाइथागोरस' ने भी माना हे कि यह एक तेज धारक पदार्थ है। इसी में से होकर आत्मज्योति पृथिवी पर उतरती है।

सूर्य साधना और उपासना

सूत सहिता में भगवान् महेश्वर शिव का वचन है कि

"आदित्ये परिज्ञातं वयं श्रीमद्युपास्म है।

सवितृत्र्याः कथितो हयर्थः संग्रहेण मयादरात्।।

नीलग्रीवं विरूपाक्षं साम्बमूर्ति च लक्षितमृ।। [१]

नीलग्रीवं शिव जी का कथन है कि आदरपूर्वक मैं सावित्री मन्त्र की जिसे या गायत्री धीमहि' संज्ञा है उपासना करता हूँ।

भविष्योत्तर पुराण में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो सूर्योपास्न का उपदेश दिया था वही ' आदित्य हृदय' है। श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है–

"रूद्रादिदेवतैः सर्वैः' पृष्टेन कथितं मया।

वक्ष्येऽहं सूर्य विन्यासं श्रुणु पाण्डव यत्नतः। [२]

महाभारत के स्वर्गारोहण पर्व में उल्लेख है कि भगवान् श्रीकृष्ण इहलीला समाप्त कर नारायण में ही विलीन हो गये।–

"यः सः नारायणे नाम देवदेवः सनातन।

तस्यांशों वासुदेवस्तु कर्मणोऽन्ते विवेश है।। [३]

---

१. लिगं पु० उत्तर अध्याय १६

२. वायु पु० अध्याय ५३

३. भरद्वाज स्मृति ७६ वाँ श्लोक

वृहद्देवता के अनुसार – " विष्णुरादित्यात्मा"[1]
और वायुपुराण के अनुसार असुरों के देवता पहले सूर्य और चन्द्रमाथे। इन्होने अपने अपने सम्प्रदायानुसार पृथक पृथक राज्य बसाया इनमें अधिकांश सौर थे। राम रावण युद्ध में जब श्रीराम विशेषश्रान्त चिन्तित थे तब ऋषिवर अमस्य ने उन्हें सूर्यस्तोत्र का उपदेश दिया था। श्रीराम ने पूर्वाभिमुख होकर पवित्र हो तीनवार आचमन कर उस स्तोत्र का पाठ कर महाबल प्राप्त कर शत्रु शिरच्छेद किया। [3]

द्वितीय जीवित गुप्त के दशम् शती का एक शिलालेख कलकत्ता के संग्रहालय में है। इसका विवरण कनिंधम महोदय ने (कनिंधम आर कियो लाजिकल रिषेर्टस् वायलयूम १६/६५ में) लिखा है कि भास्कर के अंग से प्रादुर्भत प्रकाशमान 'मग' ब्राहमण' शाकद्वीप' से कृष्ण भगवान् की अनुमति से उनके पुत्र भगवान् साम्ब द्वारा लाये गये । इन दिनों विश्व में ये ही लोग सूर्य साधना के विशेषज्ञ थे। यह बात भविष्य पु० और साम्ब पु० में विस्तृत रूप से वर्णित है।

ऊँ गणेश ऋ० छिन्धि वरेणयम् हूँ फटू।

ग्रहयामल है ग्रन्थ में भी इस तथ्य का उल्लेख है। इस तथ्य से प्रमाणित होता है, कि भारत में भी सूर्य पूजा का प्रचल न अनादि काल से चला आ रहा है। किन्तु विशेषज्ञों की कमी थी । बेविलोन के प्राचीन वृन्तग्रन्थ इतना माइथ में वर्णन है कि ईगल (गरूड़) पक्षी पर बैठकर कोई राजा तृतीय स्वर्ग (third Heaven of Arow) मे जाते हुए जीव चिकित्सक औषधि ले गया था। १६७३ ई के अगस्त मे विख्यात अमेरिकन पत्रिका ' न्यु सायन्टिस्ट अगस्त १६७३ में प्रख्यात आणविक जीव विज्ञानी डॉ फ्रांसिस डॉ फिक ओर डॉ लेसली ने कहा है कि इस पृथिवी पर सहस्रों वर्ष तक कोई जीव नही था। यहाँ तक कि जीवन की सम्भावना भी नही थी। महाकाश के सूर्याश्रय में स्थित जीवन स्फुलिंग इस युग की बन्ध्या पृथिवी पर (सूर्य के आश्रय के प्राणि सभ्यता से छट कर आया है। मिफ्रिक और मि० उरूगेल के हस्ताक्ष्रयुक्त विस्तृत वक्तत्य में यह श्री कहा गया है कि –

छाया पथ से अन्यत्र अवश्य ही किसी किसी सभ्यता का विकास था।

छाया पथ १३०० करोड़ वर्ष का है। इस पृथिवी के प्राणियों के उद्भवन का काल चार सौ करोड़ वर्ष का है। इस प्रकार नौ सौ करोड़ वर्षे का अन्तर है।

उपर्युक्त विवरण का निष्कर्ष यह है कि सूर्य की शक्ति से सकल सृष्टि हुई है। इनकी महिमा अनन्त है और इनकी पूजा अर्चा अनादि काल से विश्व भर मे प्रचलित है । भारतवर्ष में ये प्राचीन काल से ही प्रत्यक्ष देवता माने जाते रहे है ओर अर्चित भी हो रहे है।

---

१. सूतसंहिता (वैखानस)अ० छ०

२. भविष्योत्तर पु० कल्याण सूर्याक में वर्णित पृ० १६७

३. महा भारत पु० स्वर्गा रोहण पर्व ५/२५

---

१. बृहद् देवता अध्याय १५६

२. वायु पुराण ६८ वाँ अध्याय १२ वाँ श्लोक

३. वाल्मीकि रामायर्ण युद्ध काण्ड अध्याय १०७

अध्याय ६

पञ्च लोक पाल देवतागण

पञ्च लोक पाल देवतागण

१. श्री गणेश जी

२. श्री दुर्गा जी

३. वायु देवता

४. आकाश देवता

५. अश्विनी कुमार देवता

पञ्च लोक पाल

नवग्रह मण्डल में नवग्रहों उनके अधिदेवताओं प्रत्यधि देवताओं के साथ साथ श्री गणेश जी, श्री दुर्गा देवी, वायु, आकाश और अश्विनी कुमार आदि पञ्चलोक पालों का भी आवाहन प्रतिष्ठा पूर्वक पूजन किया जाता है। इनका संक्षिप्त चित्रण किया जा रहा है।

१. श्री गणेश जी

श्रीगणेश देवता परब्रह्मरूप हैं। किसी भी पूजन के पूर्व गणेश की पूजा की जाती है। परिणमस्वरूप पूजक निर्विध्नतापूर्वक पूजा का फल प्राप्त कर लेता है ओर गणेश पूजन से ही सकल विध्न विनष्ट हो जाते है। ये भगवान् सदशिव तथा माता पार्वती के पुत्र है। प्रत्येक कल्प में गणेश रूप में परब्रहम पार्वती जी की गोद मे आकर विराजित होते है। [१] इनके नमस्कार करने का मन्त्र निम्न हे।–

ऊँ एकदन्तें गज मुखशुण्डालं मोदकप्रियम्।

सूर्यकर्ण नमस्यामि शिरासारबुवर स्थितम्।। [२]

२. श्री दुर्गा देवी

पराम्बा विश्व कल्याणार्थ कभी गौरी रूप में आती है कभी दुर्गारूप में। ब्रहमा जी की प्रार्थना पर मधु–कैटभ के उद्धार के लिये फाल्गुनशुक्ला चतुर्दशी को महाकाली रूप में वे अवतीर्ण हुई। [१]

---

१. ब्रह्मा वैवर्त्त पु० २/८

२. श्रीतत्वनिधि

तथा रम्भापुत्र महिषासुर के उद्धार के लिये महालक्ष्मी रूप में अवतीर्ण हुई। [२]
और शुम्भ निशुम्भ के उद्धार के लिये महासरस्वती रूप में अवतीर्ण हुई। [३]
३. आदि शक्ति को दुर्गा इसलिये कहा जाता है कि ये अपने भक्तों को दुर्गाति को नष्ट कर डालती है। दुर्गमासुर के मारने के कारण आदि शक्ति का दुर्गानाम विख्यात हो गया। पञ्च पाण्डव भी दुर्गति में पड़ गये थें माता श्री दुर्गा जी ने उनका अज्ञात वास सफलीभूत किया और विजय श्री भी प्रदान किया। [४]

वायु देवता

वायु देवता की उत्पति विराट पुरूष के प्राण से हुई है। [५]

प्राणियों मे जो प्राण है उसके अधिएष्ठातृ देवता वायु ही है। एक रूप से वे अपने लोक में मूर्तिमानरूप से निवास करते है तथा वायव्य कोण के अधिाष्ठाता देवता के रूप में अष्टलोक पालों – पञ्चलोकपालों एवं दस दिक्पालों में परिणत होते हैदूसरे रूप में वे प्रवहमान वायु और उन्चास मरूतों के रूप में विभक्त है ओर आवह प्रवह आदि सप्त स्कन्धों के रूप में अन्तरिक्ष से लेकर पाताल तक तभी सभी प्राणिवर्ग में व्याप्त होते हैं।

प्राणियों के शरीर में वायु देव प्राण अपान नाग धनञ्जय आदि दस रूपों में स्थित रहते है और उनके जीवन तथा कार्य कलापों को संचालन करते है। इनका हमारे जवीन में बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। हरिवंश पुराण का कथन है कि –

---

१. शिव पुराण उमा संहिता अ० ४३
२. शिव पुराण उमा संहिता अ० ४६
३. शिव पुराण उमा संहिता अ० ४७
४. महाभा० विराट्पर्व ६ भीष्म पर्व २३
५. ऋ० १०/९०/१३

प्राणौ यः सर्वभूतानां देहे तिष्ठति पञ्चधा[१] शरीर के पञ्चप्राणो में देवभाव वायु देवता से ही प्राप्त होता है। वेद के अनुसार वायु देवता मे अमरता की विधि स्थापति है। [२] अधभोतिक दृष्टि से विचार किया जाय तो प्रतीत होता है कि यदि साँस द्वारा वायु को ग्रहणन किया जाय तो मृत्यु सुनिश्चित है। इस तरह हम प्रत्येक क्षण वायु के द्वारा अमरत्व प्राप्त करते रहते है। वायु देवता ने हमें सम्पूर्ण यजुर्वेद और वायु पुराण प्रदान कर आध्यात्मिक लाभ प्रदान किया है।

वायु देवता बल के अंशी है। ससार में जितने भी बल है सबका केन्द्र वे ही है। एतदर्थ महाभारत में वर्णन है कि वायु के समान किसी का बल नही है। इन्द्र, अग्नि, यम, कुबेर तथा वरूण आदि देवता बल में वायु की समानता नही कर सकते है। चेष्टा की शक्ति और जीवन दाता वायु देवता ही है।[३]

इनके पुत्र हनुमान और भीम है। इनका ध्यान निम्न है

धावद्धरिणमारूढ़ं द्विभुजं ध्वजधरिणम्।
वरदानकरं धूमवर्ण वायुमहं भजे ।।[१]

४. आकाश देवता

आकाश में न गन्ध है न रस है न रूप है और न ही स्पर्श है। अतः ये निराकार निर्विकार ब्रह्म का प्रतिरूप है। वेद ने 'त्वं ब्रह्मा कहा कर आकाश की यह प्रतिरूपता व्यक्त की है। सूर्य आदिग्रह नक्षत्र इसी में प्रदीप्त होते है। अतः आकाश का नाम अन्वर्थक है। आकाश देवता पञ्चलोक पालों में आते है। यहाँ इनकी पूजा होती है। वेद का कथन है कि आकाश की उत्पति विराट् पुरूष की नाभि से हुई है। [२]

---

१. भविष्य पर्व ६२/१२

२. ऋ० १/१६७/३

३. महाभ० शान्ति पर्व १५६/६–११

२. भगवान् ने आकाश को शब्द तन्मात्रा से उत्पन्न किया था। अतः इसमें केवल एक गुण शब्द है।[3] यह शब्द भी वह स्थूल शब्द नही है जिसे हम कानो से श्रवण करते है। इस शब्द का वाहक तो वायु है। कदम्ब मुकुल न्याय तथा वीचितरग न्याय से वायु की तरगों से आते हुए वैखरी शब्दों को हम सुन पाते है, इससे सूक्ष्म शब्दों को हमारे कान नही सुन सकते हैं। विद्युत तंरगों पर जो शब्द चलता है उससे भी सूक्ष्म शब्द आकाश का होता हैं। इसी दृष्टि से आकाश को निराकार और निर्विकार की तरह निर्गुण भी कह सकते है।

आकाश की गणना पञ्चमहा भूतो में सबसे प्रथम है। आकाश के अधि ाष्ठातृ देवता की पूजा पञ्च लोकपालो में की जाती है। गृह निर्माण के समय गृह क बाहरी भाग में आकाश देवता की पूजा की जाती है।[१]
भगवान् शंकर की अष्ट मूतियों में इनकी गणना है।[२]
इनका ध्यान स्वरूप निम्न है–

ध्यायामि गगनं नीलं नीलाम्बरधरं विभुम्।
चन्द्रार्कहस्तं द्विभुजं सर्वाभरण भूषितम्।। [३]

५. अश्विनी कुमार

भगवान् सूर्य के द्वारा अश्वी के रूप मे छिपी हुई संज्ञा से युग्म सन्तानें हुई। इनमें एक का नाम 'दस्त्र और दूसरे का नाम ' नासत्य' है। माता के नाम पर इनका संयुक्त नाम अश्विनी कुमार है। [४]

इनका सौन्दर्य बहुतः आकर्षक हैं [५]
इनके देह से सुनहरी ज्योति छिटकती रहती है। [६]

ये दोनों देवता जितने सुन्दर है उतने ही सुन्दर उनके पालन कर्म है। स्मरणमात्रेण ही ये उपासकों के पास पहुच जाते है और उनके संकट को शीघ्र ही दूर कर देते है। [७]

---

१. श्री तत्व निधि

२. ऋ० १०/६०/१३ यजु० ३१/१३

३. मत्स्य पु० ३/२३

ये देवताओं के वैद्य है। चिकित्सा प्राणियों पर अनुकम्पा करने के लिये ही बनायी गयी है

'अथ भूतदयां प्रति'।[1]

अश्विनौ ने चिकित्सा द्वारा बहुत लोगो का कलयाण किया। परवृज नामक ऋषि लॅगड़ें हो गये थे उन्होने उन्हें स्वस्थ (भला) कर दिया। ऋजाश्व ऋषि अन्धे हो गये थे उन्होने उन्हें आँखे प्रदान की।[2]

च्यवन ऋषि जर्जर वृद्ध हो चुके थें। अश्विनी कुमारों ने उन्हें युवाअवस्था दी और अपने समान सुन्दर कर दिया। [3]

ऋग्वेददादि शास्त्रों में इनके उपकारों की लम्बी सूची प्रस्तुत की गयी है।

इनका रथा स्वर्णिम है। [4]

इसमें तीन चक्रहै। और सारथि के बैठने का स्थान भी तीन खण्डों वाला है। मानव जन जैसे क्षणमात्र में विश्व का चक्कर लगा लेता हैं तदवत् इनका रथ भी अल्पकाल में विश्व का भ्रमण कर लेता हैं।[5]

इनका ध्यान निम्न है।

उभौ च सौपवीतौ चूडामुकट धरिणौ।

६. फुल्लरक्तो त्पलाक्षौ च पीत पीतस्रग्वस्त्रवर्णकौ।।
नासत्यदस्त्र नामानाविरवनो भिषजौ स्मृतौ।। [6]

---

१. मत्स्य पुराण २५३ /४
२. मत्स्य पुराण २६५ /३६
३. श्रीतत्व निधि
४. महाभा० अनुशसन पर्व १५०/१७–१८
५. ऋ० ६/६२/५
६. ऋ० ८/८/२
७. ऋ० १०/११२/३

दस दिक्पाल देवता

१. पूर्व दिशा का स्वामी – इन्द्र।
२. आग्नेय दिशा का स्वामी – अग्नि।
३. दक्षिण दिशा का स्वामी – यम
४. नैर्ऋत्व दिशा का स्वामी – निर्ऋति
५. पश्चिम दिशा का स्वामी– वरूण
६. वायव्य दिशा का स्वामी – वायु
७. उत्तर दिशा का स्वामी – कुबेर
८. ईशान दिशा का स्वामी – ईश्वर (शिव)
६. ऊर्ध्व दिशा का स्वामी – ब्रह्मा
१०. अधः दिशा का स्वामी – अनन्त

दस दिक्पाल देवता

नवग्रहमण्डल में दस दिक्पालों का भी पूजान किया जाता है। पूर्व, आग्नेष दक्षिण, नै ऋृत्य पश्चिम, वायव्य उत्तर ईशान ऊर्ध्व तथा अधः क्रमशः से दस दिशाये है। प्रत्येक दिशा के अधिपति के रूप में एक–एक देवता, इस प्रकार दसों दिशाओं के दस अधिष्ठाता देवता ही दश दिक्पाल देवता कहे जाते है। जैसे पूर्व दिशा के दिकपाल इनद्र देवता है। इसी प्रकार अग्नि, यम, निर्ऋति, वरूण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा, और अनन्त भी दिक्पाल हैं। इनमें से इन्द्र, अग्नि, यम, वायु, ईशान (शिव), एव ब्रहमा का सम्पक् स्वरूप निरूपण हुआ है। शेष का यहॉ विवेचन किया जा रहा है।

---

१. चरक संहिता (देवताडं)पृ० ३२४
२. ऋ० १/११२/८
३. ऋ० १/११६/२५
४. ऋ० ४/४४/५
५. ऋ० १/११८/१
६. श्री तत्व निधि

निर्ऋति

निर्ऋति देवता नैर्ऋत्य कोण के स्वामी हैं वे महान् पुरूष सभी राक्षसों के अधिपति और परम पराक्रमी है।[1]

इनका शरीर गाढे काजल की भॉति काला तथा बहुत विशाल है वे पीले आभूषणों से भूषित और हाथ मे खडग लिये है। राक्षसों कासमूह इन्हें सर्वतः आवेष्टित किये रहता है। ये पाल की पर चलते ह[2] इनका तेज बहुत ही प्रखर है।[3]

दिक्पाल निर्ऋति के लोक में जो राक्षस निवास करते है। वे जातिमात्र के राक्षस है। आचरण में वैपूर्ण रूप से पुष्पात्मा है वे किसी से द्रोह नही करते है। श्रुति औरी स्मृति के मार्ग पर चलते है। वे ऐसा खान पान नही करते जिनका शास्त्रो में विधान नहीं है। वे पुण्य का ही अनुष्ठान करते है। जब वे ब्राहमण आदि पूज्यों से वार्तालाप करते है तब उनके अंगों में विशेष नम्रता आ जाती है। प्रति दिन वे तीर्थव्रत करते है ओर नित्य ही देवी आर्चन करते है। इन्हेंसभी प्राकर के भोग सुलभ है।[1] निर्ऋति देवता भगवदीय जनों के हित के लिये पृथिवी पर आ जाते है वे अर्जुन के जन्म महोत्सव में पधारे थे।[2] मृत बालक की खोज करते समय अर्जुन निऋति देव के लोक में भी गये थें।[3]

वरूण देवता

वरूण देवता की द्वादश आदित्यों में भी गणना होती है।[4]

वेद ने इन्हें प्रकृति के नियमों का व्यवस्थापक माना है। ऐसा वर्णन आताहै कि वरूण देवता के विधान के कारण ही द्युलोंक ओर पृथिवी लोक पृथक–पृथक है।[5]

वे आदित्य रूप से दिन में तो प्रकाश देते ही हे रात्रि में भी चन्द्र एवं तारों को भी प्रकाशित कर प्रकाश देते हैं इस प्रकार जगत् के प्राणियों को अन्धकार से बचाते है।

पृथिवी पर और अन्तरिक्ष में जितने भी जलरूप है सभी के स्वामी वरूण देवता हैं।

---

१. मत्स्य पु० २६६/२२–२३

२. मत्स्य पु० १६१/१५–१६

३. शुक्लयजुर्वेद १२/६३

देवों ने इन्हे जलेश्रवर पद पर अभिषिक्त किया था। [१]

यही बात अथर्ववेद में वरूण देवता के लिये 'अपामधिपातिः शब्द का प्रयोग कर स्पष्ट की गयी है।[२]

वर्ण- वरूण देवता का वर्ण स्वर्णिम है।[३]

वाहन - वरूण देवता का वाहन 'मकर' है। [४]

रथ भी इनका वाहन है यह रथ सूर्य की तरह चमकता रहता है। [५]

इस रथ को घोड़े खीचते है। [६]

मत्स्यपुराण में वर्णन है कि सूर्य देवता का रथ वरूण देवता के रथ के लक्षणो से साभ्यता रखता है।[७]

आयुध - वरूण देव का प्रधान आयुधपाश है जिसे नाग पाश और विश्वजित भी कहते है । [८]

वरूण देवता अशनि(वज्र) का भी प्रयोग करते है। [९]

प्रसिद्ध गाण्डीव धनुष तथा अक्षय तूणीर भी इनके आयुध है। इन दोनें आयुधों को कुछ दिनों के लिय अग्नि देवता के कहने से इन्होंने अर्जुन को प्रदान किया था। तथा स्वर्गारोहण के पूर्व अर्जुन ने इस गाण्डीव धनुष और अक्षय तूणीर को वरूण देवता को पुनः वापस कर दिया था।[१०]

परिवार - माता अदिति ओर पिता कश्यप हैं। इनकी ज्येष्ठ पत्नी का नाम 'देवी' है। देवी से 'बल' नामक एक पुत्र हुआ और 'सुरा' नाम की एक कन्या भी हुई। [१]

जनकराजा के शास्त्रार्थी पण्डित 'बन्दी' वरूण देवता के ही पुत्र हैं इसे बन्दी ने सवयं स्वीकार किया है। [२]

इनकी दूसरी पत्नी का नाम 'पर्णाशा' है जो 'शीततोया' महानदी पर्णाशाकी अधिष्ठात्री देवी है जिससे शतायुघ' नाम को एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। [३]

---

१. स्कन्द पु० काशी खण्ड १२/१–११

२. महाभा० आदिपर्ल १२२/६८

३. भाग० पु० १०/८६/४४

४. महा भा० आदिपर्व ६/५/१५,

५. ऋ० ८/४२/१

६. ऋ० १/२४/१०,

तृतीया पत्नी का नाम 'चर्षणी' है जिससे 'भृगु' जी ने जन्म ग्रहण किया।[४]

बाल्यावस्था में ही भृगु आत्मज्ञान से दीप्त हुए। वरूण देवता ने इन्हें आत्मज्ञान का उपदेश दिया था।[५]

कुबेर

इतिहास पुराणों के अनुसार राजाधिराज धनाध्यक्ष कुबेर समस्त यक्षों, गुहयकों एव किन्नरोइन तीन देवयोनियों के अधिपति कहे गये है। वे नवनिधियों पद्म, महापभ, शङख, मकरकच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और वर्चस्व् के स्वामी है।

एक ही निधि अनन्त वैभवों की प्रदाता मानी गयी है ओर धनाध्यक्ष कुबेर तो गुप्त प्रकट संसार के समस्त वैभवों के स्वामी ओर अधिष्ठछातृ देवता हैं। जैसे देवो के राजा 'इन्द्र है गुरू बृहस्पति' हैं, उसी प्रकार कुबेर सकल ब्रहमाण्डो के धनाधिपति होते हुए भी प्रधान रूप से देवताओं के धनाध्यक्ष के रूप में विषेष प्रसिद्ध हैं। महाभारत में वर्णन है कि महाराज कबेर के साथ भार्गव शुक्र तथा धनिष्ठा नक्षत्र भी दृष्टि गोचर होते हैं। इन तीनों की पूर्ण कृपा हुए बिना अनन्त वैभव वा गुप्त निधि की प्राप्ति नही होती हैं। इसलिये वैभव आदि की प्राप्ति के लिये तीनों की संयुक्त उपासना का विधान विहित है।

---

१. महाभारत शल्यपर्व ४७/६—१०
   ऋ० ७/६५/४
२. अथर्ववेद ५/२४/४
३. श्रीतत्वनिधि
४. अग्नि पु० ५६/२३—२४
५. ऋ० १/१२२/५
६. ऋ० ५/६३/१
७. मत्स्य पु० १२५/४१
८. अग्नि पु० ५६/२३
९. महाभ० सभा पर्व २२६/३३
१०. महाभ० विराट पर्व ४३/६

कुबेर देवता के पिता विश्रवा' एवं माता इडविडा(इलबिला) हैं ।इनकी सौतेली माता का नाम के शिनी (कैकसी) है। इससे रावण, कुम्भकर्ण और भक्तराज विभीषण हुए है।

इस तरह रावण कुम्भकर्ण और भक्त राज विभीषण इनके सौतेले भ्राता थे। ये भगवान् शंकर के सखा है। [२]

इनकी पत्नी का नाम भद्रा है। [३]

पुत्र का नाम 'नल कूबर' और मणिग्रीव है। कैलासपर स्थित अलका पुरी इनकी राजधानी है। [४]

ये नौ निधियों पदम, महापदम, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील ओर खर्व के स्वामी हे। ये खडं त्रिशूल और गदा धरण करते है। [१]
इनके पास यक्षों, राक्षसो और गुहयको की सेना रहती हैं ।इनका वाहन पुष्पक विमान है। पक्षों का अधीश्वर बनने के लिये कुबेर न नर्मदा ओर काबेरी के तट पर शतदिव्य वर्षो तक घोर तपस्या की, इससे प्रसन्न होकर महादेव ने इन्हें यक्षों का अधीश्वर होने का वरदान दिया था।[२] राजराज कुबेर ने जहाँ तपस्या की थी उस स्थान का नाम 'कुबेर तीर्थ ' पड़ गया। वहाँ उनको अनके वर प्राप्त हुए थे, जैसे–

१. रूद्र के साथ मित्रता।

२ धन का स्वामित्व।

३. लोकपालकत्व।

४. नलकूबर नाम का पुत्र

वर प्राप्त होते ही वहाँ पर इनके पास धन और निधियाँ पहुँच गयी । वहीं आकर मरूद गणों ने कुबेर का अभिषेक किया, पुष्पक विमान, प्रदान किया और पक्षों का राजा भी बना दिया। [३]
इनका वाहन नर हैं। [४]

---

१. महाभा० आदि पर्व ६६/५२

२. महा भा० वन पर्व १३४/११

३. महा भा० द्रोणपर्व ६२/४४

४. भाग पु० ६/४

५. तैत्तिरोपनिषद् ३ बल्ली

इनका ध्यान निम्न हैं –

मनुजवाहय विमान वर स्थित गरूडरत्न निभं निधिनाथकम्।
शिवसखं मुकुटादिविभूषित वरगदे दधत्रं भज तुन्दिलम्। [१]

इनके त्रिविध मन्त्र निम्न है–

१. "ॐ वैश्रवणाय स्वाहा।" (अष्टाक्षर मन्त्र)
२. "ॐ श्री ऊँ हीं श्री ही क्लीं श्री कली विश्वेश्वराय नमः। (षोडशाक्षरमन्त्र)
३. ऊँ यक्षाय कुबेराय वैश्रवणाय धनधान्याधिपतये धन धान्यसमृद्धिं मे देहिदापथ्स स्वाहा।" (पञ्चत्रिंशदाक्षर मन्त्र)

अनन्त देवता

भगवान् की एक मूर्ति गुणातीत है जिसे वासुदेव कहा जाता है तथा दूसरी तामसी है जिसे अनन्त या शेष कहते हैं। भागवतपु० में कहा गया हैं कि भगवान् की तामसी नित्यकला'अनन्त' नाम से विख्यात हैं। [२]

ये अनादि और अद्वय तत्व है। [३]

ये आदिदेव हे।

---

१. भाग पु० ४/१/३७
२. भाग पु० ४/११/३३ उत्तरमेघदूत १४
३. महाभ० आदिपर्व १६८ /६
४. मत्स्य पु० १२१ /३

---

१. मत्स्य पु० ६७/१५
२. मत्स्य पु० १८६/६–१०,
३. महाभारत शल्यपर्व ४७/२६–३१
४. मत्स्य पु० १७४/१६–१७

इनके वीक्षण मात्र से प्रकृति में गति आ जाती है। और सत्व रज तथातम ये त्रिविध गुण अपने अपने कार्य करने प्रारम्भ कर देते हैं। इस प्रकार जगद् की उत्पति स्थिति और लय का कार्य क्रम चल पडता हैं। [१]

इनके पराक्रम प्रभाव और गुण अनन्त है ये रसातल के मूल में रहते हैं । वस्तुत ये अपनी महिमा में स्थित है। सम्पूर्ण लोकों की स्थिति के लिये ये ब्रह्मण्ड को अपने मस्तक पर धारण करते हैं। [२]

२. देवता असुर नाग, सिद्ध, गन्घर्व, विद्याधर, मुनिगण, अनन्त, भगवान् ,का ध्यान करते रहते है। इनकी आँखे प्रेम के मद से आनन्दित और विहवल बनी रहती है। इनके उपदेशामृत का पान कर इनके पार्षद ओर देवताओं का स्वरूप आनन्द से संतृप्त रहता है। ये शरीर पर पीताम्बर, कान में कुण्डल और गले में वैजयन्ती की माला धारण किये रहते हैं। इनका एक हाथ हल की मूठ पर पडा रहता है। [३]

द्रष्टा, दृश्य ओर दर्शन यह त्रिपुटी ही संसार है। भगवान् अनन्त द्रष्टा ओर दृश्य को आकृष्ट कर एक बना देते है औरइस प्रकार इस त्रिपुटी को मिटा देते हैं। अतः उन्हें 'संकर्षण ' भी कहा जाता हैं। इस प्रकार अमर्ष को रोकर सम्पूर्ण लोगो का कल्याण किया करते है। [४]

---

१. श्री तत्वनिधि
२. भागवत पुराण ५/२५/१
३. भगवत पुराण ५/२५/८

---

१. भागव पु० ५/२५/६
२. भाग पु० ५/२५/१३
३. भाग पु० ५/२५/७
४. भाग पु० ५/२५/६

कोई पीडित या पतित व्यक्ति इनके नाम का अनायास ही उच्चारण कर लेता है तो इतना पुण्यात्मा बन जाता है कि वह दूसरे पुरूषों के भी पाप–ताप को नष्ट कर डालता है। [१]

ये दसवें दिक्पाल हैं।

---

१. श्रीमत् भागवत् पु० ५/२५/११.

अध्याय १०

गणदेवता

गणदेवता

गणदेवता

कतिपय देवता ऐसे होते है जो सामूहिक रूपेण एक ही साथ यज्ञों में पहुॅच कर हविर्भोग ग्रहण करते है। साथ ही अन्य पूजा उपासनाओं में भी सामूहिक रूप से पूजित एवं उपासित होते है।

अपने अपने लोको में भी वे सामूहिक रूप से निवास करते है और उनका सदा कही भी एक ही साथ आवागमन, उठना बैठना होता हैं। इसमें उनका परस्पर प्रेम, स्नेह भाव ओर आन्तरिक सौहार्द ही मूल कारण होता हैं। न उनमे मतभेद उत्पन्न होता है न वे विधटत होते है औन न कभी अपने समूह से कही अलग होकर स्थित रहते है। इन देवो की पारस्परिक सौहार्द भावना को वेदों मे 'संववन, संवदन' आदि नामों से अभिहित किया गया है। जिनमें सात्विक प्रेम की ही निरन्तर अभिवृद्धि मूल तत्व होता हैं। जहॉ किसी गृह, परिवार, जनपद, राष्ट्र, आदि में विघटन प्रारम्भ होता है, वहॉ इन देवताओं की आराधना ओर संवनन[१] सूक्त का जप, हवन, पाठ, का प्रयत्न किया जाता हैं। यह विशेषताया विश्व शान्ति और विश्वबन्धुत्व की भावना के लिये महान उपयोगी होता है।

इस प्रकार के देवताओं की कई कोटियाँ है। विभिन्न कोशों के अनुसार इनमें आदित्य, वसुगण, रूद्रगण, विश्वेदेवगण, साध्य, तुषित, आभास्वर, महाराजिक और मरूदगण आदि विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। द्वादश आदित्यों, एकादश रूद्रगणों, तथा अष्टवसुओं की तैतीस देवताओं में गणना है। यहाँ इनकी सक्षेपण चित्रण हो रहा है–

एकादश रूद्र

भगवान् रूद्र की वेदो में अपार महिमा है संहिता आदि में जहॉ जहॉ रूद्र पद प्रयुक्त है आचार्य सायण ने –

'रूदस्य परमेश्वरस्य रूद्र : परमेश्वरः जगत्स्रष्टा रूद्र :
आदि कहकर उन्हें परमात्मा ही माना है।'रूद्राष्टाध्यायी' 'शतरूद्रिय' आदि तो भगवान् रूद्र की महिमा में ही अनवरत निरत हैं। श्वेताश्वर, माण्उक्य, कष्रूद्र, रूद्रहृदय, रूद्राक्ष जाबाल, भस्मजाबाल, पाशुपतब्रहम, योगतत्व तथा निरालम्ब आदि अधिकांश उपनिषदें एकस्वर से रूद्र को ही विश्वाधिपतिः तथा महेश्वर बताती हैं भगवान् रूद्र के शिव महादेव, शकंर, शम्भु, भव शर्व महेउग्र आदि नाम वेदादि शास्त्रों में अनेकशः महिमा मण्डित हुए है।

वैदिक संहिताओं में इन्हे कोटि रूद्रों असंख्य रूद्रों के रूप में विवर्तित कर यह भी वर्णित हे कि ये मूलतः एक ही है और सम्पूर्ण विश्व में सभी रूपों में व्याप्त है। [१]

शिवपुराण का आधा से भाग रूद्रसंहिता शतरूद्रसंहिता ओर कोटिरूद्र संहिता आदि नामों से भगवान रूद्र की ही महिमा का ही ज्ञान कराता हैं । ये मूलतः तो है एक पुनरपित ये ग्यारह रूपों में विभक्त दिखाये गये है। इन ग्यार हरूद्रो के साथ ग्यारह रूद्राणियो का भी वर्णन प्रायःसर्वत्र उपलब्ध होता हैं इनके नामों में थोड़ा थोड़ा अन्तर है।

---

१. ऋ० १०/१६६

---

१. एक ढव रूद्रौ न द्वितीयय तस्यु·।
तै० स० १/८/६/१
एकों हि रूद्रो न द्वितीयाय तस्थुः।
श्वेता० उप० ३/२०
एको रूद्रो न द्वितीयाय तस्मै० अथर्वशिरस्
असंख्याताः सहस्राणि ये रूद्रा अधिभूम्याम् यजु० १६/५४

श्रीमद् भागवत् पु० में ये नाम निम्नलिखित है।–

रूद्र, मन्यु, मन, महिनस, महान, शिव, ऋतध्वज, उग्ररेता, भव, काल, बामदेव, ओर धृतव्रत।

रूद्राणियों

धी वृन्ति, उशना, उमा, नियुत् सर्पि इला, अम्बिका, इरावती, सुधा और दीक्षा।

मूलतः 'रूद्र शब्द की व्युत्पत्ति में निरूक्तकार से लेकर सभी व्याख्याताओं ने इस शब्द को रूद्र धातु से निष्पन्न माना हैं। 'रूद्र का रोदन' भी वेदो में विस्तार से निरूपित है तदनुसार ही सभी बालक एवं जीव उत्पन्न होते ही रहते है। भगवान रूद्र के अश्रुविन्दुओं से समुदूत रूद्राक्ष सभी देवों को और रजत पितृगणों को अतिप्रिय हैं। गणदेवताओं में रूद्र विशेष महत्व के है। तैतींस प्रमुख देवताओ मे इनका परिगणन है। अपनी आशुतोषता एवं अकारण करूणा से भगवान रूद्र भक्तों एवं उपासकों के सर्वस्व है।

द्वादश आदित्य

माता आदिति के पुत्र होने से भगवान् सूर्य का नाम आदित्य भी हैं। वेदों में 'आदित्य' नाम से भगवान् सूर्य की महिमा का वर्णन किया गया हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में आदित्यों की संख्या बारह वर्णित है। वेदों मेंं वर्णित तैतीस देवताओं में बारह आदित्यगण ही हैं। पुराणों मे भी सूर्य रथ के वर्णन प्रसंग में बारह मासो मे बार आदित्य ही बारह नामो से अभिहित किये गये है।

धाता अर्यमा, मित्र,वरूण, इन्द्र,विश्स्वान त्वष्टा,विष्णु, अंशु, भग, पूषा, तथा पर्जन्य महाभारत के आदिपर्व में भी ये ही नाम वर्णित हैं किन्तु नामों के क्रम में अन्तर है यथा–

आदित्यां द्वादशादित्याः सम्भूता भुवनेश्वरः
धाता मित्रोंडर्यमा शक्रो वरूणास्त्वंश एव च।।
भगो विवस्वान् पूषा च सविता दशमस्तथा।
एकादशस्तथा त्वष्टा द्वादशों विष्णुरूच्यते।[६]

भगवत् पु० ३/१२/१२–१३

अदिति के पुत्र बारह आदित्य हुए जो लोकेश्वर है। धाता मित्र अर्यमा शक्र,वरूण, अश, भग, विवस्वान पूषा, दसवे सविता, ग्यारहवे ,त्वष्टा और बारहवें विष्णु कहे जाते है। इन सब आदित्यों में विष्णु छोटे है, किन्तु गुणेंा में वे सबसे बढकर है।

अष्टवसुगण

आठ देवताओं का एक विशिष्ट गण विशेष है जिसे 'अष्टवसु' कहा जाता है। वेदादि में जो मुख्य तैतीस देवता निरूपित है उनमें अष्टवसु भी परिगणित है यास्काचार्य ने वसुओं को इन्द्र अग्नि एवं आदित्य के साथ संस्तुत होने के कारण – पृथिवी स्थानीय अन्तरिक्षस्थानीय एवं द्युस्थानीय इस प्रकार 'त्रिस्थानीय देवता कहा है। [१]

पुराणों कें अनुसार दक्षप्रजापति ने अपनी साठ कन्यायों में से दस का विवाह 'धर्म' के साथ किया। उनमें से 'वसु' से उत्पन्न होने के कारण वे ' वसु' कहलाये। वे संख्या में आठ हैं । विभिन्न पुराणेंा मे उनके नाम तथा क्रम भिन्न भिन्न प्रकार से प्राप्त होते हैं। श्रीमद् भागवत्पुराण मे इनके नाम इस प्रकार है।–

१ द्रोण
२. ध्रुव
३. प्राण
४. अर्क
५. अग्नि
६. दोष
७. चक्षु
८. विभावसु

वसवौऽष्टौ वसोः पुत्रास्तेषां नामानि तें श्रुणु ।
द्रोणः प्राणें ध्रुवोड कौडग्नि दोषौ वसुविभभावसुः। [२]

---

१. महाभारत –आदिपर्व

विष्णु पुराण के अनुसार

आपो ध्रुवश्च सोमश्च धर्मश्‍ चैवानिलोऽनलः
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृततः।। (१)

१. आप

२. ध्रुव

३. सोम

४. धर्म

५. अनिल (वायु)

६. अनल (अग्नि)

७. प्रत्यूष

८. प्रभास

श्रीमद्‌भागवत पुराण में उल्लेख है कि सभी प्रकार के ऐश्वर्यादि की प्राप्ति के लिये भी वसुदेवताओं की उपासना की जाती है।

'वसुकामों वसून्। (२)

स्मृतिया तथा कहीं कहीं पुराणादि में वसुओं को पितृस्वरूप भी बतलाया गया है`जो श्राद्धादिकर्म में तर्पण तथा पिण्डदानादि से इनकी पूजाकर पितरों के रूप में इन्हें आप्यापित किया जाता है। मनुस्मृति का वचन है कि–

वसून् वदन्ति तु पित्न् रूद्रांश्चैव पितामहान्।
प्रपिता महांस्तथादित्या ञ्छुतिरेषा सनातनी। (३)

तात्पर्य यह है कि पिता वसुरूप पितामहारूद्रस्वरूप तथा प्रपितामह आदित्यस्वरूप है।

---

१. निरूक्त ७/४/४१–४२

२. भागवत पु. ६/६/१०–११

वसुगण पितरों के अधिष्ठातृ देवता है, श्राद्धादि के द्वारा तर्पित होकर, वे प्रसन्न होकर दीर्घ आयुण्य, संतति, ऐश्वर्य, विद्या, सम्पूर्ण सुख–भोग, राज्य, स्वर्ग तथा अन्त में मोक्षपद भी प्राप्त करा देते है।

वसुरूद्रादिति सुताः पितरः श्राद्धदेवताः।
प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितृञ्छ्राद्धेन तर्पिता.।
आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्ग मोक्षं सुखानि च।
प्रयच्छन्ति तथा राज्य प्रीता नृणा पितामहाः।[१]

वसुगण धर्म के पुत्र होने के कारण साक्षात् धर्मस्वरूप ही है।

तुषित और साध्यगण

आदित्यों तथा रूद्रों के समान ही तुषित गण भी सदाचारी देवगण है। पुराणों के अनुसार चौदह मन्वन्तरों के भेद से प्रत्येक मन्वन्तर में इन्द्र, सप्तर्षि देवता आदि परिवर्तित होते हैं और उनके नामों में भी भेद होता रहता हैं। पुराणों में तुषितगणों को भी विभिन्नमन्वन्तरो के देवतारूप में अतीव महिमा का गान हुआ हे। इस सम्बन्ध में वायु पु० ब्रहमाण्ड पु० आदि पुराणों में एक कथानक प्राप्त होता हैं, जिसका सांराश इस प्रकार है।

सृष्टि के आरम्भ में प्रजापति ब्रह्मा ने अपने मुख से मन्त्ररूपशरीर वाले द्वादश पुत्रों को उत्पन्न किया जिनके नाम इस प्रकार से हैं ––

---

१. विष्णु पुराण १/१५/११०
२. भाग पु० २/३/३
३. मनुस्मृति ३/२८४

---

१. याज्ञ वल्क्य स्मृति २६६–७०

१ दर्श

२. पौर्णमास

३ बृहत्

४. रथन्तर

५. वित्ति

६. विवित्ति

७. आकूति

८. कूति

६. विज्ञाति

१०. विज्ञात

११. मन

१२. यज्ञ

'जय ' संज्ञक इन पुत्रों को ब्रहमाजी सृष्टि के विस्तार की आज्ञा प्रदान कर अन्त्रर्हित हो गये है। किन्तु उन्होनें सनकादि ऋषियो के योग मार्ग पर चलकर मोक्ष की ओर प्रवृत्त होने की चेष्टा की और पिता जी की आज्ञा पर विशेष ध्यान नही दिया।

कालान्तर में ब्रहमा जी वापस आकर अपन 'जय' नामक पुत्रों की इस प्रवृति को देख कर क्रोधाविष्ट हो उनसे कहा मैने प्रजाओं की सृष्टि हेतु ही तुम लोगो को उत्पन्न किया था किसी अन्य प्रयोजन से नही किन्तु तुम लोगोने ने मेरी आज्ञा की उपेक्षा कर बिना सन्तति उत्पन्न किये ही जो मोक्ष की ओर मन लगाया है वह उचित नही है अस्तु मै तुम लोगों को श्राप देता हूँ कि तुम्हारा सन्यास सिद्ध नही होगा और सतत छः मन्वन्तरों तक तुम सभी जन्म ग्रहण करते रहोगे। इससे दुःखी होकर जय संज्ञक उन देवताओं ने उन से क्षमा याचना की तब ब्रहमा जी प्रसन्न होकर उनसे कहा –'मेरा शाप तो मिथ्या नही हो सकता किन्तु सातवे वैवस्वत मन्वन्तर के समाप्त हो जाने पर तुम सभी मेरे पास आ जाओंगे तभी तुम्हें शाखती सिद्धि एवं मुक्ति प्रात होगी । ऐसा कहकर ब्रहमा जी अन्तर्हित हो गये इध ार जय नामक उन देवगणों ने योगमार्ग का आश्रषण कर अपने को द्वादश विशाल

सरोवरो के रूप में परिणत कर लिया ओर श्राप के परिणमस्वरूप वे स्वायम्भुव मन्वन्तर मे अजिता के गर्भ से प्रजापति रूचि के द्वादश पुत्रों के रूप में उत्पन्न हुए जो अजितगण संज्ञा से विख्यात हुए। वे देवगण स्वायम्भुव मन्वन्तर के देवताओं के साथ यज्ञभाग के अधिकारी हुए।

द्वितीय स्वारोचिष मन्वन्तर में वे ही पुनः 'तुषिता ' के गर्भ से स्वारोचिष मनु के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए। इस समय वे तुषितवा प्राण इन नामों से विख्यात हुए । वे देवगण यज्ञभाग के अधिकारी हुए।

तृतीय औत्तम मन्वन्तर में वे देवगण 'सत्या' के गर्भ से उत्तम मनु के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए ओर वे सत्य नाम से प्रख्यात हुए। ये सत्य नामक देवगण पुनः तापसनामक चतुर्थ मन्वन्तर में 'तामस' मनु की 'हर्या' नामक पत्नी से 'हरि' नाम से उत्पन्न होकर यज्ञभोक्ता बने। पञ्चम खैत नामक मन्वन्तर में 'विकुण्ठा' के पुत्र के रूप में ' वैकुण्ठ नाम से प्रसिद्ध हुए।

छठवें चाक्षुष मन्वन्तर में ये ही वैकुण्ठ संज्ञक द्वादश देवगण धर्म की पत्नी तथा दक्षप्रजापति की कन्या साध्या से धर्म के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए और ' सांध्य ' उनकी संज्ञा हुई । र्ध्म के ये ही द्वादश पुत्र साध्यगण कहलोयं जिनके नाम निम्नलिखित है।

१. मन
२. अनुमन्ता
३. प्राण
४. नर
५. अपान
६. विति
७. नय
८. हय
९. हंस
१०. नारायण
११. विभु
१२. प्रभु

सातवें वैवस्वत मन्वन्तर में ये ही स्वारोचिव मन्वन्तर के तुषितगण अथवा चाक्षुष मन्वन्तर के साध्यगण 'कश्यप –अदिति' के पुत्र रूप में उत्पन्न होकर द्वादश आदित्य कहलाये।

इस प्रकार स्वायम्भुव मन्वन्तर में 'जयनाम से विख्यात जो द्वादशाओं आदित्य देवगण थे वे ही शाप वशात् सात मन्वन्तरों में क्रमशः

१. अजित
२ तुषित
३. सत्य
४. हरि
५. वैकुष्ट
६. साध्य
७. आदित्य

गणों के रूप में विख्यात हुए। स्वरोचिष मन्वन्तर के जो द्वादशगण है वे तुषितगण कहलाते है। ब्रहमाण्ड पुराण में इनके नाम निम्न है–

१. प्राण
२. अपान
३. उदान
४. समान
५. व्यान
६. चक्षु
७. श्रोत्र
८. रस
९. घ्राण
१०. स्पर्श
११. बुद्धि
१२. मन

पुराणो एवं कोश ग्रन्थों में इन तुंषितगणो के नामों तथा संख्याओं में भी कुछ अन्तर हैं। मूलतः वे द्वादश हैं तथापि योग दृष्टया उनकी सख्या छत्तीस तथा चौरासी भी परिगणित है। तथापि ये प्रत्येक मन्वन्तर में स्थित रहते हैं तथा यज्ञो में उपस्थित होकर हविर्भाग ग्रहण करते है। वे सर्वदा प्रसन्न रहते हुए निजभक्तों एवं उपासकों का कल्याण करते हैं।

आभास्वर

इनगणों देवताओं की संख्या चौसठ वर्णित है। वैसे तो सभी देवता कान्ति दीप्ति तेज और आभासे सम्पन्न होते है, पर इन आभास्वर देवताओं में आभा, प्रकाश रूप, तेज, लावण्य, तथा कान्ति उन सबसे कुछ विशेष मात्रा में होती हैं। अतः ये विशेष भासित उदभासित होते है जिसके कारण ये आभास्वर ' कहलाते है। इनमें भी शान्ति, मुदिता, उत्फुल्लता,ओर सात्विकता तथा समोज्वलता आदि गुण विशेष मात्रा में होते हैं। इन की आराधना से ज्ञान विद्या आदि का प्रकाश राष्ट्र एवं प्रजावर्ग में समुल्लास तथा अन्नधन ओर सभी प्रकार के आनन्द मगल की उपलब्धि होती है। [१]

महाराजिक

महारजिक देवतागण सख्या मे २२० होते है। यह देवसंध सभी संघो से बड़ा है। इतने बड़े देवताओं का सामूहिक रूप से यज्ञों में आगमन हविर्ग्रहण ओर एक ही साथ देव सभाओं में निवास तथा गमना गमन महान प्रेम ओर सौहार्द का सूचक हैं इनकी उपासना से सभी प्रकार की राज्य सस्थायें, राष्ट्रसंघ जनसमूह और विश्व के विभिन्न वर्ग धमै और विभिन्न भाषाओं के बोलने वाले मनुष्य तथा इनके सहचर पशु पक्षी सदा अत्यन्त प्रेम भाव से परोपकार की भावना से दूसरों का हितचिन्तन करते हुए आनन्दोलास के साथ निवास करते हैं। किसी के मन मे कभी ईर्ष्या ,द्वेष या विघटनकारी प्रवृत्तियों का उदय नहीं होता है।

इनकी उपासना से उपासक में शान्ति सहिष्णुता सामञ्जस्य सात्विकता और निष्काम भक्ति और ज्ञान की भी प्रवृत्ति होती है। ओर उपासक का सव्रविध कल्याण होता है इनकी पंक्ति (ये पंङ्कित बद्ध होकर चलते है) महान हैं। एतदर्थ ये

'महाराजिक' नाम से विख्यात है। तेज ओर दीप्ति की अधिकता के कारण भी इनके नाम की अनुगुणता ओर सार्थकता सिद्ध होती है। [१]

मरूद्गणों का आविर्भाव और उनका माहात्म्य

मरूदृगण अनेक देवताओं का एक महत्वपूर्ण समूह विशेष हैं। ये द्विति के पुत्र हे। वैदिक संहिताओं एव पुराणेतिहा सादि ग्रन्थो में अनेक बार इनकी महिमा का वर्णन हुआ हैं। केवल ऋग्वेद मे ही मरूद्गणों की स्तुतियों एवं महनीय कार्यो से सम्बद्ध ३३ सकल सूक्त है। यज्ञ यागादि अनुष्टोनों में विशेष रूप से मरूद्देवताओं का आवाहन कर इन्हें आहुति दी जाती है। ये अति दयालु हैं। शीघ्र ही प्रसन्न होकर अभिलषित वस्तु प्रदान करते हैं। देवों में यह अदभुत विशेषता होती है कि वे बिना मॉगे ही अभीष्ट दुर्लभ से भी दुर्लभ वस्तु एवं महनीय पद प्राप्त करा देते है।

क्योकि वे अप्रति मशक्ति सम्पन्न होते है। इस सम्बन्ध में अनेक आख्यान पुराणदि ग्रन्थों में वर्णित है। मत्स्य पुराण में एक कथा आती है।

चन्द्रवंश में एक 'ययाति' नामक एक प्रसिद्ध सम्राट थे। उनके पाँच पुत्रों मे सबसे छोटे पुत्र पुरूष थे। जो अतिपितृभक्त थे। पित् भक्ति से अभिभूत हो पुरू ने पिता ययाति को अपना यौवन दान कर दिया। इस पर प्रसन्न हो पिता ने उन्हे राज्यपद का अधिकारी घोषित किया। इसी वंश में आगे चलकर चक्रवर्ती सम्राट दुष्यन्त हुए जिनकी साध्वी पत्नी 'शकुन्तला ' इतिहास में अत्यन्त प्रसिद्ध हुई। उन्हीं के संयोग से समुत्पन्न चक्रवर्ती सम्राट भरत के नाम से कुरूवंशियों का कुल भारत कहलाने लगा और युधिष्ठिर, अर्जुन आदि केवल 'भारत ' नाम से सम्बोधित हुए और प्रजा भी 'भारतीय' कहलाने लगी।

---

१. कल्याण देवतांक पृ० २६० पर

---

१. कल्याण देवतांक पृ० २६० पर

दैवयोग से भरत के सभी पुत्रो का उच्छेद हो गया । जिससे सारी प्रजा और सम्राट भरत को बडी चिन्ता हुई। राजा भरत ने पुत्र प्राप्ति की अभिलाषा से अनेको ऋतुकाल के अवसरो पर अनेक पुत्र निमिन्तक यज्ञों का अनुष्ठान किया, किन्तु वे सभी निष्फल रहे। पुत्र प्राप्न्ति की अभिलाषा अपूर्ण रही। राजा चिन्ताग्रस्त एवं दु:खी होकर सोचने लगे किस देवता की शरण ग्रहण करू।

अन्ततः उन्हें मरूद्रगणों का स्मरण हो आया ।

उन्होने मरूदगणो को प्रसन्न करने के लिये मन्त्री पुरोहितों के माध्यम से 'मरूस्तोम' [१] यज्ञ का सम्यक् अनुष्ठान कराया।

मरूतदेवता राजा के अनुष्ठान से अत्यन्त प्रसन्न हो गये । वे बृहस्पति द्वारा उत्पन्न शिशु 'भरद्वाज' को पुत्र रूप में लेकर प्रकट हंए ओर उसे दत्तक पुत्र रूप मं राजा भरत को समर्पित कर दिया जो कालान्तर में 'वितथ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार मरूदगणो की विश्वरक्षा में योगदान के अनेक आख्यान् उपाख्यान प्राप्त होते है

मरूदगणों के आविर्भाव के सम्बन्ध मे प्रायः पुराणेतिहास ग्रन्थो में एक प्रसिद्ध आख्यान प्राप्त होता हैं जो निम्न प्रकार है।

मरूदगणो के आविर्भाव का आख्यान

प्राचीन काल में देवासुर संग्राम मे भगवान् विष्णु तथा देवगणों द्वारा अपने पुत्र पौत्रो का संहार हो जाने पर देत्यमाता ' दिति' शोक से विहवल हो गयी वह स्यमन्त पञ्चक क्षेत्र में सरस्वती नदी के तट पर अपने पतिदेव महर्षि कश्यप की अराधना में तत्पर रहती हुई घोर तपस्या करने लगी। दिति ने सौवर्ष तक कठोर तप का अनुष्ठान किया । तपस्या से संतप्त हुई दिति ने वसिष्ठादि महर्षियों से अपने शोक का उपाय पूछा। उन्होने उसे पुत्र शोक विनाशक, पुत्र प्राप्ति कराने वाले तथा इहलोक ओर परलोक में अखण्ड सौभाग्य प्राप्त कराने

वाले महान् ' द्वादशीव्रत'(चैत्र मास से आरम्भ कर वर्ष पर्यन्त प्रत्येक मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि को किया जाने वाला एक व्रत विशेष जिसमे विशेषरूप से भगवान् विष्णु का पूजन होता है)का विधान बतलाया।

दिति के इस अनुष्ठान तथा तपस्या से प्रसन्न हो महर्षि कश्यप उसके पास आये ओर परम प्रसन्नता पूर्वक उन्होने वर मॉगने को कही दिति ने इन्द्र का वध करने वाले एक अति पराक्रमी पुत्र की याचना की। महर्षि ने वर देना स्वीकार कर लिया ओर कहा कि 'तुम आपस्तम्ब ऋषि से प्रार्थना कर उनसे आज ही पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान कराओं। उसकी प्रार्थना पर महर्षि ने ' इन्द्रशत्रोविवर्धस्व' इस मन्त्र से अग्नि मे आहुति दी। यज्ञ की समाप्ति पर महर्षि कश्यप की कृपा से दिति की अभिलाषा पूर्ण हुई। तदनन्तर उन्होने कहा हे वरान ने तुम्हें सौ वर्षो तक इसी तपोवन में रहकर प्रयत्न पूर्वक इस गर्भस्थ शिशु की रक्षा करनी होगी। यदि तुम भगवान् के ध्यान में तत्पर रहकर अपना गर्भ शौच और संयम पूर्वक सौ वर्षो तक धारण कर सकोगी तो तुम्हारा पुत्र इन्द्र को मारने वाला होगा परन्तु यदि किसी प्रकार नियमों में त्रुटि हो गयी हैं तो यह देवताओ का मित्र बन जायेगा ' दिति ने कहा ब्रहमन् ! मै सौ वर्षो तक व्रत का पालन अवश्य करुंगी। आप बतलाइये कि मुझे क्या–क्या करना चाहिए कौन कौन से काम छोड देने चाहिए और कौन काम ऐसे है जिन से ब्रत भंग नही होता। इस पर कश्यप जी ने कहा ' प्रिये' इस ब्रत में किसी भी प्राणी को मन वाणी या क्रिया के द्वारा सताये नही, किसी को शाप या गाली न दे, झूठ न बोले, शरीर के नख ओर रोये न काटे, और किसी भी अशुभ वस्तु का स्पर्श न करे। जल में प्रवेश कर स्नान न करे, क्रोध न करे, दुर्जनों से वार्तालाप न करे, बिना धुला वस्त्र न पहने उच्छिष्टान्न न ग्रहण करे शुद्र का लाया हुआ और रजस्वला दृष्ट अन्न भीन खाय तथा अञ्जलि से जल न पीये, जूठे मुख बिना आचमन किये सन्ध्या काल में बाल खोले हुए बिना श्रृगांर के वाणी का संयम किये बिना और बिना चादर ओढ़े घर से बाहर न निकले। बिना पाद प्रक्षालित किये अपवित्र अवस्था मे आर्द्रता से उत्तर या पश्चिम सिर करके दूसरो के साथ नग्नावस्था में तथा सुबह शाम सोना नही चाहिए। सन्ध्या काल में भोजन न करें। न तो कभी वृक्ष के मूल में बैठे और न कभी उसके निकट जाय। घर की सामग्री

मुसल ओखली आदि पर भी न बैठे, सुनसान घर में न जाय ओर मन को उद्विम्न न रखे। नख से लुआठी से अथवा राख से पृथिवी पर रेखा न खीचें। सदा नीद में न रहे तथाकठिन परिश्रम का कार्य न करे। लोगो के साथ वाद–विवाद न करे शरीर को तोडे मरोडे नही। अमगंलसूचक वाणी न बोले, अधिक जोर से हँसे नहीं।

इस प्रकार इन निषिद्ध कर्मो का त्याग करके गर्भिणी स्त्री को आवश्यक है कि वह सर्वदा पवित्र रहे धुला वस्त्र धारण करे ओर सभी सोभग्य के चिहनो से सुसज्जित रहे। नित्य मागलिक कृत्यो मे तत्पर रहकर गुरूजनों के सेवा करे और स्वास्थ्य के लिये उपयुक्त आयुर्वेदिक औषधियेंा से युक्त गुनगुने जल से स्नान करे। अपनी रक्षा का सदैव ध्यान रखे प्रातः काल कलेवा करेने से पूर्व ही गौ ब्रहमण लक्ष्मी जी ओर भगवान् श्री नारायण की पूजा करे। इसके पश्चात् पुष्पमाला चन्दनादि सुगन्ध द्रव्य नैवेद्य ओर आभूषणादि से सुहागिनी स्त्रियों की पूजा करे ओर पति की पूजा कर उस की सेवा में संलग्न रहे तथा यह भावना करती रहे कि पति का तेज मेरी कुक्षि में अवस्थित हे देवी जो गर्भिणी स्त्री विशेषरूप से इन नियमों का पालन करती हें उसका पुत्र शीलवान तथा दीर्घायु होता है। इन नियमों का पालन न करेने पर निःसन्हेह गर्भपात की सम्भावना बनी रहती है। इसलिये तुम इस पुसवन नामक व्रत का पालन करों। इस प्रकार व्रत की निर्विध्न समाप्ति कर तुम्हे एक इन्द्र धाती पुत्र होगा तुम्हारा कल्याण हों । मै अब जा रहा हूँ।

इतना कहकर महर्षि कश्यप अन्तर्ध्यान हो गये । दिति भी पति की आज्ञा प्राप्त कर मनोयोग से ब्रत के नियमों का प्रयत्न पूर्वक पालन करने लगी। [१]

---

१. मत्स्य पु० अध्याय ४६

---

१. श्रौत सूत्रों में 'मरूस्तोम' नामक यज्ञ का विस्तार से वर्णन है। तदनुसार यह एक एकाह यज्ञ हे और इसमें विशेष रूप से ऋ० के २७ वे सूक्त के ४ से ६ ऋचाओं का गान एवं स्तवन होता है और प्रायः इन्ही मन्त्रों से मरूद्रगणों को आहुतियों प्रदान की जाती हैं आपस्तम्ब श्रौत सूत्र उत्तर ३/११

इधर देवराज इन्द्र दैत्यमाता दिति के अभिप्राय को जानकर भयभीत हो गये और वे भेषबदल कर छद्मरूप धारण कर दिति के पास आये और उसकी सेवा करने लगे। वे दिति के लिये प्रतिदिन समय समय पर वन से फल फूल, कन्द, मूल, समिधा, कुश, पत्ते, दूर्वा मिट्टी और जल लाकर उसकी सेवा करने लगे। इन्द्र सदा दिति के छिद्रान्वेषण तथा उसके ब्रत भगं का अवसर ही ढूंढा करते थे।दिखावे में तो वे विनम्र प्रशान्त तथा प्रसन्न भाव से सेवा करते प्रतीत होते किन्तु आभ्यन्तर से उसकी त्रुटि प्राप्त करने की चेष्टा करते रहते हैं उन्हें यह भय था कि यदि दिति का व्रत पूर्ण हो गया तो उससे उत्पन्न बालक मेरा वध करेगा। अस्तु व प्रतिक्षण व्रत भंग का उपाय सोचते रहते थे।

दिति अति मनस्विनी थी ओर दृढता पूर्वक व्रत का पालन कर रही थी। फलतः वे कृश काय ओर दुर्बल हो गयी। शतवर्ष पूर्ण होने में मात्र ३ दिन ही शेष थे । दिति प्रसन्न थी ।

एक दिन शाम को वह आलस्य युक्त हो उच्छिष्ट मुख बिना आचमान किये और बिना पादप्रक्षालित किये ही सो गयी ओर उन्हें गाढ़ निद्रा आ गयी।

दिति की इस महती त्रुटि को प्राप्त कर इन्द्र हाथ में बज्र लेकर उसके उदर में प्रविष्ट हो गये । वहाँ उन्होंने स्वर्ण सदृश दीप्तिमान गर्भ के बज्र से सात टुकड़े कर दिये, जब वह गर्भ रोने लगा तब उन्होंने 'मत रो' 'मत रो' यह कहकर सात टुकड़ों में से प्रत्येक के और भी सात–सात टुकड़े कर दिये ––

"रूदन्तं सप्तमथैकैकं मा रोदीरिति तान् पुनः ।"[1]

---

१. श्रीमद् भागवत पु० ६/१८, मत्स्य पु० ७ वाँ अध्याय, ब्रह्माण्ड पु० उपोदघात अ० ३, वायु पु०
उत्त० अ० ६, विष्णु पु० १/१२१ आदि पुराणों में मरूद्गणो का आख्यान् विस्तार से वर्णित है।

इस प्रकार हुए उन्चास गर्भ खण्डो ने हाथ जोड़कर इन्द्र से कहा– 'देवराज ! तुम हमें क्यों मार रहे हो हम तो तुम्हारे भाई है। इस प्रकार बज्र से छिन्न भिन्न करने पर भी जब वे उन्चास टुकडे जीवित ही रहे तो इन्द्र ने इसमें दिति की नारायण की आराधना को ही कारण मानते हुए उन सबसे कहा कि तुम सब अवध्य होने के कारण तथा दिति के पुत्र होने पर भी दैत्यों से भिन्न देवता माने जाओगे । क्योंकि गर्भ में स्थिति रहकर रोते हुए मैने तुम्हें –

'मा रूदत'

मत रोओ ऐसा कहा इसलिये तुम सभी 'मरूत्' नाम से प्रसिद्ध होओगे और यज्ञों मे भाग भी मिलेगा––

अवध्या नूनमेते वै तस्माद् देवा भविन्त्विति ।
यस्मामा रूदतेत्युक्ता रूदेन्तो गर्भसस्थिताः ।
मरूतो नाम ते नाम्ना भवन्तु मखभागिनः । [२]

इन्द्र के वज्र से काटे गये दिति के गर्भ के उन्चास टुकड़े ही उन्चास मरूद्‌गणों के रूप में विख्यात हो गये। इन्द्र ने उन्हें सोमपायी देवगणों में स्थान प्रदान किया । इसी समय इन्द्र दिति के गर्भ से बाहर निकल आये । जब दिति की ऑख खुली तो उन्होंने देखा कि अग्नि के समान तेजस्वी उन्चास बालक इन्द्र के साथ ही खड़े हैं इससे उन्हे बडी प्रसन्नता हुई । दिति के पूछने पर इन्द्र ने सकल वृतान्त बताकर अपने दुष्कर्म के हेतु पुनः–पुनः क्षमा याचना की । दिति देवराज इन्द्र के शुद्ध भाव से सतुष्ट हो गयी। अन्ततः देवराज इन्द्र उन्चास मरूद्‌गणों को विमानस्थ कराकर अपने साथ देवलोक को ले गये । वे सभी यज्ञ भाग के अधिकारी होकर देवों के प्रेमपात्र बन गये । वे मरूद्‌गण इन्द्र के सहायक देवताओं के रूप में विशेष प्रसिद्ध हुए । पुराणों में इन उन्चास मरूद्‌गणों के नाम इस प्रकार परिगणित किये हैं ––

---

१. भागवत पु० ६/१८/६२

२. मत्स्य पुराण ७/६१/६२

१ सत्वज्योति
२. आदित्य
३. सत्यज्योति
४. तिर्यम्ज्योति
५. सज्ज्योति
६. ज्योतिष्मान्
७. हरित
८ ऋतजित्
९. सत्यजित्
१०. सुषेण
११ सेनजित्
१२. सत्यमित्र
१३. अभिमित्र
१४. हरिमित्र
१५. कृत
१६. सत्य
१७. ध्रुव
१८. धर्ता
१९. विधर्ता
२०. विधारय
२१. ध्वान्त
२२. धुनि
२३. उग्र
२४. भीम
२५. अभियु
२६. साक्षिय
२७. ईदृक्
२८. अन्यादृक्
२९. यादृक्
३०. प्रतिकृत्
३१. ऋक्
३२. समिति
३३. संरम्भ
३४. ईदृक्ष
३५. पुरूष
३६. अन्यादृक्ष
३७. वैतस्
३८. समिता
३९. समिदृक्ष
४०. प्रतिदृक्ष
४१. मरूति
४२. सरत
४३. दैव
४४. दिश्
४५. यजुः
४६. अनुदृक
४७. साम
४८. मानुष

और ४९. विश ।[१]

पुराणों के अनुसार सृष्टि चक्र में धर्म की समुचित व्यवस्था के लिये स्वायम्भुवादि १४ मन्वन्तरों में अलग अलग मनु, सप्तर्षि तथा देवगण बतलाये गये हैं । इस सप्तम वैवस्वत मन्वन्तर के सप्त देवगणों में मरूद्गण भी परिगणित हैं ।

साध्या विश्व च रूद्राश्च मरूतो वसवोऽश्विनौ ।
आदित्याश्च सुरास्तद्वत् सप्तदेवता : स्मृता।

ये मरूद्गण बल, वीर्य तथा पराक्रम के भी अधिष्ठाता देव हैं । ओज की प्राप्ति के लिये भी इनकी उपासना होती है।

आचार्य यास्क ने मरूद्गणों को मध्य या अन्तरक्षि स्थानीय देवताओ में निर्दिष्ट किया है । मरूत् शब्द की व्याख्या में उनका निर्वचन है कि –

'भित या परिमित मात्रा मे रव'– शब्द करने के कारण अथवा शीघ्र ही कृपाकर अपार वस्तुओ को प्रदान करने के कारण मरूत् कहलाते हैं ।

वेदान्त सूत्र में भगवान् व्यास तथा शकर आदि भाष्यकारों ने –

'एतेन मातरिश्वा व्याख्यातः ।[3]'

इस सूत्र में पर्याप्त विवेचना करते हुए कहा है ––

कि मरूद्गणों या मातरिश्वा अर्थात् अपने उत्पत्ति स्थान अन्तरिक्ष में श्वाँस लेने, शब्द करने तथा विशेष रूप से विचरण करने के कारण इनके नाम की अन्वर्थकता है ––

मरूद्गणोंा की अनादिता

छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक उपनिषदों में 'वायु' को नित्य एवं अनादि माना गया है। इनकी उत्पत्ति का उल्लेख भी नही हुआ है किन्तु वेदान्त या उपनिषदों के प्रकरणों में –

'आकाशद्वायुः'

आकाश के द्वारा वायु की उत्पत्ति हुई है । इस वचन के समन्वय में आचार्य शंकर का कथन है कि जैसे – अग्नि, जल या अन्य अभिव्यक्त पदार्थ तिरोहित या स्थानान्तरित होते देखे जाते है। वैसे सर्वव्यापक वायु में प्राकट्य या तिरोहितत्व नहीं परिलक्षित होता है। वह सम्पूर्ण जगत् में तथा सभी प्राणियों के भीतर–बाहर अनुस्यूत हैं । इसीलिये मरूद्गणो या मातरिश्वा को जगत्प्राण भी कहा जाता है । कारण इनके अभाव में कोई भी प्राणी पदार्थ जीवित नहीं रह सकता । मरूत्शब्द की व्युत्पत्ति में आचार्य पाणिनि, शाकटायन, उज्ज्वलदत्त क्षीरस्वामी, भरतस्वामी तथा रायमुकुट आदि विद्वानों का भी यही निर्विवाद मत है।

---

१. वायु पु० ७/१२३–१३०, ब्रहमाण्ड, गरूपु तथा विष्णु धर्मोतर पुराणादि में भी ये नाम आये हैं किन्तु नाम भेद हैं ।

२. मत्स्य पु० ६/२६

३. वेदान्त सूत्र २/३/८

मरूतों की प्रत्यक्ष अनुमान आदि प्रमाणें से सिद्धि देवाधिदेव परमात्मा की सिद्धि में भी सहायक हैं, क्योकि जिस प्रकार प्राण की शरीर के बाहयाभ्यन्तर व्याप्ति अनुमित तथा अनुभूत होती रहती है वैसे ही उसके मूल कारण या उनसे भी सूक्ष्म तत्वमान बुद्धि ओर चिदात्मा की भी संकल्प–विकल्प, विवेचना एवं नियमन के द्वारा प्रत्यक्ष अनुभूति होती है । इसी प्रकार समष्टि मातरिश्रवा से अधिक सूक्ष्मतत्व महदाकाश महत्वत्व एवं परब्रह्म परमात्मा की भी सुस्पष्ट अनुभूति एवं प्रमाण सिद्ध हो जाती है। इसी रहस्य को व्यक्त करने के लिये भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में कहा है कि जिस प्रकार आकाश में स्थित, अपने लक्षणों से सर्वत्र व्याप्त मातरिश्रवा (मरुत) स्पष्ट अनुभूत एवं अनुभवगम्प होता है।
उसी प्रकार यह आकाश, सभी मरूदगणों एवं तदन्तर्भूत जड़–चेतन प्राणिवर्ग भी मुझमें स्थित है यह सर्वज्ञान होना चाहिए–

"यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगोमहान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मन्स्थानी त्युप धारय ।।[१]

विश्वेदेवगण और उनकी महिमा

'विश्वेदेव' देवताओं का एक समूह विशेष है । ये गणदेवता भी कहलाते हैं । जिस प्रकार आदित्यों रूद्रों, वसुगणों एवं मरूतों का समूह है वैसे ही 'विश्वेदेव' इस शब्द से बहुत देवताओं का बोध होता है । आचार्य यास्क की मान्यता है कि 'विश्वेदवे' में 'विश्व' शब्द 'सर्व' शब्द का पर्याय है अर्थात् 'विश्वदेवाः' से तात्पर्य 'सर्वेदेवाः' अथवा सभी देवताओं से हैं 'विश्वेदेव' यह नाम इसीलिये सार्थक है कि वे सभी देवताओं के प्रतिनिधि स्वरूप हैं । ऋ० में विश्वेदेव की महिमा परक पचास से अधिक सूक्तों के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि ऋग्वेदादि में अग्नि, मित्र, वरूण, इन्द्र, रूद्र, द्वादश, आदित्य, मरूद्गण वसुगण, द्यावा पृथिवी, अदिति, सरस्वती आदि नदियों – जितने भी देवताओं की स्तुतियाँ हैं प्रायः वे सभी विश्वेदेवगणों की ही स्तुतियाँ है संहिताओं के साथ ही ब्राह्मणग्रन्थों, पुराणों तथा कर्मकाण्ड के ग्रन्थों में इनके स्वरूप तथा कार्यो का उल्लेख प्राप्त होता है। निरूक्त कार यास्क ने 'दैवतकाण्ड' में विश्वेदेवों का संक्षेप में सुन्दर परिचय दिया है और ऋग्वेद में प्राप्त तीन ऋचाओं (१/३/७/६) को अत्यधिक महत्वपूर्ण मानते हुए 'वैश्वदेवी गायत्री' के नाम से अभिहित किया गया है।

ऋ० में विश्वेदेवगणों की स्तुति मे विनियुक्त उनकी महिमा का ख्यापन करने वाला तथा उनके कार्यो को बताने वाला एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सूक्त हैं ।[1]

जो सभी याज्ञिक अनुष्ठानों तथा पूजासंस्कारादि शुभ कार्यो के प्रारम्भ में स्वस्तिवाचन विध्ननिवृत्ति एवं कल्याण मगलपाठ के रूप में सर्वत्र पठित है। इस सूक्त में दश ऋचायें हैं, जिन्हें आचार्य सायण ने अनेक प्रमाणों के आधार पर 'वैश्वदैव शस्त्र–प्रयोग' में ही विनियुक्त माना है । केवल दसवीं ऋचा–

'अदितिर्द्यौ'

को अदितिदेवता परक माना है सूक्तारम्भा

'ऊँ आ नो भद्राः क्रत वो यन्तु विश्वतो।'

इस ऋचा से तथा समापन –

'ऊँ शतभिन्नु शरदो अन्ति देवाः'

से होता है

इस सूक्त के ऋषि गौतम विश्वेदेवताओं से सर्वविधि कल्याण हेतु प्रार्थना करते हैं ।

ऋ० के पञ्चम मण्डल के ५६ वे सूक्त की ११ से १५ ये पाँच ऋचायें ऋग्वेदीय स्वस्तिवाचन– मन्त्र के रूप मे विनियुक्त होती है । जिसका आरम्भ–

'ऊॅ स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः'

इस प्रकार से और अन्त –

'ऊॅ स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रम साविव।'

इस ऋचा पर होता है ।

---

१. गीता ६/६

---

१. ऋ० १/१०५,१०६, २/२६, ३/५/५४–५७, ४/५५, ५/४१–४३, ५/४६–५१, ६/४६–६१, ७/३४–३७, ३६–४०, ४२–४३, ४८.८/२७–३०, ८३, १०/३१, ३३, ३५–३६, ५२, ५६–५७, ६१–६६, ६२–६३, १०१, १२६, १२८, १३७, १४१, १६५, १८१,

हे विश्वेदेव गण ! आप सभी अपनी कल्याण कारी वृष्टियों के द्वारा हमारी रक्षा करें, पालन करें, तथा मंगल करे ।

ऋग्वेद के समान ही यजूष् तथा साम आदि संहिताओं में भी विश्वेदेवगणो का पर्याप्त उल्लेख प्राप्त होता है। सामवेद में प्रायः ऋग्वेदीय ऋचायें ही प्रयुक्त हैं । अथर्ववेद में कई स्वतन्त्र सूक्त हैं जो ऋ० मे नहीं आये हैं । अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के तीसवें सूक्त में अथर्वा ऋषि ने आयुष्कामना से बड़ी श्रद्धा भावना से विश्वेदेवो की प्रार्थना की है ।

यजुर्वेद में ऋग्वेद की अपेक्षा विश्वेदेवों के मन्त्र कम प्राप्त होते हैं कई मन्त्र तो ऋग्वेदीय ही हैं । विशेष रूप से पिण्ड–पितृ यज्ञ सूक्तों में एवं श्राद्ध–सूक्तों के अन्तर्गत प्राप्त होते है । इनमें

'विश्वे देवास आगत'[१]

तथा

'विश्वेदेवाः श्रृणुतेमं हवं०'[२]

ये दो विश्वेदवों के मन्त्र अत्यन्त प्रसिद्ध हैं । इन में प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि–'हे विश्वेदेवगण ! आप हमारी स्तुति एवं प्रार्थना को सुनिये तथा बिछाये गये कुशासन पर बैठिये । ये आप लोगों के लिये ही निवेदित हैं, दूसरों के लिये नहीं । जो अन्तरिक्ष में निवास करते हैं, जो अग्नि के द्वारा आहुतियों को ग्रहण करते हैं और जिनकी यज्ञों में सादर स्तुति होती है वे बैठकर अपना भाग ग्रहण करें ।

---

१. ऋ० १/८६ वाजसनेयी सं० २५/१४–२३
काण्व सं० मैत्रायणी सं० और ब्राह्मण आरण्य को में भी प्रायः यथावत रूप में प्राप्त होता है ।

२. ऋ० ७/३४–३७, ३६, ४०, ४२, ४३ एवं ४८ वाँ सूक्त

---

१. यजुर्वेद ७/३४

२. यजुर्वेद ३३/५३ ।

पूर्वोक्त विवरणो से स्पष्ट है कि वैदिक संहिताओं में विश्वेदेवों की अत्यधिक महिमा कही गयी है और उनका विश्वेदेव नाम इसलिये सार्थक है कि वे सभी देवताओं के प्रतिनिधिस्वरूप है । विश्वेदेव से तात्पर्य है कि सभी देवता अर्थात् अग्नि, वरूण, मित्र, इन्द्र, द्वादशदित्य, मरूद्गण, वसुगण, द्यावापृथिवी आदि जितने भी देवता संहिताओं में परिपष्ठित हैं, प्रायः सभी देवता विश्वेदेवगण कहे गये हैं ।[1] जहॉ वेदों में सभी देवों को विश्वेदेव कहा गया है वहीं महाभारत तथा पुराणादि में इनकी संख्या कहीं तिरसठ, कहीं तेरह, कहीं दस वर्णित हैं । पुराणों तथा कर्मकाण्डादि एवं स्मृति ग्रन्थों में विश्वेदेवो का विशेष प्रयोजन श्राद्ध के कर्मांगों में बतलाया गया है । पिण्ड–पितृयज्ञादि कर्मों में वैश्व देवार्चन तथा वैश्वदेव होना आवश्यक होता है।

महाभारतानुसार दक्ष प्रजापति की पुत्री 'विश्वा' के पुत्र विश्वेदेव हैं, जो संख्या मे तिरसठ हैं इनके नाम इस प्रकार हैं[2] ––

"बल, धृति, विपाटमा, पुण्यकुत, पावन, पार्ष्णिक्षेमा, समूह, दिव्यसानु, विवस्वान, वीर्यवान, ह्रीमान, कीर्तिमान, कुत, जितात्मा, मुनिवीर्य, दीप्तरोमा, भयंकर, अनुकर्मा, प्रतीत, प्रदाता, अंशुमान, शैलाभ, परमक्रोधी, धीरोण्णी ,भूपति, स्रज, वज्री, विश्वेदेव, विद्युद्वर्चा, सोमवर्चा, सूर्यश्री, सोमप, सूर्यसावित्र, दत्तात्मा, पुण्डरीयक, उण्णीनाभ, नभोद, विश्वायु, दीप्ति, चमूहर, सुरेश, व्योमारि, शंकर, भव, ईश, कर्वा, कुति, दक्ष, भुवन, दिव्यकर्म, कुंत, गणित, पञ्चवीर्य, आदित्य, रश्मिवान, सप्तकुत, सोमवर्चा, विश्वकुत, कवि, अनुगोप्ता, सुगोप्ता, नप्ता और ईश्वर ।

इन विश्वेदेवों के मुख 'अग्निदेवता' कहे गये हैं अर्थात् अग्नि में हवन करने से इन्हें 'हव्य–कव्य' की प्राप्ति होती है । इन्हें यज्ञ में भी भाग प्राप्त होता है और श्राद्ध के भी ये मुख्य अंग हैं । इनके द्वारा ही पितरों को दी गयी पुष्पमाला, गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य, यज्ञोपवीत, अन्न, वस्त्रादि वस्तुयें प्राप्त होती हैं । ये विश्वेदेव काल गति के ज्ञाता हैं । इन्हें पितरों का साहयक माना गया

है और ब्रह्मा जी द्वारा श्राद्ध में पितरों के साथ इनके भाग निश्चित किये गये हैं ।

ब्रह्मा जी द्वारा विश्वेदेवों का श्राद्ध में भाग निर्धारण-

ब्रफण्ड पुराण उपोद्घात अध्याय १२ तथा वायु पुराण में प्रायः समान शब्दो में विश्वेदेवों की उत्पत्ति सहित उनके नाम रूप तथा प्रयोजन पूर्वक इतिहास का भी निरूपण हुआ है । तदनुसार दक्षपुत्री 'विश्वा' के गर्भ से दस सन्तानें हुईं ।

जनन के कुछ दिन पश्चात् जब वे बडे हुए तो हिमालय के रमणीय शिखर पर शुद्ध मन से उग्रतप मं प्रवृत्त हुए । इनकी तपस्या देखकर पितरो ने उनसे कहा कि 'आप लोग हमसे वर मॉगें । हम आपकी किस कामना को पूर्ण करें । इसी समय लोक पावन ब्रह्मा जी भी वहाँ पहुँच गये और उन्होने कहा 'हम भी आप लोगों की तपस्या से बहुत प्रसन्न हैं आप लोग क्या चाहते हैं ? इस पर उन्होनें कहा कि 'पितरों के श्राद्ध में हम लोगों को भी भाग मिलना चाहिए, हम इसी वर की कामना करते हैं । तब ब्रह्मा जी ने कहा —

"आप लोगों को श्राद्ध में पितरों के साथ अवश्य भाग प्राप्त होगा ।'' पितरों ने भी कहा 'ब्रह्मा जी जैसा कह रहे हैं अवश्य ही वैसा होगा । हमारे लिये जो भी श्राद्ध उपकल्यित होगा उसमें आप लोगों को सर्वप्रथम भाग प्राप्त होगा तथा आपकी गन्ध, माल्य, वस्त्र और अन्न से पूजा भी प्रथम ही की जायेगी । आपको ही प्रथम कव्य–भाग प्राप्त कर हम लोगों का अर्चन तथा अन्न का भाग दिया जायेगा । विसर्जन हम लोगों का प्रथम तथा आप लोगों का पश्चात् होगा ।"

---

१. मनुस्मृति ३/८४ में भी वैदिक विश्वेदेवो का निर्देश संकेत है मन्त्र भी वही है जो ऋ० और यजुर्वेद में है ।

२ महाभारत अनुशासन पर्व– ९१/२–३७,

"अस्माकं कल्पते श्राद्धे युष्मान प्रासनं हि वै ।
भविष्यति मनुष्येषु सत्यमेतद् ब्रवामहे ।।
माल्यैगन्धैस्तथान्नेन युष्मानग्रेऽर्चयिष्यति ।
अग्रे दत्वा तु युष्माकमस्माकं दास्यते ततः ।
विसर्जनमथास्माकं पूर्वं पश्चात्तु देवतमा ।।(१)

इस प्रकार वर प्रदान कर पितरों के साथ ब्रह्मा जी अन्तर्धान हो गये ।

पुराणो में धर्म की पत्नी विश्वा के दस पुत्र वर्णित हैं, जो विश्वेदेव कहलाते हैं । इनके नाम इस प्रकार हैं --

क्रतु, दक्ष, श्रव, सत्य, काल, काम, मुनि, पुरूरवा, आर्द्रवस तथा रोचमान ।

विश्वेदेवास्तु विश्वाया जज्ञिरे दश विश्रुता ।
क्रतुर्दक्षः श्रवः सत्य कालः कामों मुनिस्तथा ।।
पुरूरवो हयार्द्रवसौ रोचमानश्च ते देश ।
धर्म पुत्राः सुराः एते विश्वाया जज्ञिरे शुभा ।।(१)

स्मृति ग्रन्थों में इष्टि, नान्दीमुख, पार्वणादि श्राद्धभेदों के आधार पर विश्वेदेवों की संख्या क्रतु, दक्ष, ध्वनि (धुरि), रोचन (लोचन), पुरूरवा, आर्द्रव, काल, काम, सत्य, तथा वसु इस प्रकार से दस ही वर्णित है किन्तु कहीं-कहीं नामान्तर भी प्राप्त होता है ।(२)

शंकर बृहस्पति आदि स्मृतियों में इष्टि (कर्मान्गश्राद्ध), नान्दीमुख, पार्वण एवं नैमित्तिक श्राद्धों में दो-दो विश्वेदेवों की कीर्तन-पूजन की विधि निर्दिष्ट है । तदनुसार इष्टि श्राद्ध में क्रतु और दक्ष, नान्दीमुख में सत्य और वसु, काम्य श्राद्ध में धूलि और लोचन, पार्वण श्राद्ध में पुरुरवा और आर्द्रव तथा नैमित्तिक श्राद्ध में काल और काम का नाम संकीर्तन ओर अर्चन होता है ।

---

१. ब्रह्माण्ड पु० ३/१२/११-१३,

विश्वदेवों का स्वरूप

ये विश्वेदेवगण दो भुजाओं से युक्त हैं और दोनों भुजाओं में क्रमशः ध
ानुषबाण धारण किये हुए श्वेत वस्त्र धारण किये हुए, केयूर, कुण्डल, किरीट तथा कटक आदि आभूषणों से अलंकृत धैर्य और सौन्दर्य आदि गुणों से युक्त, दिव्य–चन्दन माला अंगराग आदि से अनुलिप्त हैं । इन्द्र के अनुयायी हैं और स्वर्ग की रक्षा करने वाले हैं––

बाणबाणसनधरा द्विभुजाः श्वेतावाससः ।
केयूरिणः कुण्डलिनः किरीटकटकान्विताः ।।
धैर्यसौन्दर्यः संयुक्ता दिव्यस्रगनुलेपनाः ।
इन्द्रस्यानुचराः सर्वे गोप्तास्त्रीदिवस्य ते ।।[1]

आभ्युदयिक पार्वण, एकोदिष्ट, श्राद्धादि कर्मों में श्राद्ध के पूर्व विश्वेदेवों का आवाहन पूजन परमावश्यक होता है । उसकी संक्षिप्त विधि गरूड़ पुराण पूर्वखण्ड अध्याय २१८ में वर्णित हैं । तदनुसार श्राद्ध कर्म में विश्वेदेवों का संकल्प पूर्वक "ॐ विश्वेदेवास आगत० तथा ॐ विश्वेदेवाः श्रृणुतैम० इत्यादि ऋग्यजुः प्रसिद्ध दो मन्त्रों से विश्वेदेवों का आवाहन किया जाता है । आवाहन के पौराणिक/तान्त्रिक मन्त्र भी निर्दिष्ट हैं ––

"ॐ आगच्छन्तु महाभागा विश्वैदेवा महाबलाः ।
येऽत्र विहिता श्राद्धे सावधाना भवन्तु तै ।।"[2]

तदनन्तर विश्वेदेव पात्र का निर्माण होता है, जिसमें एक पलाशपत्र का एक पात्र (दोना) बना कर उसमें प्रादेशमात्र के कुशों से पवित्री बना कर रखा जाता है तथा फिर –

'ॐ शन्नो देवीरभिष्टय'

---

१. ब्रह्माण्ड पु० २/३/३०–३१

२. प्रजापति स्मृति १७६–१८०,

मन्त्र से जल डाला जाता है । उसके पश्चात् उसी पात्र में जौ, तिल, चन्दन छोडा जाता है । इस अर्घ्यपात्र को ऊर्ध्व मुख स्थापित कर विश्वेदेवों को अर्पित किया जाता है ——

"ऊँ विश्वेभ्यो देवेभ्य एतानि गन्धपुष्पधूपदीपवासो युगयज्ञोपवीतानि नमः । गन्धादिदान मच्छिद्रमस्तु ।"

यह कहकर गन्ध पुष्पादि अर्पित किया जाता है और फिर विश्वेदेवों की सहायता से ही पित् पितामहो आदि का । श्राद्ध सम्पन्न किया जाता है । पुराणों के अनुसार ये विश्वेदेवगण ही श्राद्ध की वस्तुओं को पितरों तक पहुचाने में समर्थ होते हैं और सम्यकतया प्राप्त करा देते हैं ।

---

१. चतुर्वर्ग चिन्ता मणि श्राद्धकल्प मे गरूड़पुराण के वचन ।

२. गरूड़ पुराण पूर्व खण्ड २६८/७

अध्याय ११

नवग्रह मण्डल के देवताओं का परिचय

नवग्रह मण्डल के देवताओं का परिचय

नवग्रह मण्डल में पञ्चलोकपाल दशदिक्पाल आदि देवताओं के सहित नवग्रहो का पूजन किया जता है । ग्रहों की पूजा से इस लोक में भी कामनाओं की पूर्ति और प्राप्ति हो जाती है । यदि किसी को कोई ग्रह पीड़ा दे रहा हो तो उसे अन्य ग्रहों के साथ उस ग्रह की विशिष्ट पूजा करनी चाहिए । इनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए ।[१]

यदि किसी दुर्दृष्टवंश कोई व्यक्ति क्लेशग्रस्त हो रहा हो तो ग्रहशान्ति कवच बनकर उसका निवारण कर देती है । [२]

चित्त की उद्विगनता एवं आकस्मिक विपत्तियों में भी ग्रह यज्ञ आवश्यक होता है ।[३]

नवग्रह यज्ञ से शान्ति और पुष्टि दोनों की प्राप्ति होती है । वृष्टि के लिये तथा लक्ष्मी ओर दीर्घायु की प्राप्ति के लिये भी ग्रह यज्ञ विधान है ।[४]

४. **ग्रह-**

१. सूर्य
२. चन्द्र
३. मगल
४. बुध
५. बृहस्पति
६. शुक्र
७. शनि
८. राहु
९. केतु ये ९ ग्रह है ।[५]

---

१. मत्स्य पु० ९३/७८–८०
२. मत्स्य पु० ९३/८१
३. मत्स्य पु० ९३/८४
४. मत्स्य पु० ९३/१–२
५. मत्स्य पु० ९३/१०

ग्रहो के अधि और प्रत्यधिदेवता भी हैं जो क्रमशः निम्न है–

अधिदेवता

	ग्रह		देवता
१.	सूर्य	१.	शिव
२.	चन्द्रमा	२.	पार्वती
३.	मंगल	३.	स्कन्द
४.	बुध	४.	भगवान् विष्णु
५.	बृहस्पति	५.	ब्रह्मा
६.	शुक्र	६.	इन्द्र
७.	शनि	७.	यम
८.	राहु	८.	काल
९.	केतु	९.	चित्रगुप्त

प्रत्यधिदेवता

	ग्रह		देवता
१.	सूर्य	१.	अग्नि
२.	चन्द्रमा	२.	जल
३.	मंगल	३.	पृथिवी
४.	बुध	४.	विष्णु
५.	बृहस्पति	५.	इन्द्र
६.	शुक्र	६.	इन्द्राणी
७.	शनि	७.	प्रजापति
८.	राहु	८.	सर्प
९.	केतु	९.	ब्रह्मा

इनके अतिरिक्त विनायक गणेश, दुर्गा, वायु, आकाश और अश्विनौ को आवाहन पूजन किया जाता है।

सूर्य--

अदिति के पुत्र हैं । इनका वर्ण लाल है । वाहन रथ है । रथ में एक ही चक्र है जो संवत्सर कहलाता है । इस रथ मे मास रूपद्वादश अरे हैं । ऋतुरूप छः नेमियाँ हैं और तीन चौमासे रूप तीन नाभियॉ हैं ।[१]

इस रथ में अरूण सारथि हैं और गायत्री आदि छन्दों के सप्त घोडे रथाकर्षण करते हैं ।[२]

परिवार -- संज्ञा और निक्षुभा (छाया) दो पत्नियाँ हैं । संज्ञा से वैवस्वत मनु, यम, यमुना, अश्विनी कुमार, और रैवन्त तथा छाया से शनि, तपती, विष्टि और सावर्णि मनु दस संतानें प्राप्त हुईं ।

शक्तियां --

इडा, सुषंम्णा, विश्वार्चि इन्द्रु, प्रमर्दिनी, प्रहर्षिणी, महाकाली, कपिला, प्रबोधिानी, नीलाम्बरा, घनान्तः स्था और अमृता– द्वादश शक्तियॉ हैं ।[३]

३. **आयुध** – चक्र शक्ति, पाशु, अकुश हैं ।[४]
सूर्य के अधिदेवता शिव (ईश्वर) और प्रत्यधिदेवता अग्नि है। सूर्य का ध्यान निम्न है–

पद्मासनः प्रभाकरः पद्मगर्भः सभद्युतिः ।
सप्ताश्वः सप्तरज्जुश्व द्विभुजः स्यात् सदारविः ।[१]

---

१. भाग पु० ५/२१/१३
२. भाग पु० ५/२१/१५ ऋ० १/११५/३
३. अग्नि पु० ५/८–६
४. श्रीतत्व निधि

चन्द्रदेवता

चन्द्रदेव महर्षि अत्रि और अनुसूया (अनुसुइया) के पुत्र हैं । षोडशकलाओं से पूर्ण हैं तथा मनो मय, अन्नमय, अमृतमय, पुरूष, स्वरूप भगवान हैं । चन्द्र देवता ही सभी देवता पितर, मनुष्य, भूत, पशु, पक्षी, सरीसृप और वृक्ष आदि प्राणियों के प्राण का आप्यापन करते हैं ।[2]

ब्रह्मा ने चन्द्र देवता को बीज, औषधि, जल तथा ब्राह्मणों का राजा बना दिया । प्रजापति दक्ष ने अश्विनी भरणी आदि नाम वाली सन्ताइस कन्यायें चन्द्र देवता को व्याह दी जो सत्ता – इस नक्षत्र के रूप मं ज्ञेय हैं ।[3]

ये सभी पत्नियाँ शील और सौन्दर्य से सम्पन्न तथा पतिव्रत धर्मधारिणी हैं । इस तरह इन नक्षत्रों के साथ राजा चन्द्र देवता परिक्रमा करते हुए सब प्राणियों, मासों का विभाग किया करते हैं ।

५. **वर्ण-** श्वेत है ।

६. **वाहन-** वाहन रथ है । इस रथ में तीन चक्र और दस घोडे संयुक्त है । सभी अश्व दिव्य, अनुपम, और मनोजवा हैं । नेत्र और कर्ण भी श्वेत हैं और स्वयं शंखवत उज्जवल हैं ।[5]

परिवार

चन्द्र देवता की नक्षत्र नाम वाली अश्विनी भरणी आदि सत्ताईस पत्नियाँ हैं । इनके पुत्र का नाम बुध है जो तारा से उत्पन्न है । चन्द्रमा के अधिदेवता अप् और प्रत्यधिदेवता उमा हैं । इनकी प्रतिमा का स्वरूप निम्न है––

श्वेतः श्वेताम्बर धरः श्वेताश्वः श्वेतवाहनः ।
गदापाणिद्विर्बाहुश्च कर्तव्यों वरदः शशी ।[1]

---

१. मत्स्य पु० ६४/१
२. भाग० पु० ५/२२/१०
३. हरिवंश पु० हरिपर्व २५/४–२२
४. महाभारत वन पर्व० १६३/३२
५. मत्स्य पु० १२६ /४७–५०

मंगल देवता

वाराह कल्प में भगवान् वाराह ने रसातल से पृथिवी का उद्वार कर उसको अपनी कक्षा में स्थापति कर दिया था । पृथिवी देवी की उद्विग्नता मिट गयी थी और वे स्वस्थ हो गयी थीं । उनकी इच्छा भगवान् को पति के रूप में प्राप्त करने की हो गयी । उस समय भगवान् वाराह का तेज कोटि सूर्यों के समान असह्य था । पृथिवी की अधिष्ठात्री देवी की कामना पूर्त्यथ भगवान् वाराह अपने मनोरम रूप में आ गये और पृथिवी देवी के साथ वे दिव्य वर्ष तक एकान्त में रहे, उसके पश्चात् वे पुनः वाराह रूप में आकर पृथिवी देवी का पूजन किये ।[१]

उस समय पृथिवी देवी गर्भवती हो चुकी थीं । जिससे मंगल ग्रह का जन्म हुआ । विभिन्न कल्पों में मंगल ग्रह की उत्पत्ति की विभिन्न कथायें हैं । आजकल पूजन प्रयोग में इन्हें 'भरद्वाज' गोत्र कहकर सम्बोधित किया जाता है । गणेश पुराण में भी यह कथा वर्णित है ।

मंगल ग्रह पूजन की बड़ी महिमा है । भौमव्रत में तापपत्र पर भौम यंत्र लिखकर मंगल की सुवर्णमय प्रतिमा प्रतिष्ठित कर पूजन करने का विधान है ।[१]

जिस मंगल को स्वाति नक्षत्र मिले, उसमें भौमवार व्रत करने का विधान है मंगल देवता के नामों का पाठ करने से ऋण से मुक्ति मिलती है ।[२]

अंगारक व्रत की विंधि मत्स्य पुराण के वारहवें अध्याय मे लिखी गयी है । मंगल अशुभ ग्रह माने जाते हैं । यदि वे वक्री न हों तो एक–एक राशि को तीन–तीन पक्ष में भोगते हुए बारह राशियों को पार करते हैं ।[३]

---

१. ब्रह्म वै० पु० २/८/२६–३३

२. ब्रह्म वै० पु० २/८/४३

वर्ण - लालवर्ण हैं और इनके रोम भी लाल हैं ।

वाहन- स्वर्ण निर्मित रथ हैं । लाल वर्ण के अश्व हैं । रथ पर अग्नि से उत्पन्न ध्वज लहराता रहता है । उसी रथ पर आरूढ हो मंगल देवता कभी सीधी, कभी वक्रगति से विचारण करते हैं ।[५]

श्रीतत्वनिधि में इनका वाहन मेष (भेड़) कहा गया हैं इनके अधिदेवता स्कन्द ओर प्रत्यधिदेवता पृथिवी है ।

मंगल का ध्यान निम्न प्रकार है।–

रक्तमाल्याम्बरधरः शक्तिशूलगदाधराः ।
चतुर्भुजः रक्तरोमा वरदः स्याद् धरासुतः ।।[६]

बुध देवता

बुध देवता के पिता का नाम चन्द्रमा और माता का नाम तारा है ।[१]

ब्रह्मा ने इनका नाम बुद्ध इसलिये रखा कि इनकी बुद्धि बहुत ही गम्भीर है ।[२]

ये सभी शास्त्रों के पारंगत हस्ति शस्त्र के प्रवर्तक सूर्य के समान तेजस्वी ओर चन्द्रमा के समान कान्तिमान हैं ।[३]

ब्रह्मा ने ब्रह्मर्षियों के साथ बुध देवता को भूतल के राज्य पर अभिषिक्त किया और ग्रह भी बना दिया ।[४]

---

१. भविष्य पुराण
२. पद्म पुराण
३. भागवत पुराण ५/२२/२४
४. मत्स्य पु० ६४/३
५. मत्स्य पु० १२७/४–५
६. मत्स्य पु० ६४/३

बुध का विवाह मनु पुत्री 'इला' के साथ हुआ ।[५]

इला से 'पुरुरवा' की उत्पत्ति हुई । इस तरह चन्द्र वंश का विस्तार होता गया ।[६]

बुध ग्रह प्रायः मंगल ही करते हैं, किन्तु जब ये सूर्य गति का उल्लंघन करते है । तब आंधी, पानी और सूखे का भय प्राप्त होता है ।[७]

वर्ण पीत - कनेर पुष्प की तरह पीत है ।[८]

वाहन - रथ श्वेत और प्रकाश से दीप्त है । इसमें वायु वेग सदृश पीतवर्ण के दस अश्व जुते हैं जिनके **नाम** - श्वेत, पिशंग सारंग, नील, पीत, विलोहित, कृष्ण, हरित, पूष और पुष्णि हैं ।[९]

सिह भी इनका वाहन वर्णित है ।[१०]

१०. बुध के अधिदेवता और प्रत्यधिदेवता विष्णु हैं । इनका ध्यान निम्न है ——

पीतमाल्याम्बर धरः कर्णिकार समद्युतिः ।
स्रगचर्मगदापाणिः सिहस्थोवरदो बुधः ।।

---

१. अथर्ववेद ५/७/२
२. भाग पु० ६/१४/१४
३. मत्स्य पु० २४/१–२
४. मत्स्य पु० २४/१०
५. महा० अनुशासन पर्व १४७/२६–२७
६. भाग पु० ६/३४–३५
७. भाग पु० ५/२२/१३
८. मत्स्य पु० ६४/४
९. मत्स्य पु० १२७/१–३
१०. मत्स्य पु० ६४/४
११. मत्स्य पु० ६४/४

बृहस्पति देवता

अङिगरापुत्र बृहस्पति देव गुरू है । पुरोहित हैं ।[१] वे अपने प्रकृष्ट ज्ञान से देवताओं को उनका यज्ञ भाग प्राप्त करा देते थे । असुर यज्ञों मे विध्न उपस्थित कर देवताओं को भूखों मार देते थे । ऐसी परिस्थिति में देवगुरु बृहस्पति 'रक्षोध्न' मन्त्रों का प्रयोग कर दैत्यों को दूर भगा देते थे । इस तरह देवताओं को यज्ञ भाग मिल जाया करता था ।[२]

इन्हें देवताओं के आचार्यत्व और ग्रहत्व कैसे प्राप्त हुए ? यह कथा स्कन्द पुराण में वर्णित है। बृहस्पति अपने अभ्युदय के लिये 'प्रभासतीर्थ' जाकर घोर तप करने लगे । उनकी पराभक्ति से भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये । उन्होंने वरदान दिया कि तुम देवताओं के पूज्य गुरू होगे और महत्व भी प्राप्त करोगे ।[३]

बृहस्पति एक–एक राशि पर एक–एक वर्ष रहते हैं । वक्री होने पर उसमें अन्तर आ जाता है।[४]

बृहस्पति स्वयं सुन्दर हैं और इनका आवास भी बहुत सुन्दर है ।[५]

ये विश्व के लिये वरणीय हैं ।[६]

वांक्षित फल प्रदान कर सम्पति और बुद्धि से भी सम्पन्न कर देते हैं और रक्षा भी करते हैं । शरणागत वत्सल हैं । ये आराधकों को सन्मार्ग पर चलाते हैं ।[७]

---

१. तै० सं० ४६/४/१०/१ महाभा० आदि पर्व ७६/६
२. ऋ० २/२३/२
३. स्कन्द पु ७/४७/२–४
४. भाग पु० ५/२२/१५
५. ऋ० ७/६७/७
६. ऋ० ७/६८/४
७. ऋ० २/२३/४

वर्ण- बृहस्पति देवता का वर्णपीत है ।[१]

वाहन- वाहन रथ है जो सुखकर स्वर्णिम और सूर्य के समान भास्वर है ।[२]

इसमें वायु के समान वेग वाले पीतवर्ण अश्व जुते हैं ।

आयुध- गुरु ब्रहस्पति का आयुध सुवर्णनिर्मित दण्ड है ।[३]

परिवार - बृहस्पति की तीन पत्नियाँ शुभा और ममता तथा तारा हैं । शुभा से सात कन्यायें भानु, मती, राका, अर्चिष्मती, महामती, महिष्मती, सिनीबाली और हविष्मती । तारा से सात पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई जिसका नाम स्वा है । ममता से भरद्वाज नाम का एक पुत्र और दूसरा पुत्र कच है। बृहस्पति के दो भाई हैं । बड़े भाई का नाम उतथ्य और छोटे भाई का नाम संवर्त है ।[४]

बृहस्पति की एक बहिन है जिसका नाम वरस्त्री है । ये योगपरायण और ब्रह्मवादिनी हैं तथा इनके पति का नाम 'प्रभासवसु' है ।

बृहस्पति के अधिदेवता इन्द्र और प्रत्यधिदेवता ब्रह्मा हैं । इनका ध्यान निम्न है --

देवदैत्यगुरूतद्वत् पीतश्वैतौ चतुर्भुजौ ।
दण्डिनौ वरदौ कार्यौ साक्षसूत्र कमण्डलू ।।[५]

आचार्य शुक्र

शुक्राचार्य दानवों के पुरोहित हैं ।[१] ये योग के आचार्य हैं । अपने शिष्य दानवों पर इनकी कृपा बरसती रहती है 'मृतसञ्जीवनी विद्या' के बल पर ये मृत दानवों को जिला देते हैं ।[२]

---

१. मत्स्य पु० ९४/५
२. ऋ० ७/९७/६
३. ऋ० ७/९७/७
४. महाभारत आदिपर्व ६६/५
५. मत्स्य पु० ९५/५

असुरों के कल्याणार्थ उन्होंने एक ऐसे कठोर व्रत का अनुष्ठान किया, जिसे आज तक कोई कर नहीं सका था । इस व्रत से इन्होंने देवाधिदेवशंकर को प्रसन्न कर लिया । औढरदानी ने वरदान दिया कि तुम देवताओं को परजित कर दोगे और तुम्हे कोई मार नहीं सकेगा ।

अन्य वरदान देकर भगवान् ने इन्हें धनों का अध्यक्ष और प्रजापति श्री बना दिया ।[३]

इसी वरदान के आधार पर शुक्राचार्य इस लोक और परलोक में जितनी सम्पत्तियाँ हैं सबके स्वांमी बन गये ।[४]

सम्पत्ति ही नहीं वे तो समग्र औषधियों, मन्त्रों और रसों के भी स्वामी हैं ।[५]

इन्होंने अपनी समस्त सम्पत्तियों को अपने शिष्य असुरों को प्रदान कर दिया था ।[६]

उनका सामर्थ्य अद्भुत है।

ब्रह्मा की प्रेरणा से शुक्राचार्य ग्रह बन कर तीनों लोकों के प्राण का परित्राण करने लगे । कभी वृष्टि, कभी अवृष्टि, कभी भय, कभी अभय उत्पन्न कर ये प्राणियों के योग क्षेम का कार्य पूर्ण करते हैं ।[७]

ग्रह के रूप में ये ब्रह्मा की सभा में भी उपस्थित होते है ।[१]

लोकों के लिये ये अनुकूल ग्रह हैं । ये वर्षा रोकने वाले ग्रहों को शान्त कर देते हैं ।

---

१. तै० सं० २/५/८/५, ताण्डव ब्रा० ७/५/२०,

२. महा० आदि पर्व ७६/८

३. मत्स्य पु० आ० ४७

४. महाभार० आदिपर्व ७८/३६

५. मत्स्य पु० ४७/६४

६. मत्स्य पु० ६७ /६५

७. महाभा० आ० प० ६६/४२–४४

इनके अधिदेवता इन्द्र और प्रत्यधिदेवता इन्द्राणी हैं ।

वर्ण- श्वेत वर्ण है ।[3]

वाहन- रथ, जिसमें अग्नि वर्णा अष्ट अश्व युक्त हैं रथ पर ध्वजायें फहराती रहती है ।[५]

आयुध- दण्ड इनका आयुध है ।[५]

परिवार- शुक्राचार्य की दो पत्नियॉ हैं । एक का नाम 'गो' है जो पितरों की कन्या है, दूसरी पत्नी का नाम' जयन्ती' है जो देवराज इन्द्र की पुत्री हैं 'गो' से चार पुत्र त्वष्टा, वस्त्री, शण्ड और अमर्क हैं । जयन्ती से देवयानी नाम की एक मात्र कन्या हुई है ।

शनि देवता

शनि भगवान् सूर्य के पुत्र हैं । छाया (सवर्णा) इनकी माता हैं ।[६]

६. ये क्रूर ग्रह माने जाते हैं । इनकी दृष्टि में जो क्रूरता है, वह इनकी पत्नी के शाप के कारण है ।

बचपन से ही शनि देवता भगवान् कृष्ण के अनुराग में निमग्न रहते थे । वयस्क होने पर इनके पिता ने चित्ररथ की कन्या से इनका विवाह कर दिया ।

पत्नी सती साध्वी और तेजस्विनी थीं । एक रात्रि ऋतु स्नानकर पुत्र–प्राप्ति की अभिलाषा से वह पति के पास पहुँचीं । पति ध्यान में बैठे थे । वाह्य ज्ञान न था पत्नी प्रतीक्षा कर थक गयी। ऋतु काल निष्फल हो चुका था । इस उपेक्षा से क्रुद्ध होकर सती ने शाप दे दिया कि जिसे तुम देख लोगे वह नष्ट हो जायेगा । ध्यान छूटने पर शनि देवता ने पत्नी को मान प्रदान किया ।

पत्नी को स्वयं पश्चाताप हो रहा था किन्तु शाप के प्रतीकार की शक्ति उसमें न थी तभी से शनि देवता सिर नीचा करके रहने लगे कारण वे किसी का अहित नही चाहते थे उनकी दृष्टि पड़ते ही कोई भी नष्ट हो सकता था ।

शनि ग्रह यदि कहीं रोहिणी–शकट भेदन कर दें तो पृथिवी पर द्वादश वर्ष पर्यन्त घोर दुर्भिक्ष पड़ जाय । ज्योतिष शास्त्रानुसारेण शनि ग्रह जब रोहिणी को भेदन कर बढ जाता है, तब यह योग आता है । यह योग महाराज दशरथ के समय आने वाला था। इस योग के आने पर पानी और अन्न के बिना उनकी प्रजा तड़प–तडप कर मर जायेगी, यह दारूण दृश्य महाराज के समक्ष आ गया । प्रजा को इस कष्ट से रक्षार्थ रथारूढ़ हो महाराज दशरथ नक्षत्र मण्डल में जा पहुँचे। प्रथमतः उन्होंने प्रतिदिन की भॉति प्रणाम किया और पश्चात् क्षत्रिय धर्म के अनुसार उन पर सहारास्त्र संधान किया । शनि देवता महाराज की राजोचित कर्तव्य–निष्ठा से प्रसन्न हो कर वर मॉगने को कहा । दशरथ ने वर में माँगा कि यावत् सूर्य–चन्द्र आदि नक्षत्र विद्यमान हैं । आप कभी शकट भेदन न करें । शनि ने तथास्तु कहकर संतुष्ट किया ।

शनि की कृपा देखकर महाराज को रोमाञ्च हो आया । उन्होंने रथ में धनुष छाल दिया और उनकी पूजा की । उसके बाद 'सरस्वती ओर गणेश' का ध्यान कर शनि स्तोत्र[१] की रचना की । इस स्तुति से शनि संतुष्ट हो एक और वर माँगने का आदेश दिया । महाराज ने दूसरे वरदान में माँगा – 'भगवान् ! देवता, मनुष्य, पशु–पक्षी किसी को आप कष्ट न दें। 'शनि देव' ने एक शर्त के साथ यह वरदान भी प्रदान कर दिया । शर्त यह थी कि यदि किसी कि कुण्डली में या गोचर में मृत्यु–स्थान, जन्म–स्थान, अथवा चतुर्थ स्थान में मै रहूँ तब मैं उसे मृत्यु का कष्ट दे सकता हूँ किन्तु यदि वह मेरी प्रतिमा की पूजा कर तुम्हारे द्वारा निर्मित स्तोत्र का पाठ करेगा, तो उसे कभी भी मैं पीड़ित नहीं करूँगा ।

---

१. महाभा० सभा पर्व ११/२६
२. भाग पु० ५/२२/१२
३. मत्स्य पु० ६४/५
४. मत्स्य पु० १२७/७
५. मत्स्य पु० ६४/५
६. भाग० पु० ६/४०/४१

शनि के अधिदेवता प्रजापति और प्रत्यधिदेवता यम हैं । शनि ग्रह एक–एक राशि में तीस–तीस महीने (२ १/२ वर्ष) रहते हैं और तीस ही वर्ष मे सभी राशियों को पार करते हैं ।[२]

वर्ण- कृष्णवर्ण है ।[3]

वाहन- वाहन गीध्र है तथा रथ लौह निर्मित है ।[४]

आयुध- धनुष वाण और त्रिशूल इनके अस्त्र हैं ।

इनका स्वरूप निम्न है —

इन्द्रनील द्युतिः शूली वरदो गृघ्रवाहनः ।
बाणबाणासनधरः कर्तव्योऽर्कसुतस्तथा ।[१]

राहु देवता

राहु की माता का नाम 'सिंहिका' है जो दैत्यराज हिरण्य कशिपु की पुत्री थीं । माता के नाम से राहु को सैंहिकेय भी कहा जाता हैं । सौ भाईयों में सबसे बड़ा राहु ही था । अवस्था में ही नहीं बल में भी राहु सबसे अग्रिम पंक्ति में था । कालान्तर में वह ग्रह बन गया ।[२]

सम्रुद मन्थन से जब अमृतोपलब्धि के पश्चात् राहु छलपूर्वक अमृत–पान के लिये देव पंक्ति में जा बैठा और चन्द्रमा–सूर्य ने भगवान् विष्णु को उसके कपटाचरण का रहस्य बता दिया तो भगवान् ने चक्र से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया, किन्तु अमृत–पान से वह अमर हो गया था ।[3]

इसीलिये ब्रह्मा जी ने उसे ग्रह बना दिया —

"अजो ग्रहमचीक्लृपत ।"[४]

राहु ग्रह मण्डलाकार होता है ।[५]

ग्रहों के साथ राहु भी ब्रह्मा की सभा में बैठता है ।[६]

पृथ्वी की अपनी छाया मण्डलाकार होती है । राहु यहीं भ्रमण करता है ।[७]

राहु ग्रह छाया का अधिष्ठातृ देवता है । ऋ० में वर्णन है कि असूर्या (सिंहिका) का पुत्र राहु जब सूर्य और चन्द्र को तमसाच्छन्न कर लेता है ।

तब इतना अन्धकार छा जाता है कि लोग अपने स्थान को ही नहीं पहचान पाते है ।[१]

ग्रह बनने के बाद भी राहु बैर भाव से पूर्णिमा को चन्द्रमा पर, अमावस्या पर सूर्य पर आक्रमण करता है । उसे ग्रहण या राहूपराग कहते हैं । उपराग के समय अव्रतत्व (अपवित्रता) आ जाता है । जिसका प्रतीकार स्नानादि से किया जाता है ।[२]

वर्ण- राहु ग्रह का वर्ण नीलमेघ के समान है । इसके सिंहासन का वर्ण भी नीला है ।
वाहन- राहु का रथ अन्धकार रूप है । इसे कवचादि से सजाये हुए वायु के समान वेग वाले आठ अश्व खीचते है ।[३]

३. राहु का ध्यान निम्न है ––

'करालवदनः खगवर्मशूली वरप्रदः ।
नीलसिंहासनस्थश्च राहुस्त्र प्रशस्यते ।

राहु के अधिदेवता काल और प्रत्यधिदेवता सर्प हैं ।[४]

केतु देवता

चक्र से कटने पर सिर राहु कहलाया और धड़ केतु । केतु राहु का ही कबन्ध है । केतु बहुत से हैं ।[५]

इनमें धूमकेतु प्रधान है ।[६]

अधिदेवता चित्रगुप्त, प्रत्यधिदेवता ब्रह्मा हैं ।

धूम्रा द्विबाहवः सर्वे गदिनो विकृताननाः ।
गृध्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदा ।।[७]

नवग्रहों के अधिदेवता

सूर्य के अधिदेवता 'ईश्वर'

सूर्य के अधिदेवता ईश्वर हैं । भगवान् शिव का ही एक नाम ईश्वर है । शिव प्रकरण में विवेचित हैं ।

सोम के अधिदेवता 'उमा'

उमा पराशक्ति एवं ब्रह्म हैं । परब्रह्म रूचि के अनुसार कभी पुंरूप में तो कभी शक्ति रूप में उपस्थित होता है । पराशक्ति ने स्वयं कहा है कि 'जिज्ञासुओं, मैं तुम्हें परब्रह्म का उपदेश देती हूँ और वह मैं ही हूँ ।[१]
इसी तथ्य को पुराण ने आलोडित किया है --

वर्ण- केतु का वर्ण धूम्र, आयुध गदा, तथा वाहन गृध्र है।
केतु का ध्यान निम्न है–

---

१. पद्म पु० ब्रत खण्ड ३४/२७–३६
२. भाग० पु० ५/२२/१४
३. मत्स्य पु० ६४/६
४. मत्स्य पु० १२७/८
१. मत्स्य पु० ६४/६
२. भाग पु० ६/६/३७
३. भाग पु० ८/६/२४–२७
४. भाग पु० ८/६/२६
५. महा भा० भीष्म पर्व १२/४०
६. महाभा० सभापर्व १२/२६
७. मत्स्य पु० २८/६१

'एवं सर्वगता शक्तिः सा ब्रहमेति विविच्यते ।'[२]

इनका ध्यान निम्न है --

अक्षसूत्रं च कमलं दर्पणं च कमण्डलुम् ।
उमा विभर्ति हस्तेषु पूजिता. त्रिदशैरपि ।[३]

भौम के अधिदेवता स्कन्द देवता

अग्नि देवता (स्कन्द) भगवान् शंकर की आठ मूतियों में से एक मूर्ति है और स्वाहादेवी उमा का ही रूप है । इन्हीं से स्कन्द स्वामी का जन्म हुआ ।[४]

इनका जन्म तारकवध हेतु हुआ ।

शिव परिवार में इनका विवेचन हुआ है ।

बुध के अधिदेवता विष्णु देवता

प्रत्येक ब्रह्माण्ड के संचालक तीन देवता होते हैं, उनमें एक विष्णु हैं । परब्रह्म परमात्मा त्रिदेव के रूप में अवतीर्ण होते हैं । इन्हीं विष्णु भगवान् की नाभि से कमलरूप ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ, उससे ब्रह्मा और ब्रह्मा से सारी प्रजायें उत्पन्न हुईं ।[१] विष्णु प्रकरण में सम्यक् विवेचन हो गया है ।

१. ऋ० ५/४०/५
२. ऋ० ५/४०/६६
३. मत्स्य पु० १२७
४. मत्स्य पु० ६४/७
५. मत्स्य पु० ६४/८
६. वायु पु० १५३/१०
७. मत्स्य पु० ६४/८

ब्रह्मा - बृहस्पति के अधिदेवता

ब्रह्माजी का प्राकट्य विष्णु भगवान् के नाभि कमल से हुआ । ब्रह्मा ने सकल सृष्टि रचना का कार्य किया । ब्रह्म प्रकरण में इनका सम्यक् विवेचन किया गया है ।

देवराज इन्द्र शुक्र के अधिदेवता

देवराज इन्द्र की शक्ति की कोई इयत्ता (सीमा) नहीं है । इन्द्र यद्यपि वैदिक देवता हैं । अग्नि के पश्चात इन्द्र ही वेदों में स्थान प्राप्त किये हैं तथापि पौराणिक स्वरूप भी कम नहीं है । जब राहु के उपराग से सूर्य प्रकाशहीन हो जाते हैं । तब देवराज इन्द्र इस असुर को पराजित कर सूर्य को प्रकाश युक्त कर देते हैं ।[२]

सूर्य के न रहने पर ये सूर्य बनकर तपते हैं और चन्द्रमा के न रहने पर स्वयं चन्द्रमा बनकर जगत् को आप्यायित करते है । इसी प्रकार आवश्यकता पड़ने पर पृथिवी, जल, अग्नि, वायु बनकर स्थिति बनाये रखते हैं ।[3]

संतुष्ट हो जाने पर इन्द्र समस्त प्राणियों को बल, तेज, सन्तान, और सुख प्रदान करते तथा उपासकों की समस्त कामनाओं की पूर्ति करते हैं । ये दुराचारियों को दण्ड देते और सदाचारियों की रक्षा करते हैं ।

महर्षि कश्यप की पत्नी 'अक्षिति' से इनका जन्म हुआ था ।[१]

---

१. ऋ० १०/१२५/४ सायण भाष्य

२. देवी भागवत ११/४/४६

३. श्रीतत्वनिधि

४. महाभा० वनपर्व ३१/६/२६–३०

इन्द्रतीर्थ में इन्होंने शत् यज्ञ किये जिससे इनका नाम 'शतक्रतु' हुआ ।[२]

ये भूः भुवः स्वः इन तीन लोकों के अधिपति हैं । इनकी पत्नी का नाम 'शची' है । पुत्र का नाम जयन्त तथा पुत्री का नाम जयन्ती है । ऐरावत श्वेत हाथी वाहन है ।

ब्रह्माण्ड में चार दिव्य सभायें विख्यात हैं । उनमें ब्रह्मा की सभा के पश्चात् इन्द्र की सभा सर्वोत्तम मानी गयी है । इसमें जरा, शोक, थकान, आतंक और भय का प्रवेश नहीं होता । यह समस्त ऐश्वर्यों एवं शोभाओं से सम्पन्न हैं । यहाँ प्रवेश प्राप्त करना बहुत पुण्य से ही सम्भव है । राजाओं में हरिश्चन्द्र जैसे कुछ तपः भूत ही वहाँ प्रवेश प्राप्त करने के अधिकारी हैं ।[३]

इनका ध्यान निम्न है --

श्वेतहस्ति समारूढ़ं वज्रांकु शलसत्करम् ।
सहस्रनेत्रं पीताभमिन्द्रं हृदि विभावये ।[४]

यमदेवता शनि के अधिदेवता

यमदेवता भगवान् विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र हैं ।[१]

पिता के नाम पर इनके लिये बार-बार वैवस्वत शब्द का प्रयोग हुआ है । इनकी माता का नाम 'संज्ञा' है ।

यम देवता हमारे सकल शुभाशुभ कार्यों को जानते हैं । वे पूर्ण ज्ञानी है, इनमें कोई त्रुटि नहीं आ पाती हैं ।

इनके लोक में निरन्तर अनश्वर ज्योति जगमगाती रहती है। यह लोक स्वयं अनश्वर है ओर इसमें कोई मृत नहीं होता है।[३]

---

१. महाभारत भीष्म पर्व ६७/१६

२. ऋ० ८/३/६

३. महा० वन पर्व २२६/८-११

यम की बहिन यमी ही यमुना है। [४]

४. 'यमी' ओर 'तपती' दोनों बहनें आज भी जनता का कल्याण कर रही है। यमी उत्तर भारत को तो तपती दक्षिण भारत को तृप्त कर रही है। [५] इनका स्वरूप निम्न हे।–

रक्तदृक् पशहस्तश्च यमौ महिषवाहनः।
कालः करालबदनः नीलाङश्चाति भीषणः।। [६]

काल राहु के अधिदेवता

हिरण्यगर्भ की उत्पति के अवसर पर भगवान् ने अपने अंशरूप काल को भी प्रकट किया था।

इसीलिये काल देवता भगवान् के पुत्र कहे जाते है। [७]

इनका काम समय पर सबका संहार करना है।

अस्तुः भगवान् राम ने इन्हें 'सर्वसंहार ' कहकर सम्बोधित किया । [१]

कुछ लोग काल को पच्चीसवां तत्वं स्वीकार करते थें इस पर श्रीमद्भागवत पुराण ने निर्णय दिया है कि काल कोई पृथकृ तत्व न होकर भगवान् की ही शक्ति है। [२]

शक्ति और शथ्क्त मान् में भेद न होने के कारण भगवान् ही काल कहे जाते है भगवन् श्री कृष्ण ही कालरूप से अवतीर्ण हुए। [३]

जिस प्रकार नदियों की धारा परम्परा अवाधित गति से आगे बढती रहती हैं । उसी प्रकार भगवान् कालरूप से काल की धारा को प्रवाहित करते रहते हैं। [४]

---

१. महा० आदिपर्व ६५/११–१६
२. महा० शल्यपर्व ४६/२–४
३. महाभा० सभापर्व ७/११
४. श्रीतत्वनिधि।

ब्रह्मारूप होने से काल को ब्रह्मा आदि देवताओं पर शासन चलता है।[५]

काल स्वयं अविनाशी है किन्तु दूसरों का नाश करता हैं स्वयं अनन्त है किन्तु, दूसरों का अन्त करता है। मृत्यु काल की संहार शक्ति है।

विश्व में जितने छोटे मोटे पदार्थ है। सब काल के अधीन हैं। जितने भावभाव पदार्थ है। सब काल के द्वारा नष्ट होते है।[६]

स्वभूत होने के कारण जैसे वेद भगवद्रप है, वैसे काल को भी वेद रूप माना गया है।[७]

७. इनका स्वरूप निम्न है–

कालः करालवदनों नीलांगश्चातिभीषणः।
पाशदण्ड धरः कार्यः सर्पवृश्चिकरोमवान्।[१]

चित्रगुप्त - केतु के अधिदेवता

सृष्टि की प्रारम्भ बेला में पितामह ब्रह्मा ध्यान मग्न थें। कुछ दिनों के पश्चात् उनके सम्पूर्ण शरीर से एक दिव्य पुरूष प्रकट हुए। उनके एक हाथ मे दावात और दूसरे हाथ में लेखनी थी । ये दिप्व्य पुरूष चित्रगुप्त कहलायें।

पितामह ब्रह्मा ने चित्रगुप्त देवता को –

---

१. वाल्मीकि रामायण अ० का० १०४/१६
२. भाग पु० ३/२६/१५–१६
३. भाग पु० १/१३/४८
४. भाग पु० ८/१७/२८
५. भाग पु० ३/२६/४
६. महा० अनु० १/५१–५६
७. भाग० पु० ५/२२/२

प्राणियों में सत्कर्म ओर असत्कर्म के लेखाजोखा लिखने को कार्य सौपां । ये यमराज देवता के समीप ही स्थित रहते हैं। यमराज मृत व्यक्ति के पाप–पुण्य का लेखाजोखा इनसे पूंछ कर उस व्यक्ति के फलभोग का निर्णय करते है।। 'बाहीक' नामक एक दुर्वृत ब्राह्मण जब यमदूतो के द्वारा यमराज के पास लाया गया तब यमराज के पूछने पर चित्रगुप्त ने उस मृत व्यक्ति के गर्भाधान से लेकर मृत्युतक का लेखा जोखा सुनाया। [२]

चित्रगुप्त का ध्यान निम्न प्रकार है–

अपीच्यपवेशं स्वाकारं द्विभुज सोम्यदर्शनम।
दिक्षणे लेखनी' चैच दधद् वामे च पत्र कम।।
पिंगलश्मश्रुकेशाक्षं चित्रगुप्त विभावयेत् ।। [३]

चित्रगुप्त देवता का वेश बहुत ही सुन्दर है, स्वरूप सुन्दर है।। सौम्यदर्शन है। दाहिने हाथ में लेखनी ओर बाये मे लेखा–जोखा का कागज है। इन केश्मश्रु, केश और नेत्र पीतवर्ण है।

ग्रहों के प्रत्यधि देवता

अग्नि देवता सूर्य के 'प्रत्यधिदेवता'

---

१. ऋ० १०/१४/१
२. ऋ० १०/१४/२
३. ऋ० ६/११/७
४. हरिवंश पु० १/६/४
५. भविष्य पुराण
६. श्रीतत्व निधि
७. वाल्मीकि रामा० उ० का० १०४/२

भगवान् के श्री मुख से अग्नि देवता की उत्पत्ति हुई है। [१]
अग्नि देवता ब्रहमाण्ड में व्याप्त है। [२]

वे भिन्न भिन्न स्थलों में भिन्न भिन्न रूप से स्थित रहते है। पार्थिव अग्नि के रूप में वे काष्ठ के ईधन से मध्यम अग्नि के रूप में जल के ईधन से और उत्तम अग्नि के रूप में गैस से उत्पन्न होते है। पार्थिव अग्नि का जो ईधन काष्ठ है इससे विद्युत अग्नि का उपशम होता है। और विद्युदग्नि का ईधन जो जल है उससे पार्थिव अग्नि बुझती हे। अग्नि की इस व्यायकता ओर जीवन के लिये अबाधित आवश्यकता को ध्यान में रखकर
'अग्निः सर्वा देवताः।[४]

इस श्रुति का उदरण देकर बताया गया है। कि अग्नि ही सब देवता है। अग्नि देवता सभी के जीवन में अनुस्यूत है। इनके बिना किसी कोक जीवन ही सम्भव नहीं।

अग्निः देवता से ही ऋग्वेद का प्राकव्य हुआ है। [५]

अग्नि पुराण भी इनकी ही देन है। अग्नि देवता निज उपासकों पर विशेष ध्यान रखतें है। जो इन्हें हव्य या भोज्य पदार्थ (अर्पित करता है। उस पर इनकी अपार कृपा दृष्टि रहती है। [६]

अग्नि देवता की पत्नी का नाम स्वाहा है। जिससे इन्हें तीन पुत्र –पावक, पवमान और शुचि हुए।

---

१. श्रीतत्व निधि
२. स्कन्द पु० काशी शण्ड २८/५०–५६
३. श्रीतत्व निधि।

मत्स्य पुराण के ५१ (इक्यावनवें) अध्याय में इनकी पूर्ण वंशवली वर्णित है। इनका ध्यान निम्न हैं–

पिगभ्रूश्मश्रु केशश्च पिडाक्षस्त्रित योडरूणः।
छागस्थः साक्षसूत्रश्च वरदः शक्ति धारकः।। [१]

अप् देवी सोम के प्रत्यधिदेवता

अपने भक्तों को आनन्द प्रदान करने के लिये अप् देवी अनेक पावन रूप बना लेती है। एक रूप में ये इन्द्र आदि देवताओं के स्थान में पहुँच जाती है। और उनका प्रिय कार्य सम्पन्न कर डालती है। [२]

अप् देवी ही वर्षा का मूल साधन है। इसी जल को सूर्य देवता अपनी रश्मियों से आकृष्टकर अन्तरिक्ष में पहुचाते है और इन्द्र देवता वज्र से विदीर्ण कर उसे बरसा देते हैं इस तथ्य से प्रभावित होकर उपासक अपदेवी से प्रार्थना करते हे कि हे देवि। आप हमें इसी तरह कल्याण प्रदान करती रहें–

"ऊँ यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।" [३]

वरूण, सोमादि देवता जल के रहने पर ही अन्न से आनन्दित हो पाते है। लौकिक माता जैसे अपने शिशुओं की सफाई कर उन्हें स्वच्छ बना ये रखती है। वैसे ही ये भी मनुष्यों के पापों को दूर भगा देती है। अतः उपासक प्रार्थना करते है। हे माता। आप हमें इतना पवित्र बना दें कि स्वर्गादि लोकं सुलभ हो जाये। [४]

---

१. ऋ० १०/९०/१२ यजुर्वेद ३१/१२
२. कठोषनिषद २/२/६
३. निरूक्त (दैवत काण्ड)
४. ऐतरेय ब्राहमण २/३
५. मनुस्मृति १/३
६. ऋ० १०/७६/५

कारणरूप से तो ये हिरण्यगर्भ से भी पूर्व विद्यमान रहती हैं। इन्हीं पर ब्रहमाण्ड तैरता रहता है। जिसमें देवताओं आदि सम्पूर्ण जीवों की समष्टि हिण्य गर्भ विद्यमान रहते है। [१]

इनका ध्यान निम्न है–

आपः स्त्री रूप धारण्यः श्वेता मकरवाहनाः।
दधानाः पाश कलशौ मुक्ताभरण भूषिताः।। [२]

पृथिवी देवी -भौम के प्रत्यधिदेवता

पृथिवी पर सब कुछ उत्पन्न होता है और पृथिवी में ही लीन हो जाता हैं स्थावर और जगमसब की स्थिति का कारण पृथिवी है। अतः पृथिवी ही सबका परमआधार है। [३]

पृथिवी माता पर्वतों को संभालती औषधियों को उगाती ओर धरा को उर्वरा बनाती हैं। [४]

पृथिवी की अधिष्ठात्री पर सुन्दरी देवी है। [५]

यह गौरवर्ण है। [६]

वाराहकल्प में पृथिवी देवी मूर्तिमान रूप में प्रकट हुई थी। भगवान् वाराह से इनका विवाह हुआ था। भगवान् मनोरम रूप धारण कर पृथिवी देवी के साथ एक दिव्य वर्ष पर्यन्त एकान्त में रहे। पश्चात् पुनः वाराहरूप धारणकर पृथिवी देवी की षोडशोचार पूजा की और कहा कि मनु , देवता, सिद्ध, मानव– ये सभी तुम्हारी पूजा करेगे। [७]

१. श्रीतत्वनिधि,
२. ऋ० ७/४७/३
३. ऋ० ७/४३/५
४. ऋ० १०/१७/१०

पृथिवी देवी ने समय पर मंगल ग्रहनामक एक दिव्य पुत्र को जन्म दिया। इनका ध्यान निम्न है–

शुक्लवर्णा मही कार्या दिव्याभरण भूषिता।
चतुर्भुजा सौम्यवपुख्व्चण्डांशुसदृशाम्बरा।।
रक्तपात्रं शस्यपात्रं पात्र मोषधिसंयुतम्।
पभं करे च कर्तव्यं भुवौ यादवन न्दन।
दिग्गजाना चतर्णा सा कार्या पुष्टगता तथा।[१]

विष्णु देवता - बुध के प्रत्यधिदेवता

इनका सम्यक् विवेचन पूर्वतः किया गया है।

इन्द्र देवता- बृहस्पति के प्रत्यधि देवता

इन्द्र का भी सम्यक् विवेचन हो गया है।

इन्द्राणी देवता शुक्र की प्रत्यधिदेवता

वेद की अनेक ऋचाओं में माता इन्द्राणी (शची) का उल्लेख प्राप्त होता है। एक ऋचा में स्वयं देवराज इन्द्र ने शची की प्रशंसा में कहा है कि विश्व में जितनी सौभाग्यवती नारिया है, उनमें मैने इन्द्रणी को सबसे अधिक सौभाग्यतही सुना है।[२]

---

१. ऋ० १०/१२१/७
२. श्रीतत्वव निधि,
३. महा० भीष्मपर्व ४/२०,
४. ऋ० ५/८४/१,
५. ब्रह्मावैवर्त्त पु० प्रथम खण्ड /८
६. ऋ० ५/८४/३
७. ब्रहमवैवक्त पु० १ खण्ड /८

शची अन्तर्यामिनी है। जैसे सभी अवयवों में सिर प्रधान होता है तदवत् माता शची सबमें प्रधान है। [3]

वे षोडश शक्तियों में एक शक्ति मानी गयी हैं। [4]

इनकी रूप सम्पति पर मुग्ध होकर देवराज इन्द्र ने इनसे विवाह किया था। इन्द्र को ये बहुत ही प्रिय है–

" इन्द्राणी ह वा इन्द्रस्य प्रिया पत्नी।"[1]

शची इन्द्र की सभा में उनके साथ सिंहासन पर बैठती है। [2]

शची लक्ष्मी के समान प्रतीत होती है। वे पति ब्रताओं में श्रेष्ठ और स्त्री जाति की आदर्श है। [3]

इनका ध्यान निम्न है–

दिव्यरूपां विशालाक्षी शुचिकुण्डल धारिणीम्।
रक्तमुक्ता द्यलकारां शचीमावाहयम्हम्। [4]

प्रजापति- शनि के प्रत्यधिदेवता

प्रजापति शब्द का अर्थ होता है– प्रजानाम् पतिः अर्थात् प्रजाओं का पति। इस शब्द का प्रथम प्रयोग ब्रह्मा जी के लिये हुआ है।

विरिञ्चिर्यत्र भगवांस्तत्र देवी सरस्वती।
भारती यत्र यत्रैव तत्र तत्र प्रजापतिः।।

१. श्रीतत्वनिधि,
२. ऋ० १०/८६/११
३. ऋ० १०/१५६/२
४. ब्रह्माण्ड पु० ४/४४/८४

प्राणियों में सर्वप्रथम ब्रहमाजी ही उत्पन्न हुए है। इनसे समस्त प्रजायें उत्पन्न हुई है–

सप्त ऋषि और चतुर्दश मनुओं को मिला कर इक्कीस को प्रजापति कहा गया है–

"ततः प्रजानां पतयः प्राभवन्नैक विशतिः।" [१]

महाभारत शान्ति पर्व में २१ प्रजापतियों के नाम वर्णित है–

ब्रह्मा, रूद्र, मनु, दक्ष, भृगु, धर्म, तप, यम, मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, परमेष्ठी, विवस्वान, सोम, कर्दम, क्रोध और विक्रीत । [२]

ये सभी पतियों के पति और प्रजापतियो के भी प्रजापति है। इनको जानने वाला भी पिता का पिता अर्थात् परमात्मा हो जाता है– [३]

इनका ध्यान निम्न है–

हंसयानेन कर्तव्यों नं च कार्यश्चतुर्मुखः।
सावित्री तस्य कर्तव्या वामोत्सगता शुभा।।
ब्रहमोक्तं परमं कार्य रूप सर्व प्रजापतेः।
यज्ञोपवीती हंसस्थ एक वक्त्रस्चतुर्भुजः।
अक्षस्रजं स्रुवं विभ्रत्कुण्डिकापुस्तकं तथा।। [४]

सर्प (नाग) देवता- राहु के प्रत्यधि देवता

कुछ सर्प भूमि पर कुछ अन्तरिक्ष में तथा कुछ द्युलोक में रहते है। [५] द्युलोक के दीप्त स्थलों में रहने वाले ये सर्प दिव्य होते है। उन्हें हम नही देख सकते है।

---

१. शतप ब्रा० १४/२/१/८

२. महा० भा० सभा पर्व ७/४

३. महा० भा० सभा पर्व ७/४

४. श्रीतत्व निधि,

वे इतने दिव्य होते है। कि सूर्य किरणों में भी रह लेते है।[१]

कपितय अपनी दिव्यता से वाण का रूप भी धारण कर लेते है ।[२]

इन सर्पो की भी पूजा की जाती है। इन्हें मधु, हवि प्रदान,किया जाता है।[३]

नाग शब्द सर्प का पर्यायवाची है। इस नाम से भी इनकी पूजा की जाती है।[४]

इन सर्पो में कुछ का आकार कमर के ऊपर मनुष्य का, नीचे का सर्प की तरह होता है।[५]

भौतिक सृष्टि की आरम्भ बेला थी। पितामह ब्रह्मा सृष्टि वृद्धि के लिये सतत सचेष्ट थे किन्तु आशानुरूप सफलता नहीं मिल रही थी। इससे वे चिन्तित होकर हाथ पैर फैलाकर लेट गये । अन्ततः इस भोगमय शरीर का उन्होंने परित्याग कर दिया। उस शरीर से जो बाल झड़ कर गिरे थे वे ही 'अहि' हो गये । हाथ– पैर सिकोड कर सरकने लगे इसलिये 'सर्प और नाग' कहलाये।[६]

इस तरह सर्पो की आदि सृष्टि ब्रह्मा जी की शरीर से ही हुई कालान्तर में 'कद्रू' सर्पो की माता बनी। इसके कद्रू के पतिदेव प्रजापति 'कश्यप' थे। प्रारम्भ में कदू ने एक सहस्र अण्डों को जन्म दिया, जिन्हें फोड कर एक सहस्र नाग पुत्र उत्पन्न हुए।[७]

अनन्त वासुकि, तक्षक, कर्कोटक , शंख, कुलिक, पद्म, महापद्म– ये प्रधान नाग माने गये है।

---

१. महा० भा० आदिपर्व १/३३

२. महा० भा० शान्तिपर्व ३३४/३५–३६

३. यजु० ३२/६

४. श्रीतत्वनिधि

५. यजु० १३/६

देवताओं में जो अणिमादि सिद्धियाँ रहती है। वे सर्पो में भी रहती है।

ब्रह्मा देवता - केतु के प्रत्यधिदेवता

ब्रह्मा जी का भी सम्यक् विवेचन पूर्व में ही किया जा चुका है।

---

१. यजु० १३/८

२. यजु० १३/७

३. तै० सं० ३/१/१/६

४. शांखायन गृहयसूत्र ४/६/३

५. मत्स्य पुराण ६४/४८–४६

६. भाग० पु० ३/२०/४७–४८

७. महा० भा० आदि पर्व १६/८/१५,

अध्याय १२

शोध प्रबन्ध का उपसंहार

शोध प्रबन्ध का उपसंहार

पुराण साहित्य अनन्त महासागर हैं इसमें नाना प्रकार के अनमोल रत्न भरे हुए है। पुराणों का देवशास्त्रीय अध्ययन करना सहज कार्य नही हे। पुराण स्वयमेव देवरूप ही है। इनमें से किसी देव को अलग कर के आँकना मूल्याकन करना पामरों का ही कार्य होंगा। एक ही पुराण पर देव शास्त्रीय अध्ययन सहज नही तथापि सकल पौराणिक साहित्य का अध्ययन तो बिना पुराण पुरुष कृपा के सम्भव नहीं है।

पुराण शब्द की व्युत्पत्ति, इतिहास–पुराणों का समन्वय पुराणों लक्षण और पुराणों का देव शास्त्रीय विभाजन, संख्यात्मक एवं संहितात्मक स्वरूप का सम्यक् चित्रण करके अवतार को लिया गया है।

ब्रह्मा का प्राकट्य (अवतार) सज्जनों के रक्षणार्थ और दुष्टों के संहारार्थ हुआ करता है। भगवद् वचन है कि –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम।
धर्म संस्थापना र्थाय सम्भवाभि युगें युगें।। [१]

इस प्रकार परम प्रभु कभी राम के रूपमें कभी कृष्ण के रूप में आते हैं, तो कभी वाराहबन कर भी पृथिवी का उद्धार किया करते है। भगवदावतारों की संख्या २४ मानी गयी है। जिसमें १० अवतारों की प्रधानता ही प्रशसनीय सर्वत्र हैं । शेष १३ अवतारों की गणना तो गौण ही है।

२४ वाँ अवतार कल्किका अभी सम्भाव्य है।

---

१. भगवत गीता –४/७–८

विदेव – ब्रह्मा–स्रष्टा

विष्णु–पालक

शिव– संहर्त्ती

है तथापि पञ्चदेवता ब्रह्मा विष्णु–महेश के अतिरिक्त गणेश और शक्ति की भी प्रधानता है। पञ्चदेव पूजन में जो देव प्रधान होता है। वह मध्य में स्थान प्राप्त करता है। और ब्रह्मा के स्थान पर सूर्य आते हैं। यथा

२ विष्णु ३ महेश

१ शक्ति

४ गणेश ५ सूर्य

यह क्रम शक्ति का है। इसी प्रकार यदि विष्णु की प्रधानता होगी तो विष्णु मध्य में आयेगे और मध्य में कोई दूसरा देवता विराजित होता है।

अवतार का प्रयोजन समय समय पर बदलता रहता हैं। प्रत्येक अवतारों के पीछे जो नाम करण हुआ है, उससे नाम ओर कर्म दोनों ही ध्वानित हो जाते है। स्रष्टाब्रह्मा का स्थान तो प्रथम आता है किन्तु कालान्तर में ब्रह्मा जी का महत्व क्षीण हो गया । यहाँ तक कि पूजन में भी ब्रह्मा का लोप सा हो गया । यद्यापि ब्रह्मा का वरण होता है किन्तु ब्रह्मा के मंदिरा, उनके भक्तों का`कोई भी वर्णन या दर्शन आज नही हो रहा है।

सम्पूर्ण पुराण साहित्य में पुराण पुरुष रूप में जगदवन्द्य विष्णु ही व्याप्त है। इन के समक्ष सभी देव सन्तन हीन से है। जब जब देवों पर आपत्ति आती है, आप ही कोई न कोई स्वरूप धारण कर न केवल देवताओं की विपत्ति हरते हैं वरन् उनकी सत्ता पुनः स्थापित करते है। यदि आप को अलग कर दिया जाय तो पुराण का देव शास्त्रीय पक्ष शून्य हो जाता है। देवराज इन्द्र तो कहने को देवेन्द्र है तथापि भूयो भूपः स्वकर्मकश विपतिग्रत होते ही रहते है। यह भगवान् विष्णु की ही कृपा है कि वे बार बार विपत्ति से त्राण प्राप्त कर लेते है। और देवेन्द्र पद अक्षय बना रहता है।सृजन पालन के साथ संहार भी आवश्यक है अन्यथा प्रकृति अंसतुलित हो उठेगी। इस में कोई समस्या न बने

इसके लिये शिव जी संहार का कार्य सम्पादित करते है। स्वयं श्मशान प्रिय होने के कारण सभी को श्मशान गामी होने को बोध भी कराते रहते है।

गणेश गणों के स्वामी ही है। कोई भी ऐसा गणन ही हैं जिसके स्वामी विघ्नहती गणेश जी न हों विघ्न बिनायक इन का नाम हैं। इनके प्रथम पूजन मात्र से ही समस्त विघ्ने टल जाती है और आपकी कृपा से सर्वत्र मंगल हो जाता हैं।

सूर्य भगवान् प्रकाश के स्वामी हैं चराचर जगत् के प्राण हैं–

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।'

सूर्य के बिना कोई भी प्राणी क्षणमात्र भी जीवन धारण नही कर सकता है। कर्मो के साक्षी है ओर कर्म मं प्रवृत्त भी करते हैं। शक्ति के बिना तो कुछ भी सम्भव नहीं हैं। शक्ति के ही नाम श्री दुर्गा ,काली, तारा, लक्ष्मी–सरस्वती आदि हैं। शक्ति और शक्तिमान् में नित्य अभेद रहता है। सबसे प्रथम गायत्री माता का परिचय होने के पश्चात् सरस्वती का क्रम आता हैं। सभी एक शक्ति के विविध रूप एवं नाम है–

एकैव शक्तिः परमेश्वरस्य
व्यवाहार काले बहुंधा वदन्ति।

और भी श्री माता जी का कथन है कि –

'कः ममापूरा'

अर्थात् मै अकेली ही हूँ सभी मेरी ही विभूतियों हैं। आवश्यकतानुसार सभी प्रकट और तिरोहित हो ही रहती है। इस प्रकार शक्तियों का भी सम्यक् निरूपण किया गया है–

पञ्चलोकपालों में –

१. गणेश जी
२. श्री दुर्गा जी
३. वायुदेवता

४. आकाश देवता और

५. अश्विनी कुमार

इन समस्त देवों का सम्यक् विवेचन एवं महत्व प्रतिपादन करेने के पश्चात् नवग्रहमण्डल के देवताओं का भी विवेचन किया गया है। सभी ग्रह अनके अधिएवं प्रत्यधि देवताओं का वर्णन करने के पश्चात् दस दिकपालो को लिया गया हैं। क्रमशः इन्द्रादि सभी दिक्पालों का उनके वैशिष्टय के साथ उनका वैचित्र्य प्रतिपादित करने का प्रयास हुआ है।

यद्यपि कोई भी दावे के साथ नही कह सकता कि मैने समस्त देवशास्त्र का अध्ययन पूर्ण कर लिया हैं तो मै ही कैसे यह कहने का साहस कर सकती हूँ ।

हर अनन्त हरि कथा अनन्ता।
की भॉति देवशास्त्र का अवगाहन करना सहज गम्य नहीं है तथापि उनकी कृपा से जो कुछ भी मेरी बुद्धि में आ सका है। सब कुछ करने का प्रयास किया गया हैं। देवों के देव शास्त्रीय अध्ययन भविष्य में भी होगा और होता चला आ रहा है। और बहुत से अनहुये पक्ष अभी भी उजागर होने को शेष है। यह शाश्वत प्रक्रिया है।

सहायक ग्रन्थ-सूची

अथर्ववेद संहिता - श्रीपाद भारत मुद्रणालय, सतारा, बम्बई ।

अमरकोष - झा विश्वनाथ, (प्रका०) मोती लाल बनारसीदास, छठवां संस्करण ।

ऋग्वेद संहिता - सायण, (प्रका०) भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, १९७२ ।

अग्नि पुराण - व्यास – १ संस्करण – शास्त्री जगदीश (प्र०) मोती लाल बनारसी दास, वाराणसी ।

ऐतरेय अरण्यक - पिल्लई के० राघवन् (प्र०) अनन्त शयन संस्कृत ग्रन्थावली, गन्थ्र सं० २२१, १९६८ ई० ।

कल्कि पुराण - १ संस्करण, (व्यास) शास्त्री विश्वनाथ नारायण (प्र०) चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १९७२ ई० ।

ईशादि नौ उपनिषद् संग्रह - *व्याख्याकार* – गोयन्दका हरिकृष्ण दास, गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर, १३वाँ संस्करण, सं० २०५० ।

कूर्म पुराण - १ संस्करण, (व्यास) (सं०) आचार्य शर्मा श्रीराम, संस्कृत संस्थान, ख्वाजा कुतुब, बरेली, उ०प्र० ।

गीता - ११वाँ संस्करण, जालान, घनश्याम दास, गीताप्रेस, गोरखपुंर ।

गरुण पुराण - (व्यास) पोद्दार हनुमान प्रसाद, गीताप्रेस, गोरखपुर, उ०प्र० ।

गणेश पुराण - (प्र०) मिश्र, ज्वाला प्रसाद, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।

नारद पुराण - (व्यास) सं० पोद्दार हनुमान प्रसाद (प्रका०) गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर ।

पद्मपुराण - (व्यास) (सं०) पोद्दार हनुमान प्रसाद (प्रका०) गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर ।

ब्रह्म पुराण - (व्यास) १ संस्करण, सं० मोती लाल बनारसी दास, वाराणसी ।

ब्रह्माण्ड पुराण - (व्यास) १ संस्करण, शास्त्री जगदीश, मोती लाल बनारसी दास, वाराणसी, १६७२ ई० ।

ब्रह्म वैवर्त्त पुराण - (व्यास) सं० मिश्र ज्वाला प्रसाद, खेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश प्रेस, बम्बई ।

भागवत पुराण -- (व्यास) *व्याख्याकार* – द्विवेदी – शान्तनु कुमार, प्र० गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर, तीसरा संस्करण, १६६० ई० ।

भविष्य पुराण -- (व्यास) *अनुवादक* – उपाध्याय पं० बाबू शास्त्री प्रभात राम (प्रकाशक) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद, सन् १६६५ ई०, १ संस्करण।

मत्स्य पुराण -- (व्यास) प्र० पोद्दार हनुमान प्रसाद गीता प्रेस, गोरखपुर

मार्कण्डेय पुराण -- (व्यास) प्र० पोद्दार हनुमान प्रसाद, गीता प्रेस, गोरखपुर

वायु पुराण -- (व्यास) सं० पोददार हनुमान प्रसाद (प्र०) गोविन्द भवन कार्यालय, गीता प्रेस गोरखपुर।

वामन पुराण -- (व्यास) सं० पोद्दार हनुमान प्रसाद (प्र०) गोविन्द भवन कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर।

वाराह पुराण -- (व्यास) (स०) पोद्दार हनुमान प्रसाद (प्र०) गोविन्द भवन कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर।

विष्णु पुराण -- (व्यास) *अनुवादक* – गुप्त मुनिलाल (प्र०) गोविन्द भवन कार्यालय गीताप्रेस, गोरखपुर २० वाँ संस्करण, सं० २०५५ ।

लिंग पुराण -- (व्यास) (सं०) पोद्दार हनुमान प्रसाद, गीताप्रेस गोरखपुर, सन् १६६० ई० ।

शिवपुराण -- (व्यास) (सं०) पोद्दार हनुमान प्रसाद (प्रा०) गोविन्द भवन कार्यालय गीताप्रेस, गोरखपुर, ५ वाँ संस्करण, सं० २०५५ ।

स्कन्द पुराण -- (व्यास) सं० मोतीलाल बनारसी दास वाराणसी, सन् १६६८ ई० ।

देवी भागवत पुराण -- (व्यास) (*अनुवादक*) पाण्डेय रामतेज (प्रा०) गीताप्रेस, गोरखपुर, सन् १६६० ई०, २ संस्करण ।

निरूक्त -- यास्क (प्र०) मेहरचन्द्र लक्ष्मण दास, २७३६, कर्मविला, दरियागंज, नयी दिल्ली—६ ।

श्री दुर्गासप्तशती -- (प्र०) सं० स्वामी मूर्खारण्य (विद्यारण्य) स्वामी तत्व—वोधाश्रम, आगम—निगम शोध संस्थान, सीहोर, म० प्र०, सन् १६८७ ई० ।

ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य -- (वादरायण) शास्त्री मदनन्त कृष्ण (प्र०) चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १६८२ ई० ।

बृहद्धर्म पुराण -- भट्टाचार्य श्रीचक्रेश्वर, श्री कालीचरणपाल, नवजीवन प्रेस ६६, ग्रेस्टीट, कलकत्ता—६, १६७० ई० ।

यजुर्वेद -- सं० (मू०प्र०) सरस्वती स्वामी दयानन्द, सार्वदैशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द भवन, रामलीला मैदान, नई दिल्ली ।

रामायण - वाल्मीकि -- गोरखपुर गीताप्रेस, गोरखपुर, १६६६ ई० ।

रामचरितमानस - गोस्वामी तुलसीदास -- गीता प्रेस, गोरखपुर, १८७५, ५० संस्करण ।

महाभारत - व्यास -- सं० गीताप्रेस, गोरखपुर, १६८० ई० ।

वैदिक धर्म का उद्‌भव एवं विकास -- डॉ० जायसवाल, सुवीरा प्र० भारतीय अनुसंधान परिषद, १६७६ ई०, २ संस्करण।

वैदिक विज्ञान एवं भारतीय संस्कृति --(ले०) चतुर्वेदी, शर्मा गिरिधर (प्र०) बिहार राष्ट्र भाषा परिषद पटना—४, १६७२ ई० ।

शतपथ ब्राह्मण -- (प्र०) शर्मा रामस्वरूप, प्राचीन वैज्ञानिक अध्ययन अनुसंधान २६, १३६—१४० वेस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली—८, १६६६ ई० ।

पुराण विमर्श -- (ले०) आचार्य उपाध्याय बलदेव (प्र०) चौखम्बा विद्या भवन प्रकाशन, वाराणसी, २ संस्करण, १६७८ ई० ।

पुराण परिशीलन -- *व्याख्याता* – चतुर्वेदी, शर्मा गिरिधर (प्र०) बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना—४, १ संस्करण, १६७० ई० ।

कल्याण सूर्य विशेषांक -- (प्र०) कल्याण कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर, वर्ष ५३, तृतीय संस्करण, सं० २०५४ ।

कल्याण शक्ति अंक -- (सम्पादक) पोद्दार हनुमान प्रसाद, गीताप्रेस, गोरखपुर, २ संस्करण, १९९१ ई० ।

कल्याण गणेशांक -- कल्याण कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर, वर्ष ४८, सं० गोस्वामी चिन्मयलाल, ४ संस्करण, सं० २०५४ ।

कल्याण देवतांक -- सं० खेमका राधेश्याम, गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर, वर्ष ६४, संख्या १ ।

कल्याण - शिवोपासनांक -- सं० खेमका राधेश्याम, कल्याण कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर, वर्ष ६७, संस्करण १ ।

कल्याण - रामभक्ति अंक-- सं० खेमका राधेश्याम, कल्याण कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर, वर्ष ६७, सं० १ ।

धर्मशास्त्र का इतिहास -- मूल लेखक डॉ० काणे पाण्डुरंग वामन, (अनु०) काश्यप चौबे अर्जुन, (प्र०) उ०प्र० हिन्दी संस्थान (हिन्दी समिति प्रभाग) राजर्षि टण्डन भवन, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ, तृतीय संस्करण, १९९६ ई० ।

हिन्दी साहित्य कोश-भाग-१ -- पारिभाषिक शब्दावली – सम्पादक, वर्मा धीरेन्द्र आदि, मुद्रक–प्रकाशक ज्ञान मण्डल लि०टे०, सन्तकबीर मार्ग, वाराणसी–१, पुनर्मुद्रित संस्करण, २००० ई०।

वैदिक देवता-उद्भव और विकास -- (ले०) डॉ० त्रिपाठी गयाचरण, मुद्रक, शाकुन्तल प्रेस, ३४, बलरामपुर हाउस, प्रयाग, प्रथम खण्ड प्रकाशक – भारतीय विद्या प्रकाशक, दिल्ली, वाराणसी, भारत, १ संस्करण, १९७१ ई० ।

कल्याण भगवल्लीला अंक -- सं० खेमका राधेश्याम, गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर, जनवरी–फरवरी अंक (१–२), ७२वाँ वर्ष, १९९८ ई० ।

पुराण समीक्षा -- (ले०) डॉ० दुबे हरिनारायण (प्र०) इण्टर नेशनल इन्स्टीट्यूट फॉर डिवलपमेन्ट रिसर्च, इलाहाबाद–०२,

१ संस्करण, १९८४ ई०।

मनुस्मृति -- **मनु** - स० प्रो० शास्त्री, राजवीर प्रकाशक, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारी बावली, दिल्ली, मई १९५६, २ संस्करण ।

छान्दोग्य उपनिषद् -- सं० डॉ० चतुवेदी नारायण स्वरूप, प्र० जैन सुन्दरलाल मोतीलाल बनारसी दास, पो०बॉ० ७५, नैपाली खपरा, वाराणसी, ६वाँ संस्करण, १९६६ ।

बृहदारण्यकोपनिषद् -- सं० डॉ० चतुर्वेदी नारायण स्वरूप, प्र० मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, ६ संस्करण, १९६६ ।

अर्थशास्त्र -- **(कौटिल्य)** - सं० शास्त्री महामहोपाध्याय गणपति, प्र० राजकी प्रकाशन, १९२५, ३ संस्करण ।

पुराण पत्रिका

पुण्डकोपनिषद् -- सं० डॉ० चतुर्वेदी नारायण स्वरूप, प्र० मोती लाल बनारसीदास, वाराणसी, ६ वाँ संस्करण, १९६६ ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण -- सं० प्र० आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि प्रकाशन, १९६७, प्रथम संस्करण ।

तैत्तिरीय आरण्यक -- सं० प्र० आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि प्रकाशन, १९६७ प्रथम संस्करण ।

नृसिंह पुराण

दशावतारचरित -- **(क्षेमेन्द्र विरचित)** *व्याख्याकार* डॉ० वाजपेयी बुद्धिशर्मा, सं० डॉ० गिरि कपिलदेव, प्र० चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, प्रथम संस्करण, विक्रम सं० २०४५ ।

रघुवंश -- विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९८०, पंचम संस्करण

सर्वानुक्रमणी (वेदानुक्रम कोश) -- विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु रिसर्च इन्स्टीच्यूट होशियारपुर, वि० २०१६ ।

ऐतरेय ब्राह्मण -- प्र० सं० आर० अनन्तकृष्ण शास्त्री प्र० त्रावनकोर विश्वविद्यालय संस्कृत सीरीज नं० सी. एल. १९४२

श्री दुर्गा सप्तशती -- (व्यास) (प्र०) गीता प्रेस, गोरखपुर ।

वरिवस्या रहस्य -- भास्कररायमखीप्रणीत गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, गुजरात ।

आनन्द स्तोत्र -- प्र० गणेश प्रकाशन, मद्रास ।

योगशास्त्र -- **पतञ्जलि** – प्र० मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९९० ई० ।

कठोपनिषद् -- **उपनिषद संग्रह**, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९८० ।

ब्रह्मसूत्र -- **वादरायण प्रणीत** - *व्याख्याकार* एवं *सम्पादन* डॉ० श्रीवास्तव, सुरेश चन्द्र, प्र० रामनारायण बेनीमाधव, कटरा, इलाहाबाद, १९९० ई०, प्रथम संस्करण ।

मैत्रायणी संहिता

बृहत्संहिता

ताण्डय ब्राह्मण

कौषीतकि ब्राह्मण

मनुस्मृति (मनु) -- *व्याख्याकार* प्रो० सुरेन्द्र कुमार, सं० प्रो० शास्त्री राजवीर प्रकाशक, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारी बावली, दिल्ली, २ सस्करण, १९५६ ।

निरूक्तम् -- **यास्क** - *सम्पादक* – शर्मा श्रीमुकुन्द, प्र० मेहरचन्द्र लक्ष्मन दास, नई दिल्ली, १९८२ ।

पुराण दिग्दर्शन -- (तृतीय संस्करण) ले० पं० शास्त्री माधवाचार्य, प्र० माधव पुस्तकालय, देहली ।

रिलिजन एण्ड फिलासफी ऑफ वेद -- पृ० १४६–४७, ए०वी० कीथ

अभिज्ञान शाकुन्तलम् -- **(कालिदास प्रणीत)** - *व्याख्याकार* डॉ० द्विवेदी कपिल देवी, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

मौद्गलपुराण

योगवाशिष्ठ -- प्र० अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी, प्रथम संस्करण, सं० २००५ ।

अष्टाध्यायी -- **(पाणिनि)** ले० श्री जिज्ञासु पं० ब्रह्मदत्त जी, संशोधक

मीमांसक युधिष्ठर, प्रका० कपूर प्यारेलाल, श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर, दिसम्बर १९६५ ई०, प्रथम संस्करण।

शाक्त प्रमोद -- खेमराज श्री कृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १९५५ ई० ।

साम्बपुराण

मेघदूत -- **(कालिदास)** *व्याख्याकार* डॉ० मिश्र अभिराजेन्द्र, रामनारायन बेनीमाधव, इलाहाबाद, १९७० ई० ।

चैम्बर्स इन्सइक्लोपीडिया वाल्यूम-६ -- १९०४ ई० में प्रकाशित ।

नैषधमहाकाव्यम् -- **श्रीहर्ष** - स० शास्त्री पं० श्री हरगोविन्द एवं उपाध्याय पं० श्री त्रिभुवन प्रसाद, प्र० चौखम्बा ज्ञान भारती प्रकाशन, पो० वाक्स सं० १३८, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी, तृतीया संस्करण, १९८१ ।

पारस्कर गृह्यसूत्र -- *व्याख्याकार* डॉ० शास्त्री हरिदत्त, सं० प्र० भारतीय विद्या प्रकाशन, कचौड़ी गली, वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९७२ ।

अर्थशास्त्र -- सं० एन०एन० वेंकटनाथाचार्य प्र० प्राच्य विद्या संशोधनालय, मैसूर, १९६०, चतुर्थ संस्करण ।

सौन्दर्य लहरी -- आचार्य शंकर प्रणीत – प्र० शिक्षा, संस्कृति एवं सामाजिक कल्याण मन्त्रालय, भारत सरकार, प्रथम संस्करण, १९७६ ।

इतिहासपुराण साहित्य का इतिहास - ले० डॉ० कुंवरलाल, साहित्य विद्या प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सस्करण, १९७५ ।